यशपाल के उपन्यासों में नारी पात्रों की आधुनिकता के स्वरुप का अनुशीलन

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी॰ फिल्॰ उपाधि हेतु प्रस्तुत)

शोध - प्रबन्ध
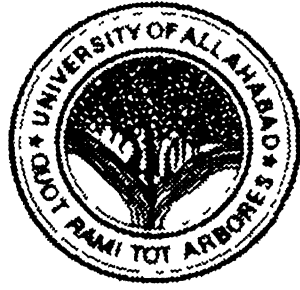
—: *शोधकर्त्री* :—

निधि सक्सेना

—: *निर्देशक* :—

डॉ॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सन् - 2002

पूजनीय स्वर्गीय श्वसुर

स्व० श्री कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव

की स्मृति में समर्पित प्रतीक

पुष्पांजलि

प्राक्कथन

उपन्यास एक ऐसी कला है, जिसमे मनुष्य सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से निरूपित होकर सामने आता है। उपन्यास की कला मे मौजूद मनुष्य के समाज सम्बद्ध और इतिहास सापेक्ष रूप को आसानी से पहचाना जा सकता है।

भारत मे उपन्यास का जन्म अभिशप्त स्थितियो में हुआ उस अभिशाप की छाया भारतीय उपन्यास पर लम्बे समय तक पडती रही उससे मुक्ति के लिए उपन्यास विधा को कठिन सघर्ष करना पडा भारत मे उपन्यास का जन्म १६वी शती के मध्य मे तब हुआ जब देश में अंग्रेजी राज्य था।

स्वतन्त्रोत्तर, पश्चात् हिन्दी उपन्यास साहित्य पर सामाजिक, सांस्कृतिक एव राजनैतिक रूप से गहरा प्रभाव पडा है, आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवाद अथवा पारम्परिक जीवन मूल्यो की जगह प्रगतिशील जीवन मूल्यो की व्यापक रूप से प्रतिष्ठान हुआ है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारो में अपनी विशिष्ट विचारधारा और सृजनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने स्वतत्र आदर्शवाद से बहुत कुछ मुक्त हो कर जिस यथार्थवादी दृष्टिकोण को ग्रहण किया था उसकी परम्परा को आगे बढाने का श्रेय यशपाल को है, जो उपन्यास साहित्य जगत मे आधुनिकता, गतिशीलता और परिवर्तनशीलता का बोध कराती है।

हिन्दी उपन्यास मानव चरित्रांकन का अन्यन्तम माध्यम रहा है। मानव जीवन के दो पहलु है जिसमें नर–नारी दो ध्रुवों के समान विद्यमान है। जिसमें नारी की

जीवन मूल्यो एव आधुनिकतावादी विचारधारा के कथाकार यशपाल ने अपने उपन्यासो मे उकेरा है।

यशपाल ने नारी के चरित्रगत विशिष्ट पहलुओ को सदा ही विशेष महत्व दिया है। नारी का जीवन समाज मे कम सघर्षशील नही रहा न जाने कितने उत्थान–पतन के दौरो से गुजरती हुई आज वर्तमान मे नारी अपनी स्थिति को सुदृढ बना सकी। नारी से व्यक्तिगत एव समाज मे उसकी स्थिति का विशद विवेचन लेखको ने अपने–अपने दृष्टिकोणो से किया। हिन्दु धर्म ग्रन्थो मे एक ओर नारी की प्रशसा का प्रचुर है, दूसरी ओर नारी निन्दा भी कम नही की गई। नारी भगवान की ही अद्भुत कृति नही है, वरन् मानव की भी अद्भुत सृष्टि है। वैदिक काल मे भारतीय समाज मे नारी का सशक्त व्यक्तित्व सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है किन्तु उसकी दशा उत्तरोत्तरहीन होती चली जाती है। वैदिककाल मे आत्मिक विकास की सृष्टि से स्त्रिया पुरुषो के साथ एक ही छत्र मे विचरण करती थी। धार्मिक क्षेत्र मे भी उनको पुरुषो के समान अधिकार पाप्त थे किन्तु बाद मे धीरे–धीरे उनका अधिकार अभिशाप बन गया। उपनिषदो और ब्राह्मणो के युग मे स्त्रियो के धार्मिक अधिकार समाप्त प्राय कर दिये गये। सूत्रो महाकाव्यो, स्मृतियो, बौद्धकालीन समाज और मध्ययुग तक आते–आते स्त्री बिल्कुल पगु हो गयी। जो अपने अधिकारो के प्रति प्रतिरोध न कर सकी बल्कि चुपचाप अन्याय को सहती रही।

आधुनिक युग मे नवचेतना का प्रचार–प्रसार हुआ। कुछ धर्म सुधारको, ने स्त्री के जीवन को दुर्दशाग्रस्त बनाने वाली कुप्रथाओ का उग्र रूप मे विरोध करते हुए अनेक धर्म सुधार आन्दोलन चलाये। इन आन्दोलनो मे नारी ने सक्रिय भूमिका निभायी, जो नारी नव जागरण के लिए विशेष महत्व रखता है। महिलाओ ने प्रत्येक क्षेत्रो राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक आदि मे भाग लेकर अपनी मन स्थिति को

नवचेतना से प्रस्फुटित करते हुए नारी स्वातत्र्य विचार को विशिष्टता प्रदान की है। यही कारण है कि आधुनिक नारी मे नई चेतना का विस्तार दिनों दिन बढता ही जा रहा है, ये है, नारी जागृति का विकासोन्मुख युग। जहॉ स्त्रियॉ भी पुरुष के बराबर है की भावना जन्म ले रही है।

उपन्यासकार यशपाल की दृष्टि मे नारी का यही स्वरूप आरम्भ से अन्त तक जागृत हुआ है। नारी घर के भीतर केवल उपभोग की वस्तु न होकर समाज के विकास मे भी अग्रसर हो यही उनकी मान्यता है। यशपाल के उपन्यासो की बुनियाद मानव जीवन है। इसलिए यशपाल ने अपनी कृतियो में सामाजिक बोध से जागृत चेतना के साथ आधुनिकता के माध्यम से नारी के अर्न्तमन में छिपी मनोभाव को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया।

यशपाल के जीवन मे चित्रित जीवन से बंधे घट के पानी जैसा नही हे। सतत् प्रवाहमान नदी की तरह गतिमान है।

अवलोकनार्थ मृदुलागर्ग के शब्दों में —— "स्त्री मात्र देह नही, वह मॉ, विचारपुंज, सस्कृति पोषक, दया, करूणा, लालन–पालन आदि तत्वो से ओत–प्रोत है, तभी तो बुद्ध, क्राइस्ट, गॉधी दया, करूणा तथा पोषक तत्वो के लिए महान पुरूषों को जन्म दिया, स्त्री केवल बच्चे को ही जन्म नहीं देती, बल्कि उसका लालन पालन कर उसे सही दिशा निर्देशन भी करती है। हमारी भारतीय संस्कृति का हाल नदियों जैसा हो गया है।"

यशपाल ने अपने उपन्यासो में इस जीवन प्रवाह की दिशाओ और मोड़ो को देख–परखकर सुरूचिपूर्ण अन्वेषित करने का प्रयास उपन्यास जगत में किया है। इसलिए मुंशी प्रेमचन्द बाद बाद के विशिष्ट उपन्यासकारों की अग्रिम पक्ति मे

यशपाल का स्थान सर्वोपरि है। इन्होने अपने उपन्यासो मे आर्थिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक स्थिति, शिक्षा–दीक्षा तथा नारी गतिशीलता के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। जो आज के सन्दर्भ मे बहुत उपयोगी जान पडती है। इनके उपन्यासो मे नारी चाहे 'दादा कामरेड' की (शैल), 'देशद्रोही' (चन्दा), 'पार्टी कामरेड' (गीता), 'मनुष्य के रूप' (मनोरमा) 'झूठा–सच' की (तारा, कनक) और मेरी तेरी उसकी बात' (ऊषा) आदि सभी स्त्रियॉ शिक्षित है जो अन्याय को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करती बल्कि उसका खुलकर विरोध करती है।

अत स्पष्ट है कि यशपाल नारी को एक नवीन दृष्टिकोण से देखा और परखा है जो समाज मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हुई नारी आधुनिकता के स्वरुप का अनुशीलन का विषय बन कर विजय यात्रा की दिशा की उन्मुख होती नजर आती है।

यशपाल ने नारी का बहुत ही व्यापक और सुरूचिपूर्ण पहचान का सागोपाग निरूपण करते हुए नारी के चरित्र के ऊपर उठाने मे अभूतपूर्ण योगदान दिया है।

हिन्दी साहित्य जगत मे यशपाल पर काफी शोध कार्य हो चुके है–जैसे 'यशपाल का समग्र मूल्यांकन' (सुनील कुमार लवटे), 'यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य' (सुरेन्द्र तिवारी) 'यशपाल के उपन्यासो का मूल्याकन' (सुदर्शन मल्होत्रा), 'यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व' (सरोज गुप्ता), 'यशपाल का उपन्यास साहित्य' (सरोज बजाज), 'यशपाल के उपन्यासो की मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' (मधु जैन), 'यशपाल के उपन्यासों मे सामायिक चेतना', (ह॰ श्री॰ साने), 'मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल' (पारसनाथ मिश्र) आदि सभी ने यशपाल के विषय मे शोध कार्य किये।

यशपाल के उपन्यासो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण डॉ॰ मधु जैन ने अपने शोध मे उन मनोवैज्ञानिक पहलुओ का अध्ययन प्रस्तुत किया है जो उपन्यास के प्रत्येक पात्रो को मनोवैज्ञानिक स्तर तक ले जाते है और उनका सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करते है। इसी प्रकार यशपाल के उपन्यासो मे सामायिक चेतना ह॰ श्री साने ने भी यशपाल के उपन्यासो मे विभिन्न क्षेत्रो जैसे सामाजिक, सास्कृतिक, राजनैतिक एव आर्थिक चेतना का प्रवाह प्रत्येक पहलुओ व पात्रो पर अकित किया है। मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल–डॉ॰ पारसनाथ मिश्र, ने भी यशपाल को पूर्णत मार्क्सवादी प्रभाव से प्रभावित बताकर उनके प्रत्येक पात्रो पर इसका प्रभाव अकित करके उन्हे मार्क्सवादी दृष्टिकोण से चित्रित करने का प्रयास किया।

यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व सरोज गुप्ता ने भी यशपाल के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओ मे अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ यशपाल का व्यक्तित्व और कृतित्व नामक विषय पर शोध कार्य करके उनको समाज के समक्ष एक नये रूप से लाकर खडा किया। यशपाल का समग्र मूल्याकन सुनील कुमार लवटे ने भी यशपाल के विषय मे मूल्याकन प्रस्तुत किया।

मैने उपरोक्त सभी का अध्ययन किया और अपने विषय 'यशपाल के उपन्यासो मे नारी–पात्रो का आधुनिकता के स्वरुप का अनुशीलन' नामक शोध विषय मे यह प्रस्थापित करने का प्रयत्न किया है कि यशपाल के उपन्यासो की नारियॉ पुराने बन्धनो को तोडकर समाज मे अपना स्थान बनाना चाहती है। आधुनिक युग मे स्वय अपना अस्तित्व चाहती है। यशपाल ने नारी को एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया वह यह कि उनकी दुनिया घर के चहारदीवारी तक ही सीमित नही है बल्कि समाज मे भी वह खुली हवा मे सास ले सकती है। इसके लिए आवश्यक है कि जब तक

अपने भीतर आत्मनिर्भर बनने की चाह उत्पन्न नही करेगी तब तक वह पुरुष पराधीनता मे जकडी अपनी स्वतत्रता की बलि देती जायेगी।

समाज स्त्री और पुरुष दोनो के योग से बना है इसलिए समाज मे नारी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि यशपाल की नारी आधुनिकता के सन्दर्भ मे अनुशीलन का विषय बन जाती है। जिसका यथार्थपूर्ण चित्रण करना ही नारी के महत्त्व का यथावश्यक रूप बन गया है तथा स्त्री–पुरुष के अनुशीलनता का सम्यक रूप यशपाल के उपन्यासो मे परिलक्षित किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे "यशपाल की नारी आधुनिकता के स्वरुप का अनुशीलन" नामक विषय का अध्ययन छ अध्यायो मे विभक्त किया गया है।

पहला अध्याय मे यशपाल के उपन्यासो की सक्षिप्त रूपरेखा का वर्णन किया गया है जिसमे यशपाल के क्रमागत उपन्यास 'दादा कामरेड' से 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास तक की राजनीतिक, समस्याओ परम्परागत नैतिक मान्यताओ एव सामाजिक गतिविधियो के यथार्थवादी चिन्तन के प्रति दृष्टिकोण को विश्लेषित किया गया है। विशिष्ट उपन्यास 'मनुष्य के रूप' मे मनुष्य की हीनता और महानता के यथार्थवादी दृष्टिकोण को पिरोते हुए नारी मनस्थिति का रूपायित किया गया है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर 'दिव्या' उपन्यास व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति का चित्रात्मक रूप को दिखलाया गया है। ऐतिहासिक उपन्यासो की श्रृखला मे उपन्यास 'अमिता' व 'अप्सरा का श्राप' मे, अमिता के माध्यम से हिसा पर अहिसा की विजय को विश्लेषित किया गया है तथा अप्सरा के श्राप मे मेनका नारी पात्र को नवीन दृष्टिकोण से परम्परावादी व रूढिवादिका के विरोध को शाकुन्तला के माध्यम से अभिव्यक्ति किया गया है। इसी विकास क्रम मे 'झूठा–सच' में चित्राकन

तारा व कनक नारी पात्रो के सामाजिक व राजनैतिक जीवन का उन्मेष नवीन जीवन मान्यता तथा समाजवादी समाज व्यवस्था के आह्वान को निरूपित किया गया है। अतिम उपन्यास श्रृखला 'मेरी–तेरी उसकी बात' मे दो पीढियो से क्रान्ति की वेदना को अदम्य बनाते उपन्यासकार ने व्यैक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक विषमताओ का स्पष्टीकरण करते हुए ऊषा नारी पात्र द्वारा सामाजिक जर्जर रूढियो का खण्डन धर्म और जाति की सकीर्णताओ को पार करना परिवार, पति के बन्धनो से मुक्त होकर राजनैतिक क्रान्ति मे कार्य करना परिलक्षित किया गया है।

दूसरा अध्याय के अन्तर्गत 'यशपाल के उपन्यासो में मार्क्सवादी नारी चेतना का साहित्य मे प्रतिफलन अकित किया गया है। जिसके अन्तर्गत मार्क्सवादी चिन्तन, मार्क्सवादी परिवेश और यशपाल, प्रगतिशीलता और यशपाल की परिदृष्टि और मार्क्सवाद और यशपाल की नारी परिकल्पना पर गहराई से अध्ययन किया गया है।

तीसरा अध्याय मे यशपाल के उपन्यासो मे नारी पात्रो का आधुनिकता के स्वरुप का अनुशीलन के अन्तर्गत प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों मे नारी के पारम्परिक आयाम, आधुनिकतावाद की बोधगम्यता, प्रगतिशील उपन्यासकार यशपाल और नारी के प्रतिमान तथा विशिष्ट उपन्यासो मे नारी का चित्राकन को उद्‌घाटित करते हुए, नारी पात्रो जैसे शैल, चन्दा, दिव्या, गीता, सोमा, अमिता, तारा, कनक, विनी, जैनी, मेनका, शकुन्तला, मोती, ऊषा आदि को पात्र्योजना के माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक एव आर्थिक परिवर्तनो को दिखाकर आधुनिकता की ओर रूपायित किया गया है।

चौथा अध्याय मे यशपाल के उपन्यासो मे स्त्री–पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध

को दृष्टिगत रखते हुए नर–नारी के सम्बन्ध को मूलत. सृष्टि से जुडा मानकर नारी शोषण करने वाली प्रवृत्तियो का विरोध कर उसे सामाजिक सकीर्णताओं से निकाल कर युगीन चेतना के अनुरूप एक स्वस्थ भाव भूमि पर सामाजिक एव आर्थिक रूप से नारी को लाकर उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व की पुरानी मान्यताओं और नये आदर्शो पर प्रगति के विकास की ओर अग्रसरित करते हुए विषय विवेचन किया गया है।

पॉचवॉ अध्याय मे यशपाल का व्यक्तित्व और कृतित्व, के प्रतिमान का अवशीलन एव अवलोकनार्थ है। इसके अन्तर्गत जीवन यात्रा एव उपन्यासकार के रूप मे यशपाल का मूल्याकन एव उपलब्धियो, महत्ता और स्थान की व्याख्या को मानव जीवन के विकास मे यशपाल ने झॉकी प्रस्तुत करते हुए जीवन के विविध पक्षो एव परिस्थितियो का उद्घाटन और विवेचन अपने साहित्य सृजन के माध्यम से समाज में अनुरेखित किया है।

छठा अध्याय उपसहार मे समूचे मूल्याकन की दशाओ और दिशाओ का स्पष्ट विवेचन विश्लेषित किया गया है। इसके अन्तर्गत नारी मुक्ति चेतना की रूपधारणा, साहित्य और समाज के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को समन्वयात्मक रूप से व्याख्यापित करते हुए समाज और जीवन से जुडी हुई रचनाधर्मिता को कालजयी रचना बना दिया है। यशपाल ने उपन्यासों के माध्यम से नारी को प्रतिष्ठित समाज मे जीने का अधिकार देकर समाजवादी व्यवस्था की स्थापना को सागोपांग निरूपण किया है।

युग संदर्भ नारी जीवन की परिस्थितियों, अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर होने वाली वैचारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एव बौद्धिक परिवर्तन इन सबसे कभी जुडकर और कभी कटकर हमारा उपन्यास साहित्य आगे बढता रहा है। फिर वह विकास यात्रा आज भी जारी है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध विद्वद्वरेण्य, सत्यनिष्ठ, सूक्ष्म अन्वेषक, श्रद्धेय गुरुवर डॉ॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव (हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के कुशल निर्देशन मे सम्पन्न हुआ। पूज्यनीय गुरुदेव ने आघात शोध प्रबन्ध मे साकार रूप देने के लिए मुझे पग–पग मे अपने अनुभवों व विद्वता की सूक्ष्म गहराई से अवगत कराया। इस पुनीत कार्य हेतु आदरणीय गुरुजी के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ।

मैं हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद के उन सभी गुरुजनो के प्रति विशेष रूप से डॉ॰ राजेन्द्र कुमार (विभागाध्यक्ष), डॉ॰ योगेन्द्र प्रताप सिह, डॉ॰ मीरा दीक्षित, डॉ॰ शैल कुमारी पाण्डेय, डॉ॰ सत्य प्रकाश मिश्र, डॉ॰ मालती तिवारी, डॉ॰ मीरा श्रीवास्तव एवं विभागीय अन्य प्राध्यापको के प्रेरणाप्रद व्यक्ति के प्रति अपना प्रणति निवेदन करती हूँ, जिनका आर्शीवाद एव सहयोग मुझे अकिचन को प्राप्त होता रहा है, ये विद्वद्वतजन बिन्दु मेरे लिए सम्बल है।

मैं आर्यकन्या डिग्री कालेज की हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ॰ कल्पना वर्मा के प्रति भी अपार श्रद्धा की ऋणी हूँ जिन्होने मुझे पूर्ण सहयोग दिया। ओर शोध को पूर्ण करवाने मे मदद की।

पारिवारिक सहयोग के बिना कोई कार्य पूर्ण नही होता। शोधकार्य के समय सदैव इसका अनुभव मुझे होता रहा है। मेरी पूजनीया सास श्रीमती सरोज श्रीवास्तव व मेरे पूज्य पिताश्री जगदीश कुमार सक्सेना एव माता जी श्रीमती सुभाषिनी सक्सेना ने मुझे आगे बढने की प्रेरणा दी और उन्ही के आर्शीवाद से मैं आगे बढ सकी। मेरे पति देव श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव का भी मुझे समय–समय पर भरपूर सहयोग मिला उन्होने मुझे लक्ष्य तक पहुँचाने मे पूरी मदद प्रदान की। परिवार के प्रत्येक सदस्यों के प्रति मे हार्दिक रुप से कृतज्ञ हूँ जिन्होने मेरी मदद

की व जिनके साथ मै ये शोध कार्य पूर्ण कर सकी। इस सबके अतिरिक्त मे डॉ॰ अशोक 'प्रियदर्शी' के प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होने अपना अमूल्य समय निकालकर अपनी दूरदर्शिता से मुझे विषय वस्तु समझने का पूर्ण सहयोग प्रदान किया। उनके सहयोग को मै सदैव आजीवन ऋणी रहूँगी।

शोध प्रबन्ध की पूर्णतया मे, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, हिन्दुस्तान एकेडमी, पब्लिक लाइब्रेरी, विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, केन्द्रीय पुस्तकालय काशी विश्वविद्यालय वाराणसी के शोध प्रबन्ध से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त हुई। इसलिए वहॉ के अधिकारियो एव कर्मचारियो को सहृदय धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

श्रीमती प्रकाशवती पाल और श्रीमती मीना पाल से भी मै अपकृत हुई हूँ। उन्होने मेरे लिए विप्लव की फाइले उपलब्ध करा दी जिससे मुझे बहुत मदद मिली मै उनकी भी ऋणी हूँ।

विनयागत होकर मे यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर रही हूँ। मुझे आशा ही नही, बल्कि विश्वास है कि विद्वद्ववतजन इसमे हुई त्रृटियो को क्षमा करेगे। यदि शोध प्रबन्ध, "यशपाल के उपन्यासो मे नारी पात्रो का आधुनिकता के स्वरुप का अनुशीलन के प्रति किचित भी ध्यानाकर्षित करता है तो मै अपना अथक प्रयास सफल समझुँगी।

विनयावनती
निधि सक्सेना
निधि सक्सेना

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
सन् - २००२

अनुक्रमणिका

पहला अध्याय

"यशपाल के उपन्यासों की संक्षिप्त रूपरेखा"

क्रमागत उपन्यास

क. दादा कामरेड (१६४१ ई०)

यशपाल का पहला उपन्यास 'दादा कामरेड' मे राजनीतिक समस्याओ के साथ–साथ प्रेम और रोमास के प्रसग को भी लेखक ने अपने दृष्टिकोण से दर्शाया है। इस उपन्यास मे लेखक ने परम्परागत नैतिक मान्यताओ को न केवल पीछे छोडा बल्कि आधुनिकता के आज के सन्दर्भ मे एक पूर्वाभास भी प्रस्तुत किया।

इस उपन्यास की कथावस्तु आज के सन्दर्भ मे बहुत समीप है, 'दादा कामरेड' राष्ट्रीय संघर्ष की कथा है। प्रस्तुत उपन्यास में संघर्ष मुख्यतः भारतीय क्रान्तिकारी दल और अंग्रेजी साम्राज्यवादी तथा पूँजीवादी शक्तियों के बीच चित्रित हुआ है। उपन्यास का नायक हरीश जो देश की स्वतंत्रता के लिए लड रहा है। एक रात अचानक ही पुलिस की हिरासत से भागकर पूँजीपति अमरनाथ के घर घुस जाता है। अमरनाथ की पत्नी यशोदा अत्यन्त भयभीत हो जाती है, किन्तु फिर भी उसे अपने घर रात छिपने की पनाह देती है। जिस समय उसको घर में छिपने की पनाह मिली वह समय एक भारतीय स्त्री (यशोदा) के लिए बहुत ही कष्टमय होता है। स्वयं यशोदा सोचती है... "मौत के मुँह से भागता हुआ एक व्यक्ति जान बचाने के लिए उसके पैरों के पास आ पडा।[१]"

---

१. दादा कामरेड–यशपाल, पृष्ठ - ४

इस तरह की मानवतावादी नैतिकता के धरातल पर वह क्रान्तिकारी को शरण ही नही मिला अपितु प्रात काल उसे भगाने मे भी मदद भी करती है, इस तरह वह युवक के अनुरोध पर." इन्ही कपडो पर बाहर जाना ठीक न होगा, पहचान लिया जाऊँगा।[1] आप मुझे एक छोटा या कोई पुराना कपडा ओढने के लिए और चार–पॉच रुपये सुबह बाहर जाने के पहले दे सकें तो बडी सहायता होगी।"[2]

यहीं से कथा का विस्तार प्रारम्भ होता है। उपन्यास के मूलरूप मे क्रान्तिकारी के साथ–साथ ही रोमांच की भी अभिव्यंजना की गयी है। उपन्यास की नायिका शैल जी लाला ध्यानचन्द की इकलौती पुत्री है। अत्यन्त स्वतत्र विचारवाली महिला है। वह एम॰ ए॰ की छात्रा और देश के राजनीतिक आन्दोलन मे भी भाग लेती है। हरीश उसका साथी है जो समाजवादी दृष्टि से सम्पन्न था। हरीश का नेतृत्व स्वयं लेखक कर रहे थे। इसलिए नायक के विचार स्वयं लेखक के विचार थे। क्रान्तिकारी दल के विस्फोटक वर्ग के नेता चन्द्रशेखर आजाद के रूप मे उपन्यास की कथा में दादा दिखायी देते हैं।

इस उपन्यास के प्रारम्भ मे क्रान्तिकारी दल की विस्फोटक शक्तियॉ ही अधिक प्रबल रूप से दिखायी देती है, हरीश पहले तो इससे प्रभावित होता है किन्तु समाजवादी चेतना से उत्पन्न विचारों से धीरे–धीरे उसकी आस्था डकैती, हत्या और लूटपाट से उठ जाती है। हरीश का मानना है इन चीज़ों से समाज में क्रान्ति नही लायी जा सकती। उसके हृदय में जैसे ही इस परिवर्तन की नींव पडती है, पार्टी के अन्य सदस्य उसके दुश्मन बन जाते हैं। वह जानता है कि उसे किसी भी क्षण मार दिया जायेगा, इसलिए वह सामान्य जनता को शोषण, अन्याय, अत्याचार के

---

१. दादा कामरेड–यशपाल, पृष्ठ - ७
२. दादा कामरेड–यशपाल, पृष्ठ - ७

प्रति जागरूक करने के प्रयास मे अपने चेहरे तक को भी विकृत कर लेता है और सुल्तान के नाम से समाज मे मजदूरो के न्याय के प्रति लडता है। वह कहता है कि . "मजदूर भाइयो, यह मिले तुम्हारी और तुम्हारे भाइयो से बनी है, तुम्हारे बिना यह मिल एक सेकेण्ड भी नहीं चल सकती . मजदूर भाइयो हम सूखी रोटी के निवाले मॉग रहे हैं और बल्कि लोग अपने ऐसो–इशरत के लिए जिद कर रहे हैं, हम मर जायेगे परन्तु पीछे नही हटेगे।"

इस तरह से सुल्तान के रूप में हरीश पूॅजीपतियो के प्रति घोर घृणा दर्शाता है और अपने शरीर की परवाह न करके भी मजदूरो की लडाई लडता है स्वय उसका शरीर.. दिनभर धूप मे घूमने से नाक से खून बहने लगता है। केवल चने और पानी पर रहने से उसे पेचिश हो गयी थी परन्तु वह फिर भी भूत की तरह चक्कर लगाता रहता है।[१]"

इस संघर्ष में शैल उसका साथ देती है जो आधुनिक विचारों की पक्षपाती है। शैल इतनी आधुनिक है कि जब से होश सम्भाला तब से उसके जीवन में प्रेम रहा। उसके जीवन में कई पुरुष आते हैं लेकिन कोई भी उसके विचारो में जंचता नही, अन्त मे वह हरीश के विचारों से वह इतना प्रभावित होती है कि उसके अश तक को भी अपने भीतर समेट लेती है, फलस्वरूप उसको घर छोडना पड़ता है और स्पष्टतः अपने पिताजी से कह देती है कि "पिताजी स्त्री होने के नाते जो मेरा प्राकृतिक अधिकार है, उससे कुछ अधिक मैंने नही किया है, मैं मनुष्य हूॅ, मनुष्य बनी रहना चाहती हूॅ।[२]"

शैल विवाह की विरोधी है, इसलिए स्वतंत्र रूप से पुरुषों के साथ विचरण करती है। उसका मानना है कि विवाह स्त्री के स्वतंत्रता के मार्ग की सबसे बडी

१. दादा कामरेड–यशपाल, पृष्ठ - ११६
२. दादा कामरेड–यशपाल, पृष्ठ - १४५

बाधा है। उसका मानना है कि "स्त्री को किसी की बनकर ही रहना है तो उसको स्वतत्रता का अर्थ ही क्या हुआ ?" स्वतत्रता शायद इसी बात की है कि स्त्री एक बार अपना मालिक चुन ले, परन्तु गुलाम उसे जरूर बनना है।"[१] इस तरह शैल का परिचय ही लेखक ने नये ढग की लडकी के रूप मे दिया है।

इसी उपन्यास की दूसरी मुख्य स्त्री पात्र है यशोदा। जो घर के भीतर ही अपनी दुनिया समेटे हुए है। शैल के प्रोत्साहन से जब वह घर की चहारदीवारी के बाहर निकलती है तो अपने पति (अमरनाथ) का विश्वास खो बैठती है। दोनो के वैवाहिक जीवन मे न मिलने वाली दरार पड जाती है। अमरनाथ के मस्तिष्क पर इस बात का प्रभाव पडता है। वह अपनी पत्नी यशोदा के विषय मे सोचते है कि .. "न जाने उनका सम्बन्ध (हरीश) से कहॉ तक बढ चुका है ?. परपुरुष से अपनी स्त्री के शारीरिक सम्बन्ध की कल्पना सोचते ही सिर चकराकर उसकी ऑखो मे खून उतर आता है। यशोदा भी सोचती है कि बिना वजह का शक उसके आठ साल के वैवाहिक जीवन को एक बारगी धूमिल कर रहा है" उसे केवल दु ख था, आठ बरस मे इन्होंने मेरा ऐसा कौन काम देखा कि मुझ पर संदेह करने लगे।[२]" इस तरह उपन्यास में जहॉ शैल जैसी आधुनिक स्त्री का प्रसग लेखक ने रखा वही यशोदा के माध्यम से उन्होने पुरानी रूढिग्रस्त महिला का चित्रण भी अपने उपन्यास में किया।

वस्तुतः दादा कामरेड की रूपरेखा बदलते युग के राजनीतिक एव सामाजिक स्वरूप से सम्बन्धित अनेक सार्थक तथा महत्वपूर्ण प्रश्न उठाने और उनका सटीक चित्रण एवं विश्लेषण करने के अतिरिक्त लेखक के मध्यवर्गीय सस्कारों के कारण अपने सही उद्देश्य के साथ सामने नही आ सकी है। इसके विपरीत यह रोमांस

---

१. दादा कामरेड–यशपाल, पृष्ठ २०

२. दादा कामरेड–यशपाल, पृष्ठ ६३

एव क्रान्तिकारी लगने वाली सतही एव अतिवादी दलदल मे फसकर रह गयी है। कथावस्तु मे राजनीतिक एव रूमानी भूमिका के मिश्रण का लेखक का दावा तो ठीक है किन्तु इस मिश्रण मे राजनीतिक रोमास का तत्त्व ही प्रमुख बनकर सर्वत्र छा गया। यही कथानक की मुख्य रूपरेखा है।

ख. देशद्रोही (१६४३ ई॰)

यह उपन्यास सन् १६४२ ई॰ की राजनीतिक–सामाजिक गतिविधियो का एक यथार्थवादी चिन्तन है। इस उपन्यास मे लेखक ने द्वितीय महायुद्ध के समय भारतीय जन–जीवन मे राजनीतिक चेतना और सामाजिक को मुख्य केन्द्र बिन्दु में पिरोकर समाजवादी भूमिका के प्रति अपनी आस्था का परिचय दिया है। इसके साथ ही साथ सन् १६४२ ई॰ मे कम्यूनिस्टो पर लगाये गये देशद्रोह के आरोप को भी गलत प्रमाणित किया तथा उपन्यासकार यशपाल ने कम्यूनिस्ट पार्टी की इस नीति के स्पष्टीकरण के लिए 'देशद्रोही' की कथा का सयोजन इस उपन्यास मे किया है।

द्वितीय महायुद्ध के समय भारतीय जन–जीवन में व्याप्त राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था छिन–भिन्न हो गयी थी। कम्यूनिस्ट अग्रेजी साम्यवाद के विरूद्ध तो थे, परन्तु जर्मनी और जापान के 'फैसिज्म' को उससे भी बडा शत्रु समझते थे। जर्मनी की पराजय और रूस की विजय से उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में समाजवादी प्रजातंत्र शक्ति के सबल होने की आशा थी। सन् १६४२ ई॰ में जनता काफी तनावग्रस्त थी और इसी को कथा का आधार मानकर उपन्यास की रचना की गयी।

इस उपन्यास के नायक डॉ॰ भगवानदास खन्ना का कुछ वजीरियों द्वारा अपहरण कर लिया जाता है। सीमाप्रान्त से खन्ना की मृत्यु का समाचार सुनकर

उसकी पत्नी राजदुलारी को इतना दु ख पहुँचता है कि वह पागल–सी हो जाती है। कुछ दिन बीत जाने के उपरान्त वजीरी खन्ना को गजनी मे व्यापारी के हाथ बेच देते हैं, अचानक एक दिन मौका पाकर खन्ना व्यापारी के लडके नासिर के साथ भाग जाते हैं। वह विदश आदि देशो मे भटकते हुए भारत लौट आते हैं। कानपुर मे डॉ॰ वर्मा के नाम से खन्ना पुन कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यक्रमों में भाग लेते हैं यहीं पर डॉ॰ खन्ना को अपनी पत्नी राजदुलारी की बहन चन्दा से पता चलता है कि उसकी पत्नी ने काग्रेसी नेता बद्री बाबू से विवाह कर लिया है। राजदुलारी भी क्या करती पति की मृत्यु का समाचार पाकर वह नि सहाय हो गयी और तभी कम्यूनिस्ट नेता बद्री बाबू से उसका परिचय होता है। बद्री बाबू भी राजदुलारी के दु.ख–दर्द को समझते हैं और इसीलिए उनके हृदय मे राजदुलारी के लिए सहानुभूति और करुणा उमड पडती है। वे दूसरे काम मे हानि सहकर भी दूसरे दिन राज की खबर लेने आते हैं, सांत्वना देकर दुश्चिता दूर करने का प्रयत्न करते हैं।[१]" यह जानकर डॉ॰ खन्ना को बहुत दु:ख पहुँचता है। उन्हें इस समय सहारे की आवश्यकता होती है। चन्दा अपनी आत्मीयता से डॉ॰ खन्ना को सम्भाल लेती है, लेकिन इधर चन्दा का पति राजाराम दोनो की घनिष्ठता को सदेह की दृष्टि से देखते हैं। इसका मुख्य कारण भारतीय संस्कार है, जो अपनी पत्नी को केवल अपनी सम्पत्ति समझते हैं लेकिन मानवतावादी अवधारणा लोगो में विद्यमान रहती है और शायद इसी कारण चन्दा, डॉ॰ खन्ना से आत्मीयता का रिश्ता कायम रखती है.. "चन्दा की आत्मीयता से खन्ना का आत्मरक्षा, तटस्थता और सावधानी का भाव अस्थिर हो गया. खन्ना के लिए परिस्थिति असहाय हो रही थी, अन्याय स्वयं उस पर होने के बावजूद उसे अनुभव हो रहा था, चन्दा को दु:खीकर रूला देने का कारण स्वयं वही है।"[२]

---

१. देशद्रोही – यशपाल, पृष्ठ सं. २४

२. देशद्रोही – यशपाल, पृष्ठ सं. १३४

तत्कालीन समाज मे राजनीतिक उथल–पुथल से जीवन त्रस्त था, विश्व के परिप्रेक्ष्य मे जर्मनी का रूस पर आक्रमण होता है। डॉ॰ खन्ना भी इस युद्ध में अपनी भागीदारी निभाते है और अपनी राजनीतिक गतिविधियो मे अधिक सक्रिय हो जाते है। मजदूर नेता शिवनाथ डॉ॰ खन्ना का घोर विरोधी हो जाता है किन्तु डॉ॰ खन्ना इससे तनिक भी भयभीत नही होते। शिवनाथ चन्दा के पति राजाराम के घर जाकर धमकी भी देते और कहते हैं कि "उनका फिर यहॉ आना ठीक न होगा। खन्ना जी के लिए कहा है कि उनके विचार यदि काग्रेस के इस आन्दोलन से नही मिलते और कम्यूनिस्ट आन्दोलन से अलग रहना चाहते हैं तो बेशक अलग रहे। . आजादी के लिए हमारे प्रयत्न मे साथ न देना हो तो न दे परन्तु सरकार की ओर से हमसे लडने तो न आये।"[१] वह शिवनाथ की एक गुप्त योजना को विफल करने के प्रयास मे बुरी तरह घायल हो जाते है। चन्दा डॉ॰ खन्ना के जीवन को बचाना चाहती है। वह घायलावस्था मे ही उसे उसकी पत्नी राजदुलारी के पास ले जाती है किन्तु राजदुलारी खन्ना से मिलने से इन्कार कर देती है और कहती है कि मैं डॉ॰ खन्ना से नही मिल सकती। इस तरह चन्दा मजबूर होकर डॉ॰ खन्ना को वापस ले जाती है। रास्ते में ही उसका पति राजाराम मिल जाता है और डॉ॰ खन्ना को बदमाश, देशद्रोही कहते हुए अपनी पत्नी चन्दा को मारते–पीटते घर ले जाता है। मृत्यु के समीप डॉ॰ खन्ना आखिरी बार शक्ति बटोर कर यही कहते हैं कि चन्दा मैं देशद्रोही नहीं। संक्षेप में यही उपन्यास का सक्षिप्त रूपरेखा है।

इस उपन्यास में कथानक के विकास के साथ ही साथ डॉ॰ भगवानदास के व्यक्तित्व का भी विकास होता गया। उपन्यास के मुख्य नायक के रूप में ही नहीं वरन् महान् त्यागी कम्यूनिस्ट नेता और पार्टी प्रवक्ता के रूप में वह कथानक को

---

२. देशद्रोही – यशपाल। पृष्ठ सं॰ ११८

एक नयी दिशा देते हैं। देशद्रोही सही अर्थो मे एक राजनीतिक उपन्यास है क्योकि इसकी रचना ही एक प्रमुख राजनीतिक दल पर लग जाने वाले एक झूठे आरोप का निराकरण देने के उद्‌देश्य से हुई है। इस उपन्यास के प्राय: सभी पात्र इतने क्षीण और लघु व्यक्तित्व के हैं कि स्पष्ट हो जाता है कि कम्युनिस्ट समाज में सचमुच समाज की सर्वग्रासी सत्ता व्यक्तित्व के विकास और प्रसार को कुण्ठित कर देगी। लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से राजनीतिक एक सरसता से बचाने के लिए जिस प्रकार उसमे रोमास के तत्त्वों की बुनावट की है उसी प्रकार कुछ सामाजिक महत्त्व के प्रश्नो को भी उठाया है।

महापडित राहुल सास्कृत्यायन ने इस उपन्यास से सतुष्ट होकर लिखा है. यशपाल की परतूलिका उतावलेपन के लिए नही, स्थायी मूल्य की चीजो के लिए है।.. इस उपन्यास को ससार की किसी भी उन्नत भाषा के उपन्यासो की श्रेणी मे तुलना के लिए रखा जा सकता है।

ग. दिव्या (१६४५ ई०)

बौद्धकालीन कथानक के आधार पर दिव्या ऐतिहासिक उपन्यास का सृजन है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है। लेखक ने कला के अनुराग से काल्पनिक चित्र मे ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ का रंग देने का प्रयत्न किया है। 'दिव्या' में यशपाल ने कला को जीवन का उपकरण मात्र माना है–"कला केवल उपकरण मात्र है। कला जीवन के लिए और उसकी पूर्ति में ही है।"[१]

---

१. दिव्या – यशपाल। पृष्ठ स० १५७

'दिव्या, उपन्यास मे दिव्या ही सम्पूर्ण उपन्यास की आत्मा है। दिव्या की जीवन सरिता मे दारा और अशुमाला के रूप में दो धाराएँ आकर मिलती हैं। त्रिवेणी मे गगा की जलधारा यमुना और सरस्वती का जल ग्रहण कर जब काशी पहुँचती है तब यह बताना नितान्त कठिन हो जाता है कि इस जलधारा मे कितना जल गगा का है और कितना यमुना या सरस्वती का है, उसी प्रकार दिव्या की जीवन गगा मे भी दारारूपी यमुना और अशुमाला रूपी सरस्वती का जल मिल जाता है अर्थात् दिव्या के समग्र जीवन का यही विभिन्न पक्ष है। दिव्या का जीवन एक तीव्र व्यग्य से पूर्ण है। वह एक नारी जीवन की करुण कहानी है।

'दिव्या' धर्मस्थ पंडित देवशर्मा के ज्येष्ठ पुत्र की कथा है अर्थात् देवशर्मा की प्रपोत्री है, उसके उज्ज्वल भविष्य के विश्वास से ही उसे दिव्या पुकारा गया लेकिन दुर्भाग्य से जन्म के बाद ही माता–पिता, पितामह दैवीय प्रकोप से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। प्रपितामह देवशर्मा के वात्सल्य के रूप मे दिव्या का लालन–पालन हुआ। प्रपितामह देवशर्मा, आस्था नगर मे ज्ञानमय वातावरण से परिपूर्ण थे "इसी वातावरण में पोषित होकर दिव्या, ज्ञान, कला और सस्कृति में उसी प्रकार सुपूर्ण थी जैसे कमल जल से भींगा न रहने पर भी जल से रचा रहता है उसकी विशेष रुचि सगीत एवं नृत्य में थी[1] और दिव्या इसी मे रमी रहती और अपने नृत्यकला की प्रशसा सुनकर प्रायः मुग्ध हो जाती और सोचती कि यही कला उसके जीवन के लिए अनिवार्य है प्रसाद में उपस्थित.. वृद्धजन और कुल स्त्रियॉ कला मे उसकी 'दिव्या' आदित्य क्षमता के लिए साधुवाद देकर आशीर्वाद देते थे। अभिजात युवक और कुल स्त्रियाँ उसकी स्तुति करती थी। उस प्रसंशा से उसे उत्साह और सतोष प्राप्त होता था।[2] सरस्वती पुत्री का सम्मान पाकर दिव्या ने सागल उपन्यास की कथा का

---

१. दिव्या – यशपाल। पृष्ठ सं. २२

२. दिव्या – यशपाल। पृष्ठ सं. २८

प्रारम्भ भद्र राज्य की सागल गणपरिषद द्वारा आयोजित मधुपर्व से होता है। इस आयोजन मे सागल के द्विज कुल की कन्या, महापण्डित देवशर्मा की प्रपोत्री और राजनर्तकी मल्लिका की शिष्या दिव्या को सर्वश्रेष्ठ नृत्यकला के प्रदर्शन पर 'सरस्वती पुत्री' तथा दास पुत्र पृथुसेन को सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी की उपाधि से सम्मानित किया जाता है यही वह अवसर होता है जब दिव्या पृथुसेन के प्रति आकर्षित होती है। पृथुसेन और दिव्या के लिए यही प्रेम की पृष्ठभूमि तैयार होती है। पृथुसेन "दिव्या का हाथ अपने हाथ मे लेकर क्षोभ से कहा प्रिय देख लिया तुमने यह है युद्ध के लिये आयोजन   दिव्या ने अधीर होकर उत्तरीय से नेत्र ढक लिये।" इस तरह दोनो ही प्रगाढ प्रणय–सूत्र मे बंध जाते हैं। इसी बीच यवन नृपति केंदस का आक्रमण होता है, पृथुसेन को युद्ध मे जाने का आदेश मिलता है, जाने से पूर्व वह दिव्या से मिलता है और विवाह का वचन देता है। यह वह अवसर रहता है जब दिव्या बिना विवाह किये ही पृथुसेन के अश को स्वीकार कर लेती है। . "विवाह की विधि से पृथुसेन को पाये बिना अपने शरीर में उपस्थित पृथुसेन की अंश की रक्षा वह विरोधी दृष्टियों से किस प्रकार करे ? यह उसके जीवन की सम्पूर्ण महत्त्वाकांक्षा और माधुर्य कलंक और अपराध माना जा रहा था। ... पृथुसेन की संतान धारण करने के लिए ही पृथुसेन से उसका विवाह होगा। . फिर वही विषय अब इतना प्राणांत क्यो बन गया।[1]

युद्ध से लौटने के पश्चात् पिता की आज्ञा के सामने पृथुसेन को सीरो से विवाह करने पर विवश होना पडता है। इधर दिव्या पृथुसेन द्वारा प्रदत्त गर्भधारण कर चुकी थी अतः उसे जब पृथुसेन के विवाह की खबर सुनाई देती है तो उसे गहरा आघात लगता है। वह उससे मिलने प्रेस्थ प्रसाद में जाती है और सूचना देती है

---

१. दिव्या – यशपाल। पृष्ठ सं॰ ६०–६१

कि दिव्या आयी है लेकिन उसको उत्तर मिलता है–"आर्य इस समय प्रमदोद्यान मे गणपति की प्रपोत्री आयुष्मती सीरो की संगति मे है. "आर्य क्षमा निवेदन करते हैं, वे अस्वास्थ्य के कारण सगति लाभ करने मे असमर्थ हैं दिव्या के कानो ने उत्तर सुना परन्तु हृदय ने विश्वास न किया. उसे पृथुसेन के उत्तर ने झोंके से सहसा बुझा दिया।[१] लज्जा और ग्लानि के कारण वह सागल छोडकर चली जाती है यही से दिव्या के जीवन की नरकीय यात्रा प्रारम्भ होती है। दास प्रतूल के हाथों मे पडकर वह एक दूसरे व्यक्ति के हाथ बेची जाती है। वह अपने जीवन मे अनेक यत्रणाए और अत्याचार भोगती है। वह इस जीवन से इतनी त्रस्त हो जाती है कि अपना जीवन समाप्त करने के लिए नदी मे कूद पडती है किन्तु नर्तकीय रत्नप्रभा द्वारा बचा ली जाती है फिर दिव्या का नया रूप अशुमाला नर्तकी के रूप में समाज मे मन बहलाने के साधन बन जाने के लिए बाध्य हो जाता है। उसकी कथा यही समाप्त नही होती और कालचक्र उसे एक बार फिर सागल ले जाता है। सागल का अभिजात्य समाज दिव्या को एक वेश्या के रूप मे स्वीकार नही करता। निराश होकर दिव्या एक पांथशाला में शरण लेती है जहॉ आचार्य रूद्रधीर पृथुसेन (जो बौद्धभिक्षु बन चुका था।) और दार्शनिक मारिश पहुॅच कर दिव्या के समक्ष प्रणय निवेदन करते हैं रूद्रधीर दिव्या को महारानी बनाने का प्रलोभन देता है पृथुसेन उसके समक्ष बौद्ध सघ मे आने का प्रस्ताव रखता है और मारिश उसे दुःख–सुख की संगिनी के रूप में स्वीकार करना चाहता है दिव्या जो अब तक काफी भटक चुकी थी पत्नी का दर्जा न ही पृथुसेन को सकी न ही रूद्रधीर को, वह अत्यन्त थकी हुई–सी जीवन का जो लक्ष्य खोजती फिरती है वह मारिश के निवेदन में मिलता है। यही कारण है कि दिव्या मारिश के निवेदन को ही थके–हारे हुए जीवन

---

१. दिव्या – यशपाल। पृष्ठ सं. ६७

का सार तत्त्व दिखायी देता है। अतएव दिव्या भित्ति का आश्रय छोड दोनो बाहो फैलाकर आर्द्र स्वर मे कहती है "आश्रय दो आर्य।[१] और यही उपन्यास की मूलकथानक की सक्षिप्त रूपरेखा है।

घ. गीता पार्टी कामरेड (१६४६ ई०)

यशपाल कृत गीता पार्टी कामरेड सन् १६४६ ई० का आम चुनाव और मुम्बई का नाविक विद्रोह है। लेखक ने अपने इस उपन्यास मे कम्यूनिस्ट विचारधारा को उच्चतर रखने के उद्देश्य से तथा काग्रेसियों मे व्याप्त अनैतिकता का पर्दाफाश करने के लिए आम चुनावो की घटना को कथानक की पृष्ठभूमि मे रखा है। इस उपन्यास मे कम्यूनिस्ट कार्यकर्त्ताओं की सच्ची लगन, निष्ठा, ईमानदारी और आजादी के लिए उनकी व्याकुलता दिखाकर पार्टी के ऊपर लगाये गये आरोपो का खण्डन करना है।

उपन्यास की नायिका गीता पार्टी की परिश्रमी व ईमानदार सदस्या है जो पार्टी में छपी पत्रिका का विक्रय करती हुई दिखायी देती है वह कालेज मे भी पढती है। "अखबार बेचने के लिए पुकारने से उसका चेहरा गुलाबी हो रहा था "[२]

कथा का विकास सूत्र अब तक इस लक्ष्य को भी लेकर चलता है कम्यूनिस्ट पार्टी के महत्त्व को सिद्ध करने के उद्देश्य से लेखक ने स्थान–स्थान पर भावाजी और राम गोपाल के माध्यम से कांग्रेसियों के आडम्बर को व्यवहार और स्वार्थपूर्ण नीतियों पर गहरा प्रहार किया है। कम्यूनिस्ट युवती गीता के प्रभाव से खुँखार गुण्डे भावरियों का आजादी के लिए जुलूस का नेतृत्व करना उसके जीवन में हुए

---

१. दिव्या – यशपाल। पृष्ठ सं. २२०

२. गीता पार्टी कामरेड – यशपाल। पृष्ठ स. १३

परिवर्तन की ओर लाना आदि घटनाएँ मुख्य रूप से चित्रित इस उपन्यास में की गयी है। भावरियो के जीवन मे आरम्भ से ही "घर मे पिता का भय मन मे भगवान का भय और स्कूल मे मास्टर के बेत का भय. पद्‌मलाल भावरिया को जीवन असहाय जान पडने लगा.. उसके लिए पुरुष के लिए उन्माद और सामर्थ्य की चरम साधना है नारी। उसमे बन्धन और सीमा क्या ?"[१]

पार्टी कामरेड उपन्यास मे पदमलाल भावरिया के आमोद–प्रमोद पूर्ण जीवन मे सहसा परिवर्तन प्रतिक्रियाकरण का परिणाम है। बाल्यावस्था मे उसके पिता भगत जी ने यमलोक के दण्ड का भय दिखाकर उसे चोरी करने, जुआ खेलने, नशा आदि कामो से विरक्त करने का प्रयास किया था। उन्होने मन्दिर पर इन दृश्यो को खुदवा रखा था। इन भयंकर दृश्यो को देखकर पद्‌मलाल भावरिया का मन दहल जाता है। कुछ दिनों तक वह ऐसा सहमा–सहमा से रहता जैसे बिल्ली को देखकर चूहा सहम जाता। पुजारी जी पद्‌मलाल भावरिया को उपदेश देते हैं (मनुष्य चौरासी लाख योनियो मे दुःख भोगता है। कुछ दिनो तक इस आतक से उसने घर से बाहर निकलना छोड दिया। उसे सब ओर पाप ही पाप दिखायी देता था, और धर्म केवल भय मे। भय को इस अतिशयता की प्रतिक्रिया यह होना स्वाभाविक था और हुई भी। कुछ दिनो तक इस आतंक का प्रभाव उस पर रहा भी किन्तु थोडे समय मे ही पद्‌मलाल के मन से यह आतंक निर्बल हो ऐसा उड गया जैसे कच्चा रग दूध में फीका पडने लगता है। वह जिस ओर आकर्षित होता उसी ओर पाप का भय था। पर पूरा समाज उसी पापमय दुनिया की ओर बहा जा रहा था। भावरिया भी कैसे न इस ओर बहता। उसके जीवन में बदलाव आया तो वह गीता के सामीप्य से। गीता के प्रभाव से खूँखार गुण्डे भावरिया का आजादी से जिस जुलूस का नेतृत्व

---

१. गीता पार्टी कामरेड – यशपाल। पृष्ठ सं॰ १५–१८

करना और आखिरी मे घायल होकर स्वाधीनता की बलिवेदी पर उसका अन्त हो जाना आदि कथानक की प्रमुख घटनाएँ हैं। एक खूँखार व्यक्ति को स्त्री के सामीप्य से सुधार लाना लेखक की लेखनी की सबसे बडी कला है। जो भावरिया अपने जीवन मे अन्य किसी बातो को महत्त्व नही देता वही सारे बुरे काम छोड पार्टी में अपनी अहम् भूमिका निभाता है। गीता को जब भावरिया के घायल होकर मृत्यु का समाचार मिलता है तो वह "उमडती हुई हिचकी को गीता पी गई। पलको मे ऑसू भर जाने के कारण वह कुछ स्पष्ट देख नही पा रही थी। मन से उठते आवेश को दबाये रखने के लिए दॉतो को ओठो से काट रही थी। परन्तु गालो पर से ऑसुओ की धाराएँ बहती गयी। सहसा सुनाई दिया (कामरेड अटेन्शन) .[१] इस तरह भावरिया का इस लोक से जाना गीता को काफी दु.ख पहुँचाता है।

लेखक ने इन घटनाओं का चित्रण अपने कथानक की सिद्धि के लिए ही किया है उन्होने कथ्य के अनुसार कथानक मे अनेक मोड भी उपस्थित किया। माटुगा क्लब की घटना के पश्चात् भावरियॉ मे आया अचानक हृदय परिवर्तन और कथानक के अन्त में उसका गोली का शिकार होकर पार्टी के लिए शहीद हो जाना लेखक की लक्ष्यवादिता को ही प्रस्तुत करते हैं। हृदय परिवर्तन का यह मोड बुर्जुआ नैतिकता और समसमायिक गॉधीवादी हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त की अनजाने स्वीकृति का द्योतक है। उपन्यास में पार्टी कार्यकर्त्ताओं का सामाजिक बोध और न्याय भावना भी सही नही कही जा सकती। पार्टी के प्रति गीता का आकर्षण वैयक्तिक अनुभव से अधिक सिद्धान्तों के कारण है। यही उपन्यास का मूल प्रतिपाद्य विषय है।

---

१. गीता पार्टी कामरेड – यशपाल। पृष्ठ सं॰ १११

ङ. मनुष्य के रूप १६४६ ई०

'मनुष्य के रूप' उपन्यास मे मनुष्य की हीनता और महानता के यथार्थवादी दृष्टिकोण को पिरोते हुए नारी मनःस्थिति को रूपायित किया है।

'मनुष्य के रूप' फिल्मी तकनीक पर विरचित उपन्यास है। लेखक ने 'सोमा' के चरित्र को कल्पना के इन्द्रधनुषी रगों से अलकृत करने का उपक्रम किया है। सोमा का परिचय मनुष्य के रूप के प्रारम्भिक अशो मे ही रहस्यमय ढंग से दिया गया है। धनसिह के अप्रत्याशित सम्पर्क को माध्यम बनाकर सोमा के चारित्रिक विकास को उद्घाटित किया है। सोमा की दो बहनें एव एक भाई था। सयोगवश सोमा विधवा हो गयी और यही से उसके जीवन मे समस्याएँ पनपने लगीं। सोमा धनसिह को फ्लैश बैक या पूर्व दीप्त सी के माध्यम से विगत जीवन से अवगत कराती है।

भारत में नारी स्वातंत्र्य की अनुशंसा कदापि नही की गयी है। स्वतंत्रता नारी को अर्द्धभ्रस्ट करती है। आधुनिक समय में नारी इस व्यवस्था को चुनौती दे रही है। पुरुष की भॉति नारी भी स्वच्छन्द जीवन जीना चाहती है। वैधत्व आज नारी के जीवन जीने मे बाधक नही है। सोमा नारी पात्र इसी चिंतन के वशीभूत होकर मोटर–चालक धनसिह की सहानुभूति पाकर उसके साथ रहने का निर्णय लेती है। सोमा का निर्णय उसके लिए सुखद और कामान्ध नही रह पाता। चूँकि सोमा धनसिंह की परिणीता नहीं थी, इसलिए समाज ने उसे 'सोशल सेक्शन' नहीं प्रदान किया। धनसिंह दण्डित होता है और पुलिसकर्मी उसकी असहाय अवस्था का लाभ उठाकर उसका कायिक शोषण करते हैं। इस प्रकरणोपरान्त सोमा का जीवन एक

अभिनव करवट लेता है। कामरेड भूषण सोमा की सहायता करता है। उसे एक सम्पन्न परिवार में जीवन यापन करने के लिए सशक्त बना देता है। अपने अप्रतिम रूप-सौन्दर्य के कारण वह बैरिस्टर जगदीश सलोरा को अपनी ओर अनजाने ही आकर्षित कर लेती है। उसकी निजी आर्थिक विषमता उसे रखैल बनकर रहने के लिए विवश करती है।

"इसलिए वह वैरिस्टर साहब की ऑखे खोलते ही भोलेपन और सकोच की अदा से रिझा देती सोमा पलके झुकाए बैरिस्टर के लिए चाय बनाने लगी बैरिस्टर साहब को सन्तुष्ट कर लेना इस घर मे विशेष सुधरता का प्रमाण समझा जाता।'[१]

यह प्रेम प्रसग शीघ्र ही अनावृत्त हो जाता है। बैरिस्टर के घरवाले इस अवैध सम्बन्ध को स्वीकृति नहीं प्रदान करते। स्वभावत. बैरिस्टर के आवास पर उखाड–पछाड होने के कारण सोमा पुन· दुर्भाग्य और दुर्गति का शिकार होती है। इस प्रकार समुचे उपन्यास मे लेखक एक ओर मनुष्य के मुख पर लगे कृत्रिम मुखौटे को हटाकर मनुष्य का वास्तविक रूप उद्घाटित करता चलता है, दूसरी ओर सोमा के जीवन में नव्यतर रस–रंग घोलता चलता है। कथा साहित्य की पुरानी पहचान, जिज्ञासा, कौतूहल, विस्मयकारी समस्याओं से सम्प्रक्त थी। यशपाल का 'मनुष्य के रूप' इसी प्रकार आरोह–अवरोह से जुडे किन्तु प्रशस्त राजमार्ग पर अग्रसर रहता है।

सोमा पुन बैरिस्टर के ड्राइवर (बरकत) के हाथों की कठपुतली बनती है। फिल्मी पैटर्न पर लिखित होने के कारण सोमा ड्राइवर के साथ फिल्म नगरी, मुम्बई पहुँच जाती है। बनवारी उस अपरूप सौन्दर्य की प्रतिमा को देखकर, उसका परिचय फिल्म जगत के निर्माताओं से करा देता है। सोमा की मोहक छवि का जादू फिल्म निर्माताओं के सिर पर चढ़कर बोलता है। अब तक सोमा अपनी भुवन

---

१. मनुष्य के रूप – यशपाल। पृष्ठ सं. ७५

मोहिनी काया का मूल्य ऑक चुकी होती है। वह अपनी रूप छवि को समर्थ लोगो के सम्मुख दॉव पर लगाकर उसका भरपूर लाभ उठाती है। सोमा एक सामान्य नारी होकर भी फिल्म अभिनेत्री बनने में समर्थ होती है। यह बताने की आवश्यकता नही कि इस व्यापार में उसे कही हानि नहीं होती वह कभी समाज की उपेक्षिता थी, किन्तु उसकी लोक प्रसिद्धि उसे जन–जन का कठहार बना लेती है। यही पर उसकी मुलाकात फिल्म एजेन्ट सुतलीवाला से होती है। वह मनोरमा का नपुसक पति है। वह मनोरमा को मात्र अपने फिल्मी व्यापार के लिए लाता है और अन्त में उसका तलाक हो जाता है। मनोरमा से तलाक मिल जाने के पश्चात् वह सोमा को अपने जाल में फॅसाता है। नारी उसके लिए मात्र खिलौना मात्र है।

"नारी के लिए प्रेम का परिणाम रक्त है। हृदय का रक्त अथवा शरीर का रक्त पुरुष केवल ठोकर मार कर चला जाता है . यही नारी का भाग्य है और यही उसका गौरव भी है।'[१]

उपन्यास का सम्पूर्ण कथानक सोमा के चरित्र को केन्द्र मे रखकर निर्मित हुआ है। सोमा का सम्पूर्ण जीवन परिस्थितियो के अनुकूल बदलता ही जाता है। वह अपने ससुराल वालों के अत्याचारो से मुक्त होने के लिए ही मोटर चालक धनसिह के साथ भागती है। यहीं से उसके जीवन में शोषण और अत्याचार का नया सिलसिला प्रारम्भ होता है। धनसिंह को सोमा के भगाने के जुर्म मे सजा हो जाती है और सोमा पुलिसवालों की वासना का शिकार होती है। यहीं से उसका परिचय कामरेड भूषण से होता है वह उसे एक सम्पन्न परिवार में पहुॅचा देता है किन्तु यहॉ भी सोमा को अपने आश्रयदाता बैरिस्टर जगदीश सलोरा की वासना तृप्ति का साधन बनना पड़ता है और उसकी भूमिका मात्र रखैल बनकर रह जाती है। एक

---

१. मनुष्य के रूप – यशपाल। पृष्ठ सं. ७६

दिन घरवालो के विरोध के कारण उसे घर छोडना पडता है, अब उसके जीवन की बागडोर बैरिस्टर साहब के चालक बरकत के हाथ में पहुँच जाती है। वह उसे भगाकर मुम्बई ले जाता है। यहाँ सोमा का साथ देता है बनवारी, जो फिल्म क्षेत्र मे काम करता है। वह सोमा का परिचय भी फिल्म निर्माताओ से करा देता है। फिल्म निर्माता भी यद्यपि सोमा को भोग की भूमिका के अन्तर्गत ही स्वीकार करते हैं तथापि इसके मूल्य पर वे सोमा को एक फिल्म अभिनेत्री भी बना देते हैं। एक साधारण स्त्री से उठकर सोमा 'पहाडन' सिने अभिनेत्री के नाम से विख्यात हो जाती है दूसरी ओर सोमा को भगाने पर उसके चरित्र की रक्षा करने के आरोप मे धनसिह पुलिस की हिरासत से छूट तो जाता है किन्तु राजनीतिक आन्दोलन मे भाग लेने तथा आजाद हिन्द फौज का सिपाही बन जाने के कारण पुन जेल जाता है।

महायुद्ध के बाद जेल से छूटकर वह भूषण की सहायता से सोमा से मिलने का प्रयास करता है, किन्तु सफल नही हो पाता। मुख्य कारण इसका यह है कि सोमा जीवन के कटु यथार्थो को इतना भोग चुकी थी कि अब वह किसी भी प्रकार का खतरा मोल लेने को तैयार न थी। वह स्पष्ट शब्दों मे धनसिह को पहचानने और स्वीकार कर लेने से मना कर देती है, इतना ही नहीं फिर एजेन्ट सुतली वाला से विवाह करने का निश्चय करती है जबकि सुतलीवाला नारी का शोषण करनेवालो में प्रमुख व्यक्ति है।

'मनुष्य के रूप" की सोमा के जीवन मे उसकी चेतना और अन्ततः उसके जीवन–मूल्यों में जो भी परिवर्तन दिखायी पडता है वह आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण ही है। गरीबी से घुटती हुई सोमा विधवा होने पर धनसिंह के साथ भाग जाने मे कुछ भी अनुचित नहीं समझती। वही सोमा फिल्म

जगत की प्रसिद्ध अभिनेत्री हो जाने पर अपने पूर्व प्रेमी धनसिह को पहचानती तक नही क्योंकि उसके लिए किसी एक के साथ बन्धकर रहने वाली नैतिकता व्यर्थ प्रतीत होती है।

इसके अतिरिक्त अनेक प्रासंगिक कथाएँ भी उपन्यास मे विद्यमान हैं जिनमे भूषण और मनोरमा की कथा विशेष उल्लेखनीय है। भूषण एक सामान्य परिवार का व्यक्ति है। उसकी आस्था मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति है। वह कम्यूनिस्ट पार्टी का सक्रिय कार्यकर्त्ता है। मनोरमा ठेकेदार ज्वाला सहाय की इकलौती लडकी है। पूँजीवादी सस्कारोवाले परिवार से सम्बन्धित होने के बाद भी मनोरमा न केवल भूषण से प्रेम करती है बल्कि विवाह भी करना चाहती है। वह भी मार्क्सवादी विचार धारा से प्रभावित है। अपनी सामान्य स्थिति के कारण भूषण मनोरमा को प्रेम और विवाह के सम्बन्ध मे कोई प्रोत्साहन नही देता फलस्वरूप निराश और पारिवारिक कलह के कारण मनोरमा फिल्म एजेण्ट सुतलीवाला से विवाह कर मुम्बई आ जाती है। सुतलीवाला से पुरुषोचित प्रेम न पाकर उसका दाम्पत्य जीवन लडखडाने लगता है।

"वह सोचती है कि क्वॉरे जीवन में वह कौन–सा अभाव था जो अब पुरा हो रहा है ?.. लडकियॉ विवाह के बाद कैसी हॅसी–भरी गुदगुदाई–सी जान पड़ती है. .. जैसे कोई रहस्य उनके होंठों पर आकर फूट जाना चाहता हो।"[१]

जिसकी परिणति अन्ततः तलाक मे होती है। मनोरमा अब स्वतंत्र रूप से भूषण के साथ कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यक्रमों में भाग लेती है, उसके साथ रहकर ही संतोष प्राप्त करती है। यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रह पाती। एक दुर्घटना मे घायल

---

१ मनुष्य के रूप – यशपाल। पृष्ठ सं. १४७

होकर भूषण की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार उपन्यास मे भूषण मनोरमा की असफल प्रेमगाथा अपना विशिष्ट महत्व रखती है। मुख्य कथा एव पात्रों से सम्बद्ध होने के कारण इसका परिचय आवश्यक जान पडता है।

कथानक के अन्तर्गत भारतीय समाज के बदलते हुए रूप भी दिखायी पडते हैं। लेखक ने सामती वातावरण से छुटते हुए गॉवों का बडा ही यथार्थ चित्रण उपन्यास मे अंकित किया है, इन्ही गावो मे सोमा जैसी अनेक नारियों को दिन–रात घुटना पडता है उन्हे स्वय को समाप्त कर परिवार की इच्छाओं और आदेशो का पालन का मात्र अधिकार प्राप्त है। अग्रेजी साम्राज्यवाद मे नगरो की हालत भी कुछ अच्छी नही थी। हमारे नगर उन दिनो शासको की नीति के कारण पीसते हुए दिखायी पडते है।

रक्षककर्मी भी भक्षण के रूप मे समाज में मुख्य रूप से फैले हुए हैं जो समयानुसार उसका फायदा उठाते हैं। धनसिह के साथ सोमा को भगाने के जुर्म मे जब पकडती है तो धनसिंह "दस रुपये जमादार को देता है वह लेने से इन्कार कर देता है किन्तु स्त्री को भोग्या की वस्तु के रूप में स्वीकार करता है।"[१]

उपन्यास के मूल में लेखक ने यह स्पष्ट करना चाहा कि व्यक्ति की चेतना और उसके जीवन मूल्यों को बदलने मे आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियो का विशेष योग रहता है। परिस्थितियो के समक्ष मनुष्य विवश हो जाता है।

यशपाल मार्क्सवादी विचारधारा के कथाकार हैं एक मार्क्सवादी लेखक के नाते यशपाल से यह अपेक्षा थी कि वह परिस्थितियों के प्रभाव में बहते हुए मनुष्य और उसके बदलते हुए रूपो को अवश्य प्रस्तुत करते। मार्क्सवाद के अनुसार समाज

---

१. मनुष्य के रूप – यशपाल। पृष्ठ सं॰ ४५

विकास का समूचा इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि परिस्थितियो के साथ मनुष्य भी बदलता रहा है। मनुष्य का यह बदला हुआ रूप सदैव एक उच्चतर भूमिका की ओर सकेत करता है। मार्क्सवाद मनुष्य को परिस्थितियो का दास नही मानता। इन बातो से स्पष्ट है कि यशपाल ने उपन्यास के अन्तर्गत मार्क्सवादी विचारधारा का सही प्रतिनिधित्व नही किया। उपन्यास मे परिस्थितियाँ मनुष्य पर न केवल गहरा दबाव डालती, अपितु उसे नियत्रित भी करती है। मनुष्य के रूप की कथावस्तु घटना प्रधान है। उपन्यास घटनाओ का एक जाल–सा बुना हुआ है और उसी के बीच लेखक ने फॅसे हुए मानव जीवन का रूप प्रस्तुत किया है। कथावस्तु की इस घटना प्रधानता ने अनेक स्थलो पर अस्वाभाविकता का भी आभास दिया है। उपन्यास की कथावस्तु बहुत रोचक है। यशपाल व्यापक अनुभवों से सम्पन्न कथाकार हैं। उन्होंने मानवीय जीवन को गहराई के साथ दूर–दूर तक देखा है। समाज के निचले वर्गो के जीवन से वे जितना परिचित हैं, ऊँचे कहे जानेवाले लोगो के जीवन का भी उन्हे निकट का बोध है। यही कारण है कि उन्होंने उपन्यास मे अपने इन अनुभवों को और अपने इस जीवन सम्बन्धी परिचय को बडी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। अन्य उपन्यासो की भॉति इस उपन्यास में भी लेखक ने राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण प्रश्नो के साथ प्रेम, सेक्स और रोमांस की विशेष प्रमुखता दी है। उपन्यास की नायिका सोमा के जीवन मे कई पुरुष आते हैं। लेखक ने सुरुचिपूर्वक नायिका के साथ उनके सम्बन्धों को प्रस्तुत किया है।

सोमा के अतिरिक्त उपन्यास की दूसरी प्रमुख नारी पात्रा मनोरमा है। सोमा नीच कही जानेवाली वर्ग की नारी है जबकि मनोरमा का सम्बन्ध अभिजात्य वर्ग से है।

'यशपाल ने कथानक मे गांधीवादी आन्दोलन से मार्क्सवादी आन्दोलन को श्रेष्ठतर सिद्ध करने का प्रयास किया है। अपनी इस सोद्देश्यता के कारण ही उपन्यास की अनेक घटनाओ को मनमाने ढंग से सचालित किया है। यदि ऐसा न होता तो कोई आवश्यक नही था कि सोमा फिल्म जगत् की प्रसिद्ध अभिनेत्री बनती और कामरेड भूषण की उपन्यास के अन्त मे कारुणिक मृत्यु होती।"[1] कुल मिलाकर लेखक ने तत्कालीन भारतीय समाज के विभिन्न आयामो का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। यह निसदेह स्थान की भी विशिष्ट उपलब्धि है।

च. अमिता (१९५६ ई॰)

'अमिता' का मूल कथ्य हिसा पर अहिसा की विजय है। अमिता अबोध बालिका के रूप में उपन्यास मे प्रस्तुत की गयी है जिसमे असीम सरलता, निश्छलता और प्रेम समाया हुआ है। अपने इन वाक्यो से "किसी से छिनो मत, किसी को डराओ मत, किसी को मारो मत" के वाक्य से अशोक जैसा क्रूर सम्राट् भी नत मस्तक हो जाता है। वस्तुत अशोक के समर्पण मे प्रेम और अहिसा के सामने हिसा और युद्ध की भयकरता का समर्पण दिखाया गया है, लेखक ने अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण विश्व शान्ति के लिए व्यग्र और प्रयत्नशील है, इसीलिए वह इसमे मार्क्सवादी सिद्धान्तों से काफी दूर हटा दिखायी देते हैं।

उपन्यास का कथानक कलिंग पर अशोक के आक्रमण से होता है, कलिंग नरेश करवेल ने युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं। प्रस्थान के एक दिन पूर्व ही महारानी नन्दा एक पुत्री को जन्म देती हैं। पुत्री के जन्म पर राजज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि महाराज के विजय अभियान मुहूर्त में राजकुमारी अमित के

---

१. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ. पारसनाथ मिश्र; पृष्ठ सं॰ – १४४

अक्षय, वैभव और प्रतापी होने का सुयोग्य है. अमित वैभव और पराक्रम की स्वामिनी होने के विश्वास मे राजकुमारी का नाम अमिता रखा गया था।"[१]

भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होती है। कलिंग नरेश करवेल युद्ध मे विजयी अवश्य होते हैं, किन्तु रण मे गम्भीर रूप से घायल हो जाने से उनकी मृत्यु हो जाती है। मृत्यु से पूर्व अपने वश की रक्षा का भार सकुल शर्मा, महासेनापति आर्यभट्ट कीर्ति तथा धर्मस्थ आर्य प्रजित के हाथो मे सौंपकर वे अबोध बालिका को अपना उत्तराधिकारी घोषित करते हैं।

पराजित अशोक कलिग पर आक्रमण करने की पुन योजना बनाता है। युद्ध की तैयारियो मे कलिग भी सक्रिय होता है, किन्तु जब परिषद् के सदस्यगण युद्ध की आवश्यक तैयारियों की अनुमति के लिए महारानी नन्दा के पास जाते हैं तो वे उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर देती हैं और युद्ध और हिसा के प्रति अपनी घृणा प्रगट करते हुए.. "भगवान् की शक्ति पर विश्वास करो"[२] का उपदेश देती हैं।

युद्ध की आवश्यक तैयारियो के अभाव में कलिंग की सेना पराजित होती है और विजय के उन्माद मे अशोक के सैनिक सम्पूर्ण नगर मे लूट–पाट तथा अग्निकाण्ड प्रारम्भ कर देते हैं।

राज्य उद्यान मे क्रीडारत बालिका अमिता जब अपनी सखी परिचायिका हिता से अशोक द्वारा किये जानेवाले अत्याचार का समाचार सुनती है तो अपने पालतू कुत्ते बभ्रु की जंजीर लेकर अशोक को बॉधने चल देती है।

"महारानी जंजीर लेकर अशोक को बाँधने जा रही हैं यह सुनकर गोपाल को अपने कानों पर विश्वास न हुआ परन्तु उसके कानों ने फिर प्रासाद की छत पर से

---

१ अमिता – यशपाल। पृष्ठ सं॰ – १४–१५

१ अमिता – यशपाल। पृष्ठ सं॰ – १८

कलिग के सैनिको को पुकारते सुना महारानी जजीर लेकर अशोक को बॉधने जा रही हैं।"[1]

अशोक के सम्मुख वह अपना परिचय प्रजा की माता के रूप मे देती है और अशोक से पूछती है. तुम प्रजा से छीनते क्यो हो ? तुम प्रजा को डराते क्यो हो ? तुम प्रजा को मारते क्यो हो ? तुम्हे क्या चाहिए ?'[2] कलिग सम्राज्ञी के रूप मे एक अबोध बालिका की इस व्यवहार को देखकर अशोक आश्चर्य से भर उठता है। अन्त मे अमिता अशोक को एक ऐसे राजभवन मे ले जाती है जहॉ खिलौने सिहासन, मुरझाये हुए फूल और बर्तनो मे मिष्ठान रखे हुए थे अमिता अपनी बाहे फैलाकर चारो आरे पडे इस धन की ओर सकेत कर अशोक से बोली.. बोलो तुम्हे क्या चाहिए।"[3] पहले तो अशोक विवश, अप्रतिभ, मौन–भाव से खडे रहते हैं फिर सिहासन की ओर सकेत करते हुए कहते हैं कि .. "हमे कलिग का सिहासन चाहिए।" अमिता अत्यन्त सहज भाव से पूछती है. क्या तुम्हारे पास राजसिहासन नहीं है, फिर कहती है... तुम इसे ले जाओ, हम दूसरा ले लेगे। अमिता के इस भोलेपन पर अशोक का पाषाण हृदय जो एक लाख से भी अधिक सैनिको के रक्तपात से द्रवित न हो पाया था, पिघल जाता है। वे अपनी तलवार जमीन पर रखकर अमिता को गोद मे उठा लेते हैं और कहते हैं... "कलिग की महारानी मगध का विजयी सम्राट् हार गया। तुमने विजय पायी।"[4]

अमिता उससे किसी का कुछ न छिनने, प्रजा को न डराने और प्रजा को न मारने का वचन लेती है। अशोक प्रतिज्ञा करते हैं कि वे किसी से छिनेंगे नहीं, किसी को डरायेंगे नहीं, किसी को मारेंगे नही तथा युद्ध का त्याग कर निश्छल प्रेम से संसार के हृदयों को जीतेंगे।

---

१ अमिता – यशपाल। पृष्ठ सं. – १६१
२ अमिता – यशपाल। पृष्ठ सं. – १६४
३ अमिता – यशपाल। पृष्ठ सं. – '१६४
४ अमिता – यशपाल। पृष्ठ स. – १६५

संक्षेप मे उपन्यास का यही कथानक है। कथानक का दूसरा प्रमुख अंक हिता और मोद का प्रेम प्रसंग है। हिता जो अमिता की सखी और विशेष परिचायिका होने के साथ–साथ एक दासी भी है। हिता और मोद के प्रसंग द्वारा लेखक ने तत्कालीन शोषित समाज की पीडाओ को चित्रित किया है। दोनो एक दूसरे से प्रेम करते हैं। और विवाह करना चाहते हैं, पर दास होने के कारण उन्हें विवाह करने का कोई अधिकार प्राप्त नही है। वे विवाह तभी कर सकते हैं जब वे दास जीवन से मुक्ति पा जायॅ। परन्तु स्वतत्र नागरिक होने के लिए या तो राजाज्ञा उनकी सहायक बन सकती है या उनके स्वामियो को उन पर व्यय किये गये धन को देकर उन्हें मुक्त किया जा सकता है।

हिता अपने प्रेमी मोद को पति रूप में पाने के लिए सेठ सौमित्र के षड्यत्र का शिकार बनती है और महामात्य, महासेनापति आदि की उपेक्षाकर राजेश्वरी, अमिता को राजमाता के समीप ले जाती है और महारानी से कहती है कि "महारानी ने वरदान देने की प्रतिज्ञा की थी वह उनके प्रत्यागमन की प्रतिक्षा में है।"[1]

अमिता में दासों के प्रति होनेवाले अमानुषिक व्यवहार को दिखाया गया है। व्यापारी विट्ठल , मोद को इसलिए खिलाता–पिलाता है क्योंकि उसके द्वारा उसे अधिक लाभ की सम्भावना है।

सेठ सौमित्र को अपने व्यापार और धन की चिन्ता है, इसलिए वह हमेशा आचार्य और महासेनापति की योजनाओं को विफल बनाने का सफल प्रयास करता है तथा आचार्य द्वारा आयोजित महाबलि यज्ञ को बन्द करवाने के लिए महास्थविर जीवक से मिलकर महारानी नन्दा से निषेधाज्ञा प्रसारित करवाता है।

---

१ अमिता – यशपाल। पृष्ठ सं. – १३०

कथानक मे ब्राह्मणी और बौद्ध भिक्षुओ के वर्ग-संघर्ष को भी दिखाया गया है। वस्तुत तत्कालीन ब्राह्मण सभ्यता भिक्षुओ के कारण अपने विशेषाधिकारो पर प्रहार होते देख, क्षुब्ध हो उठी थी और इसलिए महामात्य आचार्य सुकठ राज्यसभा की रक्षा के लिए और साथ ही साथ गुप्त रूप से ब्राह्मण वर्ग की इतर जातियो के ऊपर स्थापित करने के लिए कलिग से बौद्धधर्म प्रभाव को मिटा देना चाहते हैं।

अमिता मे लेखक मार्क्सवादी सिद्धान्तो से हटकर विश्व—शान्ति के उपायो पर चिता करता दिखायी पडता है, कथानक की मूल निष्पत्ति के आधार पर वह युद्ध का विरोध प्रेम और अहिसा से सचालित समाज की पक्षधरता करता है यह उपन्यास युद्ध और शान्ति की समस्या पर आधारित है।

लेखक ने इसमे यह प्रतिपादित करना चाहा कि युद्ध हमेशा साम्राज्यवादी और प्रतिक्रियावादी शक्तियों के स्वार्थो की देन होता है और मानवीय प्रेम के भावो को लेकर ही मानवता अपनी वास्तविक स्वतत्रता का अनुभव कर सकती है और स्वतत्र मानवता स्वरूप विकास को सम्भव बना सकती है। अमिता उपन्यास इसी भाव—धारा को उजागर करती है। लेखक ने अपनी इस मान्यता की अभिव्यक्ति के लिए अशोक के मानव—प्रेम और युद्ध के प्रति उसकी वितृष्णा का दृष्टान्त प्रस्तुत करने वाली तथा उसके हृदय परिवर्तन से सम्बद्ध ऐतिहासिक घटना को केन्द्र मे रखकर उपन्यास का सृजन किया है।

लेखक ने तत्कालीन समाज में शोषित वर्ग की दयनीय स्थिति को बडी ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। दासों पर प्रभुवर्ग कितने घोर अत्याचार करता था तथा उन्हें किस प्रकार अपने स्वार्थसाधन में लगाये रहता था इसका भी सजीव वर्णन लेखक ने किया है। दास प्रेमी, मोद तथा हिता के प्रसंग द्वारा इस स्थिति को

लेखक ने विशेष रूप से उजागर किया है।

नेमिचद जैन ने 'अमिता' उपन्यास पर अनेक प्रकार के आरोप लगाये हैं। उनका कहना है कि लेखक ने अशोक को हृदय परिवर्तन की एक छोटी–सी घटना को केन्द्र मे रखकर अन्य घटनाओ का इतना लम्बा जाल फैलाया है कि मूल घटना उसे सभाल नही पाती। उनका कहना है कि उपन्यास की अपनी कोई निजी गति नही है और वह घिसटता हुआ चलता है। दासी हिता और दास कलाकार मोद की प्रणय कथा की उपन्यास मे आकर्षण उपस्थिति करती है अन्यथा उपन्यास को अत तक पढना भी कठिन हो जाता है। उन्होने, जैसा कि हम प्रारम्भ मे सकेत कर चुके हैं, लेखक द्वारा तत्कालीन समाज के चित्रण पर भी आपत्ति उठायी है और कहा है कि लेखक ने आज के बहुत से विचार और पूर्वग्रह उस युग के समाज पर आरोपित किये हैं। इस सन्दर्भ मे उनका इशारा लेखक द्वारा चित्रित वर्ग सघर्ष की ओर है। उनका यह भी कहना है कि लेखक उपन्यास मे अपने प्रतिपाद्य को सिद्ध नहीं कर पाता।

नेमिचन्द जैन के ये आरोप विचारणीय हैं। उपन्यास मे घटनाओ का अनावश्यक विस्तार अवश्य है, किन्तु उपन्यास मे रोचकता बराबर बनी हुई है। तत्कालीन युग के समाज चित्रण के तहत लेखक उस युग के जिस वर्ग संघर्ष या वर्ण संघर्ष का चित्रण किया है, आधुनिक युग के प्रभाव के बावजूद वह अप्रामाणिक नहीं है। उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य विश्वशान्ति का समर्थन है और उसका सीधा था सम्बन्ध अशोक के हृदय परिवर्तन की घटना से है, किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमिवाले इस उपन्यास में उस युग के सामाजिक जीवन उससे सम्बद्ध दूसरे महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर कुछ कहा ही न जाय। वस्तुतः यशपाल उपन्यास

की मूल घटना के ईद–गिर्द उस युग के सामाजिक जीवन का ताना–बाना बुनने मे काफी हद तक सफल हुए।

नेमिचन्द जैन की इस बात से सहमत हुआ जा सकता है कि उपन्यास मे किसी सशक्त और सुनिर्मित चरित्र की उद्भावना नही है।

उपन्यास मे यशपाल ने अमिता को अपनी मानवतावादी दृष्टि के प्रतिनिधि के रूप मे चित्रित किया है। छ वर्षीय अमिता शान्तिवादी विचारो को प्रस्तुत करती है और इस तथ्य को उजागर करती है कि जब तक व्यक्ति अहकारी और महत्त्वाकांक्षी रहेगा, दूसरो को डराकर–मारकर या दूसरो से छीनकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए अपने स्वार्थो की पूर्ति करेगा तब तक मनुष्यता पीडित रहेगी। उसके सम्पूर्ण क्रिया–कलाप उसके इसी आदेश पर आधारित है कि किसी से छीनो मत, किसी को डराओ मत, किसी को मारो मत। स्वय अशोक इस आदेश की पूर्ति का सकल्प लेता है। यशपाल के इस उपन्यास मे एक भारी परिवर्तन यह भी उजागर होता है कि वे जीवनपर्यन्त गांधीवाद से असहमत रहे हैं लेकिन अपने इस 'अमिता' उपन्यास में जिस प्रकार अशोक अहिसा का मार्ग दर्शक बनता है, उसी प्रकार मानो यशपाल जी ने भी पहली बार प्रेम-अहिंसा और ह्रदय परिवर्तन जैसे गाधीवादी सिद्धान्तों का समर्थन किया है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि 'अमिता' के रचना काल में कम्युनिस्ट संसार उदार होने लगा था, विश्व-शांति का नारा उधर से भी आने लगा था। अतएव 'अमिता' में उस नारे की अनुगूज सहज और स्वाभाविक प्रतीत होती है। अपने उद्देश्य की प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में उन्होंने काफी हद तक सफलता पायी है।

झ. झूठा–सच (१९५८–६० ई०)

हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम मे झूठासच एक ऐसा महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है जो सदियो तक आनेवाली पीढी को हिदुओ के शवो पर खडी की गयी पाकिस्तान की भव्य इमारत का दर्शन कराकर ऑसू बहाने के लिए मजबूर कर देता है।

उपन्यास की कथा एक छोटी-सी गली से बढकर महानगर बन जाने की तीखी यातनाभरी यात्रा की कथा है, इसमे एक मध्यवर्गीय भारतीय परिवार की कहानी को एक बहुत ही बडा आयाम दिया गया है। कथा का प्रारम्भ रामलुभाया की माता की मृत्यु पर विलाप करने के लिए एकत्रित हुई भीड से होता है। रामलुभाया और रामज्वाया दो भाई थे। वृद्धा प्राय अपने बडे लडके रामज्वाया के घर पर ही रहती थी। रामज्वाया रेलवे पार्सल दफ्तर मे नौकर थे, दूसरा लडका रामलुभाया एक साधारण अध्यापक थे। दोनो भाइयो के बच्चे थे, बडे भाई के बच्चो का विवाह हो चुका था किन्तु रामलुभाया के ऊपर अभी जिम्मेदारी शेष थी। रामलुभाया भोला पाधे की गली में रहते थे और रामज्वाया उच्ची गली मे। छोटे भाई के एक पुत्र और दो पुत्रियॉ थीं, बड़े भाई के दो लडके और एक लडकी थी। बडे भाई रामज्वाया ने अपने लडके का विवाह कर दिया था और लडकी शिलो की सगाई भी कर दी थी, लेकिन रामलुभाया न तो अपने लडके जयदेवपुरी को शादी कर सके और न ही तारा का सुखी वैवाहिक जीवन ही देख सके। जयदेवपुरी प्रथम श्रेणी में एम० ए० कर किसी कालेज में अध्यापक बनना चाहते थे किन्तु १९४२ ई० के स्वतंत्रता आन्दोलन से प्रभावित होकर राजनीति में प्रवेश कर जाते हैं।.." आन्दोलन में भाग लेने के कारण वह गिरफ्तार हो गया और जेल भेज दिया गया था.. देश की स्वतंत्रता के

लिए बलिदान से मुँह न मोड सका।"[1] तारा, जयदेवपुरी की स्वतत्र और उदार विचारवाली बहन है। वह एक कम्यूनिस्ट युवक असद से प्रेम करती है किन्तु उसका विवाह एक व्यभिचारी, लम्पट और दुराचारी युवक सोमराज से तय हो जाता है और जब उसको पता चलता है कि . उसकी मॉ बन्नी हाते के मुहल्ले में जाकर लडके को ठाके के (सगाई के) ग्यारह रुपये दे आयी है। उस दिन तारा छिप–छिपकर खूब रोई, सोचा भाई, उसकी इच्छा के विरुद्ध सगाई का समर्थन नही कर सकता था।"[2] अनेक विरोधो के बावजूद भी तारा का विवाह सोमराज से ही हो जाता है, सुहागरात के दिन तारा का पति उसे बुरी तरह पीटता है, जब उसे यह ज्ञात होता है कि तारा उससे विवाह नही करना चाहती थी तो सोमराज का शक उसके चरित्र पर जाता है और वह तारा से पूछता है "किससे है तेरी दोस्ती ? .. सोमराज का अपने क्रोध पर लगाया हुआ बांध टूट गया। उसने तारा को चोटी से पकडकर पलंग के नीचे गिरा दिया, दो लाते मारकर दॉत पीसते हुए वह गाली दी जो तारा ने कभी किसी भद्र पुरुष के मुख से नही सुनी थी.." भूखे मास्टर की औलाद, तेरी यह हिम्मत की मुझसे शादी के लिए मिजाज दिखाए,." बी॰ ए॰ में पढने का बहुत घमण्ड है ? तेरी जैसी बीसियों को मैंने देखा है, देखूगा तुझे।"[3] उसी समय हिंदू–मुस्लिम दंगों के कारण सोमराज भाग जाता है विवश तारा को भी ऊपर की मंजिल से परिस्थितिवश भागना पडता है। मुसलमानों के हाथों में पडने के कारण उसका सतीत्व नब्बू की पाशविकता का शिकार बन जाता है। वह व्यथाओं और पीड़ाओं को झेलती हुई पुनः असद से मिलती है किन्तु उसकी प्रतिक्षा न करके वह अमृतसर पहुँच जाती है।

जयदेव पुरी कम्यूनिस्ट नेता बनने की चाह मे इधर-उधर भटकता फिरता है।

---

१ झूठा–सच (पहला भाग) – यशपाल। पृष्ठ सं. – १६

२ झूठा–सच (पहला भाग) – यशपाल। पृष्ठ सं. – १७

३. झूठा–सच (पहला भाग) – यशपाल। पृष्ठ सं. – १७०

कनक से भी उसका प्रेम चलता है। कनक प० गिरधारीलाल की पुत्री है। कनक का परिचय ही लेखक ने "सन् १६४२ ई० की राजनीति मे भाग लेनेवाली कालेज की लडकियो मे थी सन् १६४२ ई० के आन्दोलन मे वह प्राय सभाओ एव जुलूसो मे सम्मिलित होती थी। महीन खद्दर की सफेद साडी पहने उसका सलोना चेहरा बहुत लोगो की दृष्टियो को खीचता था। जयदेवपुरी ने भी उसे देखा था।"[1] पूरी प० गिरधारीलाल का सदेश पाकर कनक के साहित्यिक अध्ययन विशेषता हिन्दी की पढाई मे परामर्श देने जाता था। यही से उन दोनो की परिचय प्रेम की प्रगाढता मे परिणित हो जाता है, किन्तु कनक का जीजा नैयर इस बात का घोर विरोधी है। नैयर हाईकोर्ट मे वकालत करता था और मॉडल टाउन मे अपने बगले मे रहता था। बॅटवारे के कारण सभी एक दूसरे से बिछड जाते हैं। यही उपन्यास के प्रथम भाग वतन और देश की सक्षिप्त रूपरेखा है जिसमे उपन्यासकार यशपाल ने बडी ही कुशलता एव सूक्ष्म दृष्टि से देश के विघटन के परिवेश मे कारुणिक कथा का विवेचन किया है।

उपन्यास का दूसरा भाग देश के भविष्य मे तारा, कनकपुरी की कथा वतन को छोडकर देश से आरम्भ होती है। विभिन्न कठिनाइयो को झेलती हुई तारा भारत सरकार के मत्रालय मे अण्डर सेक्रेटरी बन जाती है। पुरी एक काग्रेसी नेता सूद के चक्कर मे जीवन के पतन का मार्ग अपनाकर एक समाचार पत्र का सम्पादक बन जाता है। पुरी के जीवन मे उर्मिला का आगमन होता है, बिना विवाह किये ही वह उर्मिला के साथ रहता है और जब उर्मिला गर्भवती हो जाती है तो पुरी सोचता है " पुरी ने निश्चय कर लिया कि अब उर्मिला को सम्मानित पत्नी बनाना ही होगा। शहर मे उसका परिचय बहुत हो गया था।[2] पुरी ने धीरे से उर्मिला के कानो मे

---

१ झूठा–सच (पहला भाग) – यशपाल। पृष्ठ स० – २६
२ झूठा–सच (पहला भाग) – यशपाल। पृष्ठ स० – २६४

कहा "उर्मि हम आर्य समाज मे जाकर या कोर्ट मे जाकर सिविल मैरेज कर ले"[1] पुरी उर्मि से विवाह परिणय–सूत्र मे बधने सोच ही रहा था कि अचानक एक दिन कनक का आगमन पुन· उसके जीवन मे होता है। कनक जो अपने सारे रिश्तो को छोडकर पुरी के पास आती है लेकिन पुरी को उर्मिला के साथ देखकर अचम्भित हो जाती है। "कनक के मन मे भरी हुई बिजली समाप्त हो गयी, उसका शरीर ही निशक्त हो गया। कॉप गये कनक खडी न रह सकी उसका सिर उडा जा रहा था और साँस रुक गयी थी।"[2]

कनक का इस तरह से पुरी के जीवन मे आना पुरी को आश्चर्यचकित करना ही था क्योकि वह कनक को पाने की सारी उम्मीदें खो चुका था। वह कनक से कहता भी है कि .. "सब बताऊँगा। तुमसे कभी कुछ नही छिपाया। तुम धैर्य से सुनो पुरी का स्वर भीगा हुआ था। ठोढी कॉप रही थी। उसने अपने ऑसू छिपाने ५ ।लए ओठ दॉत से कॉट लिए और मुँख फेर लिया।"[3] वह कनक को अपनी विवशता के विषय मे बताता है कि जब आदमी चोट से पीडित हो जाता है तो मरहम की आवश्यकता सबको पडती है। उस समय मरहम के रूप में कनक को वह खोजता है, लेकिन कनक पारिवारिक कलह के कारण नही मिलती। इसलिए उर्मिला का सहारा उसे फिर से एक नये रूप में खडा करता है। कनक के आने के पश्चात् वह उर्मिला को भूल जाता है और गर्भावस्था में ही उसे नारी केन्द्र की शरण में पहुँचा देता है। कनक, पुरी से विवाह-सम्बध स्थापित करता है, कनक, बौद्धिक एवं शारीरिक दोनों ही धरातलो पर पुरी से घृणा करती है जिसका मुख्य कारण पुरी के विचारों मे परिवर्तन होना है। पुरी सूद के हाथों में पूरी तरह बिक जाता है, उसके विचार भी पहले जैसे उदारवादी नहीं थे। इन्हीं विचारों के कारण

---

१ झूठा–सच (पहला भाग) – यशपाल। पृष्ठ सं. – २६४
२ झूठा–सच (पहला भाग) – यशपाल। पृष्ठ सं. – ३०२
३ झूठा–सच (पहला भाग) – यशपाल। पृष्ठ सं. – ३०३

कनक पुरी से प्रेम करती है लेकिन जब पुरी मे वह पहले जैसा कुछ भी नही पाती तो बौद्धिक स्तर पर घृणा करती है। उर्मिला के प्रसंग पर वह पुरी से शारीरिक तौर पर घृणा करती है और जब स्थिति असहाय हो जाती है तो विवाह–विच्छेद हो जाता है। भोला पाधे की गली एव तत्कालीन पजाब मे प्रायः सभी हिन्दू–सिखो एव भारतवर्ष के असख्य मुसलमानो को वतन परिवर्तन के बाद जो नया जीवन प्रारम्भ करना पडता है वह मात्र इसलिए कि परिवर्तन के नियमो की मॉगे उन्होने अनसुनी कर दी थी। बदले हुए युग के अनुसार उन्होने जीवन को, उसकी मान्यताओ/ धारणाओ को, धन और सम्प्रदाय बदलने से इन्कार कर दिया था।

विभाजन के बाद देश मे भ्रष्टाचार का जैसे तूफान आ गया। भाई– भतीजावाद, रिश्वतखोरी, महंगाई, राजनीतिक नेताओ की धॉधली, शरणार्थियो की विवशता से अनुचित लाभ उठाने की नेताओ की भावना, शरणार्थी नारियॉ की इज्जत से खेलने की उनकी दुष्ट प्रवृत्ति, चुनाव जीतने के लिए हर प्रकार के हथकण्डो का प्रयोग आदि–आदि सैकडों प्रश्न ऐसे हैं जिन्हे उपन्यास के दूसरे भाग देश का भविष्य मे यशपाल ने अभिव्यक्ति दी है और उसके माध्यम से काग्रेसी शासन व्यवस्था पर पूरी शक्ति के साथ प्रहार किया है।

स्वर्गीय प्रधानमंत्री पं॰ जवाहरलाल नेहरू के भाषणों को आधार बनाकर यशपाल ने जो व्यंग्य किया है वह वस्तुतः प्रत्येक देशवासी को चिन्तातुर करनेवाला है। जनतंत्र में जनता के हितों का उत्तरदायित्व प्रेस और समाचार–पत्रों पर बहुत अधिक होता है। पर नेताओं और पूँजीपतियों ने अपने पैसों के बल पर इन्हें भी खरीद लिया है। पुरी का 'सूद' की इच्छानुसार लिखना इसी बात का उदाहरण है। पुरी बुद्धिजीवी है, पर गणतंत्र भारत में बुद्धिजीवियों की अवस्था बिके हुए गुलामों

की सी है।

इस प्रकार यशपाल ने झूठासच मे सन् १६४२ ई॰ से लेकर १६५७ ई॰ तक के भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का यथातथ्य चित्राकन किया है। जीवन के सभी क्षेत्रों मे व्याप्त बुर्जुआ मनोवृत्ति का रहस्योद्‌घाटन करते हुए सामाजिक उन्मेष का कार्य किया है। नवीन जीवन–मान्यता तथा समाजवादी समाज व्यवस्था अपनाने का आह्वान किया है।

लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से वर्तमान परिवेश का ऐसा चित्राकन किया है कि वह आधुनिकता की चेतना पर बिल्कुल खरा उतरता है। देश का भविष्य में इसी चिन्ता को लेखक ने तारा, पुरी व कनक के माध्यम से अपने विचारो को व्यक्त किया है।

ज. बारह घण्टे (१६६२ ई॰)

यह उपन्यास लघु उपन्यास पीठिका के अन्तर्गत आता है। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों में यशपाल ने राजनीतिक चित्रण के साथ-साथ प्रेम और विवाह जैसे प्रश्नों एवं समस्याओं को उठाया है। यह उपन्यास कुछ अलग तरह की भावभूमि लेकर प्रस्तुत हुआ है। इस उपन्यास में प्रेम और विवाह के ही प्रश्न को लेखक ने उठाया है और अपनी दृष्टि से उसके समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। "इस उपन्यास में कम-से-कम घटनाओ को कम-से-कम समय की चौखट में फिट कर अधिक-से-अधिक कथावस्तु को सवेदनशील बनाकर, मनोवैज्ञानिक कथा-वस्तु की विशिष्टता को 'बारह घण्टों' में प्रस्तुत किया गया है।"[1] इसमें नर-नारी के

---

१. यशपाल का कथा साहित्य – प्रकाशचन्द्र मिश्र। पृष्ठ सं. १५६–५७

परस्पर आकर्षण अथवा दाम्पत्य सम्बन्ध को सामाजिकता के कर्त्तव्यो की बेडी लाघकर आधुनिकता बोध की कसौटी पर परखने का प्रयत्न किया गया है। "एक ही प्रकार की वेदना से संतप्त जब दो विपरीत लिंगी व्यक्ति सही कारणों से एक-दूसरे के सम्पर्क मे आते हैं तो मनोवैज्ञानिक स्तर पर वह वही करते हैं जो साधारण नर-नारी करते हैं।"[१] सामाजिक कर्त्तव्यो को मनोवैज्ञानिक तर्को से सामने झुकना पडता है।

उपन्यास का कथानक सामान्य है। विधवा विनी अपने पति रोमी की समाधि पर फूल चढ़ाने के लिए कब्रिस्तान जाती है। वहॉ फेटम नामक एक प्रौढ विधुर भी बैठा होता है, जो अपनी पत्नी शैल की समाधि पर रोज आकर बैठता है। अचानक तभी मौसम खराब होने के कारण बारिश शुरू हो जाती है। विनी और फेटम दोनो को ही मजबूरी के कारण वहॉ रुकना पडता है। उनका आपस मे परिचय होता है। विनी अपने स्वर्गीय पति रोमी के स्वभाव, व्यवहार और प्रेम आदि के बारे मे बताती है और फेंटम अपनी स्वर्गीया पत्नी शैल की सहृदयता, प्रेम व्यवहार आदि के विषय में बताता है। दोनो समानधर्मी और समानपीडा से पीड़ित होने के कारण एक-दूसरे के दुःख को भलीभॉति समझते हैं और एक-दूसरे से पूरी सहानुभूति भी व्यक्त करते हैं। बातों का सिलसिला इस तरह शुरू होता है कि उनकी कुछ क्षण की पहचान स्थायी आत्मीयता में बदल जाती है।

ग्यारह माह पूर्व झील में डूबकर मरनेवाले अपने प्रियतम पति रोमी नेपियर की कब्र पर फूल चढाने के लिए प्रौढा विनी लखनऊ से नैनीताल आती है। अपनी बहन जेनी के यहॉं समान रखकर, फूल मुर्झा न जाये इस आशंका से वह तुरन्त सेमेट्री

---

१. हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास – डॉ धनराज मानधाने। पृष्ठ सं. १८७–८८)

चली जाती है। वही पर उसकी मुलाकात फेटम से होती है, जो एक-दूसरे के सच्चे हमदर्द बनते हैं। फेटम की पत्नी शैल टी॰ बी॰ के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाती है और वही पर दफन होती है जहॉ विनी के पति दफनाये गये थे। एक विधवा और एक विधुर एक ही मन स्थिति के दौर से गुजरते हैं। उनकी पीडा-दर्द वही समझ सकता है जो ऐसी विषम स्थिति से गुजरा हो। कहते भी हैं कि घायल की गति घायल जाने। विनी और फेटम ऐसी ही घायल अवस्था के दौर से गुजर रहे थे। दो दुःखी व्यक्तियो को एक सामान्य सूत्र में बॉधनेवाले घावो और मनोदशाओं का अति सूक्ष्म और कलापूर्ण अंकन लेखक ने बडी ही निपुणता और कौशल के साथ इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। प्रिय के वियोग की विह्वलता विनी और फेंटम दोनों के हृदय मे एकसाथ उमडती है। दोनों ही अपने प्रिय की स्मृति में अतीत मे गोते लगाने लगते हैं.. विनी अपने स्वर्गीय पति का दर्द फेटम के दु ख से लगाती है व सोचती है कि आज जैसे फेटम अपनी पत्नी की याद मे इतना उदास, दु खी है, वैसा ही यदि वह मर गयी होती, तो उसका पति रोमी भी इसी तरह असहाय दु खी रहता। ठीक ऐसी ही मन.स्थिति फेंटम के हृदय मे थी। दोनो अपनी-अपनी स्मृतियों में इतना डूबते जाते हैं कि विनी अपनी बहन जेनी के घर न जाकर फेंटम के घर चली जाती है। यहॉ पर वे अपने मनोभावों को अधिक स्पष्ट रूप मे व्यक्त करते हैं। अंत में स्थिति यह आती है कि दोनो एक-दूसरे से अलग नही होना चाहते। विनी एक पत्र लिखकर अपनी बहन जेनी को सूचना दे देती है कि वह सुरक्षित है तथा कुछ देर और रूककर आयेगी। इस सूचना के पूर्व जेनी, उसका पति पामर और मित्र लारेंस विनी के वापस न आने के कारण काफी व्यग्र थे। जेनी अपने पति पामर को इतनी बारिश में सेमेट्री भी भेजती है। अपने आपको भी बेहद कोसती है कि मैं जेनी के साथ ही क्यों न गयी। अपनी बहन विनी को लेकर वह बहुत ही चिन्तित

है उसे लगता है कि कही उसकी बहन अपने पति के वियोग मे अपना मानसिक सतुलन न खो बैठी हो। विनी का पत्र पाकर तीनो चिन्ता से मुक्त हो जाते हैं। विनी के इस कृत्य से जेनी और पामर सहन नहीं कर पाते। वे इसे अनैतिक और अनुचित मानते हैं। लारेंस जेनी और पामर के विचारो का विरोध करता हुआ विनी के इस कृत्य को स्वाभाविक और उचित सिद्ध करने का प्रयास करता है। वस्तुतः उपन्यास का मूल सार यही है।

इस उपन्यास के अतर्गत लेखक ने प्रेम और विवाह के कथ्य को केन्द्र मे रखकर उनके स्वरूप और स्थिति का पूरी गम्भीरता से विचार किया है। विधवा विनी और विधुर फेटम के प्रेम के सन्दर्भ मे एक ही डोर एक-दूसरे को बांधे रखती है और वह है एक-दूसरे की वैवाहिक स्मृतियों के चिह्न। फेटम अपनी पत्नी शैल के व्यवहार के ऐसे-ऐसे पहलुओं पर भी वार्ता करता है, जिसे कोई व्यक्ति परायी स्त्री के सम्मुख कर नहीं सकता। "यूँ तो वह लम्बी सुन्दर और सुडौल थी। रोग से उसके शरीर की अवस्था जो भी हो गयी हो, मेरे लिए उसका वही पुराना रूप था... ।"[1]

फेंटम आगे कहता गया कि . "जब शैली को पता चला कि उसके फेफेडे का टी॰ बी॰ है तो वह उसे चूमने तक न देती थी और वह आग्रह भी करता तो वह धक्का दे देती"[2]... विनी उसकी बातें सुनते-सुनते अतीत की स्मृतियों में खो जाती। कारण उसकी भी कहानी फेंटम जैसी ही है। बीच-बीच में उसे जेनी के मर जाने की याद आती है किन्तु फेंटम की कहानी का आकर्षण उसे रोके रखता है। कहानी के विकास के साथ-साथ फेंटम का दर्द इतना बढता जाता है कि विनी उसके दर्द को दूर करने के लिए दर्देदिल की दवा बनकर उसके साथ हमेशा के लिए रहने

---

१. बारह घण्टे – यशपाल। पृष्ठ सं. – ४५

२. बारह घण्टे – यशपाल। पृष्ठ सं. – ६६

का निश्चय कर लेती है। अपने पति रोमी के लिए जान देनेवाली विनी का केवल 'बारह घण्टे' में कुतिया बन जाना जेनी को अच्छा नही लगा। विनी यदि वैधव्य और अकेलेपन के कारण बिलखती, बिसूरती तो शायद जेनी और उसके दकियानूसी पति पामर को अच्छा लगता और वह उससे सहानुभूति भी रखते। यदि विनी अपने पति की याद मे आत्महत्या कर लेती तो वह उनकी नजरो मे महान् बन जाती किन्तु जब वह फेटम के यहॉ सुरक्षा और सन्तोष का अनुभव करती है तो उन्हे क्षोभ होता है। विनी और फेटम के जीवन की सबसे बडी मांग प्रेम की थी। दोनो यदि एक-दूसरे के सम्मुख आकर्षित होते हैं तो उसका सबसे बडा कारण उस प्रेम के हनन्न से है जो जिन्दगी ने उनके जीवन से सदा के लिए छीन लिया था। प्राय प्रेम और विवाह के सम्बन्ध मे परम्परागत धारण इस विश्वास को लेकर चलती है कि प्रेम दो आत्माओ के पवित्र सम्बन्ध पर आधारित होता है। शरीर के सम्बन्ध पर नही अर्थात् प्रेम एक आत्मिक सम्बन्ध है और विवाह ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है। उन दोनों के जीवन में जो रिक्तता आयी है वह आत्मिक प्रेम के कारण उपजी है क्योकि विनी और फेंटम के लिए शारीरिक भूख की अपेक्षा परस्पर एक-दूसरे का सहारा बनना ही नितान्त आवश्यक था। उन दोनो के कार्य को हम अनैतिक नहीं कह सकते। कारण उनके व्यवहार मे हम स्वार्थ और धोखा नहीं पाते बल्कि वो दर्द पाते हैं जो एक जीवनसाथी खोकर वे खुद महसूस करते हैं। विनी जो अपने स्वर्गीय पति रोमी को भूल नहीं पाती थी, उसको याद करके वह हमेशा रोती रहती थी, यहॉ तक कि वह जीवित नहीं रहना चाहती थी, अचानक फेंटम के प्रति उसका प्रेम उमड़ पड़ता है। इसका मात्र कारण यौन-आकर्षण नहीं अपितु मानसिक सहारा देना था। दो दुःखी व्यक्तियों को एक सामान्य-सूत्र मे बांधनेवाले भावो और

मनोदशाओ का अतिसूक्ष्म और कलापूर्ण अंकन यशपाल जी ने बडी सघनता और निपुणता के साथ इस लघु उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

झ. अप्सरा का श्राप (१९६५ ई०)

इस उपन्यास मे यशपाल ने कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के कथानक को अपने ढग से ग्रहण करते हुए दुष्यत और शकुतला की परिचित कथा अपने नवीन दृष्टिकोण से व्यक्त किया है। इस उपन्यास मे दुष्यत और शकुतला की परिचित प्रेमकथा ही नही कही, वरन् इसके माध्यम से उन्होने नारी–शोषण की समस्या को एक बार फिर से उठाया है। वस्तुतः उनके सारे उपन्यासों मे नारी की समस्याओं व उसके प्रगतिशील विचारो की प्रधानता मिलती है। 'दिव्या' और 'अमिता' की भॉति 'अप्सरा का श्राप' के कथानक का निर्माण भी महाभारत की पृष्ठभूमि लेकर तैयार किया गया है। वही युग-युग से चली आती परम्परा, जो नारी को लाछित करके उसका शोषण करती आ रही है, इस उपन्यास में भी विद्यमान है। प्राचीन काल से ही नारी को पुरुष की अर्द्धागिनी तथा सहभागिनी अवश्य कहते रहे हैं, पर क्या वह वास्तव मे पुरुष की अर्द्धागिनी रही ? सीता, दमयन्ती, पुरुष द्वारा शोषित या छली नहीं गयी ? और क्या आज भी छली नही जा रही ? यशपाल ने अपने इस उपन्यास के कथानक (जो कि शकुन्तला की पतिव्रता धर्म में निष्ठा की भावना से आप्लावित है) को नवीन विचारों की अभिव्यक्ति का एक नया प्रयास किया है।

स्वयं लेखक के शब्दों में, "पुरातन आख्यानकों को आधुनिक दृष्टि से प्रस्तुत करने का अभिप्राय है, पुरुष द्वारा युग-युग से निरंकुश स्वार्थ के प्रमाद में, धर्म और

व्यवस्था के नाम पर नारी के शोषण के प्रति ग्लानि और आधुनिक नारी के व्यक्तित्व तथा आत्मनिर्भरता की भावना के प्रति सहानुभूति व्यक्त की जा सके।"[1]

शकुन्तला-दुष्यन्त के पुरातन आख्यान को नवीन दृष्टिकोण से औपन्यासिक रूप देने के लिए यशपाल ने कथा का प्रारम्भ महर्षि विश्वामित्र के तप मे मेनका द्वारा विघ्न डालने से किया है। मेनका देवलोक से आकर विश्वामित्र को अपनी काम-शक्ति के द्वारा आन्दोलित कर देती है और विश्वामित्र को सासारिक माया-मोह के जाल मे फॉसने के लिए वह एक पुत्री को भी जन्म देती है। मेनका के जाने के पश्चात् विश्वामित्र के ज्ञान-चक्षु खुल जाते है और वह समझ जाते हैं कि उनको देवताओ द्वारा छला गया है। वह पुत्री को महर्षि कण्व और गौतमी के आश्रम के पास सुलाकर छोड जाते हैं और फिर दूबारा तप मे लीन हो जाते हैं। परन्तु उधर मेनका स्वर्ग मे भी पुत्रीमोह को नहीं छोड पाती और पुत्री की गतिविधियों, अवस्था और सुरक्षा का ध्यान रखने के लिए अप्सरा सानुमती को पृथ्वीलोक मे भेजती है। मेनका का सानुमती को भेजकर अपनी पुत्री के प्रति मातृत्व-प्रेम के जाल मे फॅसना ही है। यह सत्य भी है कि संसार की कोई भी मॉ अपने बच्चे को रोता-बिलखता नही देख सकती।

सानुमती से पुत्री के समाचार पाकर उसे सन्तोष होता है, और वह सोचती है. .. "मेरी पुत्री ने मानवी के शरीर में यौवन प्राप्त किया। वह नारी शरीर के धर्म की प्रेरणा भी अनुभव करेगी। उसी से उसका नारी-जीवन सार्थक होगा। देवताओ की कृपा से वह अपने जीवन-धर्म को चरितार्थ कर सके।"[2] मेनका के माध्यम से कहे गये यशपाल के ये शब्द ही आगे जाकर कथा का रूप परिवर्तित करते हैं। लेखक ने प्रारम्भ से ही कथा को तर्क- सम्मत और बौद्धिक रूप प्रदान किया है।

---

१. यशपाल, आमुख, अप्सरा का श्राप।

२. यशपाल – अप्सरा का श्राप। पृष्ठ सं. १६

यशपाल के इस उपन्यास मे नारी समस्या प्रधान है। कण्व ऋषि के आश्रम मे विश्वामित्र और मेनका के सहवास से उत्पन्न शकुंतला का पालन-पोषण तपोवन की रीति के अनुसार होता है। एक दिन अचानक मृगया के लिए राजा दुष्यत शिकार खेलते हुए आश्रम मे पहुँच जाते हैं और वहीं पर रूपसी शकुतला के क्षणिक मिलन पर उस पर मुग्ध हो जाते हैं। उधर शकुतला भी दुष्यंत पर मुग्ध होकर अपना सब कुछ उनको सौंप देती है। शकुंतला का विरह वर्णन और दुष्यत का शकुतला को पाने के लिए ललायित होने का बहुत ही मार्मिक चित्रण यशपाल ने किया है। शकुंतला की विरह-व्यथा का एक चित्र देखिए-

"कौंध जाती स्मृति पटल पर
आज याद रह-रह तेरी आती।
काम पीडित गात प्यारा,
छल गये सुधि न प्यारा,
क्रूर कितने हो अहेरी ?"[1]

इसके पश्चात् दुष्यन्त आश्रम में पुन प्रवेश करते हैं तथा शकुन्तला से पाणिग्रहण की कामना का आश्रमवासियो के सम्मुख निवेदन करते हैं। आश्रमवासी कण्व की अनुपस्थिति मे कोई भी निर्णय लेने को तैयार नही होते पर जब दुष्यन्त राजा के रूप में परिचय देते हैं तो गान्धर्व विधि से दोनो का विवाह हो जाता है। कालिदास की शकुन्तला के समान ही राजा दुष्यन्त को राजकीय मुद्रा पहचान के लिए देकर तथा उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र को राज्याधिकार देने का आश्वासन देकर लौट जाते हैं।

धीरे-धीरे कई दिन व्यतीत हो जाता है। राजा का कोई समाचार न मिलने के

---

१. अप्सरा का श्राप – यशपाल। पृष्ठ सं. ५७

कारण शकुन्तला चिन्तित मुद्रा मे अन्यमनस्क बैठी है। दुर्वासा मुनि आश्रम मे आकर आवाज लगाते हैं पर शकुन्तला सुन नही पाती। इससे मुनि बहुत ही क्रुद्ध हो जाते हैं। यहॉ तक का प्रसग तो यशपाल ने कालिदास की शकुन्तला के समान ही रखा है, पर आगे जाकर आधुनिक परिस्थिति-बोध, चिन्तन-विचार के आधार पर यशपाल को दुर्वासा मुनि के द्वारा शापित शकुन्तला की कल्पना करना अश्रद्धा है। अब बहुत ही स्वाभाविक ढग से कथा मे परिवर्तन आ जाता है। दुर्वासा मुनि महर्षि गौतम और कण्व को दुष्यन्त के द्वारा उपेक्षिता शकुन्तला को पतिगृह भेजने का परामर्श देते है। इधर शकुन्तला भी श्वसुरगृह जाने की इच्छा प्रकट करती है और गर्भवती होने के आभास से परिस्थितियॉ भी विकट बन जाती हैं।

यशपाल जहॉ ऐतिहासिक तथ्यो तथा स्वयं की कल्पना के आधार पर उपन्यास के कथानक को विस्तार दे रहे हैं, वहॉ वह समाज पर भी व्यग्य के छीटे कसवाना नहीं भूले। अनुसूया के माध्यम से यशपाल जैसे स्वय बोल रहे हैं. "तात और माता यह विचार नहीं करते कि दहेज के रूप मे सन्तान साथ ले जानेवाली वधू समाज में निरादर और विद्रूप की पात्र होती है।" फिर इस तरह महर्षि कण्व दुर्वासा की सलाह से शकुन्तला को पतिगृह भेजने की तैयारी में व्यस्त दिखायी पडते हैं। डॉ॰ सरोज गुप्त के शब्दो मे, "महाभारत के प्रणेता और कालिदास की कल्पना को यशपाल ने बौद्धिक रूप दे दिया। कथानक में कौतूहल और जिज्ञासा प्रारम्भ हो जाती है क्योकि पाठक लेखक के नवीन दृष्टिकोण को आगामी पृष्ठों में खोजने के लिए उत्सुक हो जाता है।"[१]

शकुन्तला की विदाई आश्रमवासियों के लिए अत्यन्त कठिन बन जाती है। वास्तविकता भी यही है कि लड़की की विदाई के समय कठोर हृदय भी पिघल

---

१. अप्सरा का श्राप – यशपाल। पृष्ठ सं.७६

जाता है। यशपाल जहॉ एक ओर नारी की पूर्ण स्वतत्रता के पक्षपाती हैं, वहॉ पति सेवा और आज्ञा-पालन को प्रमुखता देना भी नही भूले। गौतमी शकुन्तला की विदाई देते समय समझाती है "बेटी, पत्नी के लिए सब देवताओ की उपासना पतिदेव की उपासना मे समाहित है तथा पत्नी के सब धर्मो की निष्पति पतिव्रत-धर्म की पूर्ति मे है। तू पतिव्रता स्त्री की भॉति कभी अपने सुख-सन्तोष की चिन्ता न कर पति की तुष्टि और सन्तोष को ही अपना सुख समझना।"[1]

इसी तरह, यशपाल ने शकुन्तला के प्रस्थान के समय एकाकी चकवाकी पक्षी का प्रसग लाकर शकुन्तला को अपशकुन से भयभीत बताया है, तो दूसरी और अनुसूया बौद्धिक रूप से इस आशका का खण्डन करती दिखायी देती है। इस तरह उपन्यासकार पुरातन का आवरण छोडकर आधुनिकता ओढे हुए नजर आते हैं।

राजा दुष्यन्त राजधानी मे लौट कर रानी लक्षणा के गर्भवती की बात सुनकर चिन्तित हो जाते हैं। वह शीघ्र से शीघ्र शकुन्तला को राजभवन में बुला लेना चाहते हैं। परन्तु मंत्रियो का समर्थन नहीं मिलता। जब मत्रीगण लोक-निन्दा का भय बताते हैं, तब वह जानबूझकर कण्व के आश्रम में दिये हुए वचनों को भूला देते हैं। शकुन्तला के शहर में आगमन का समाचार सुनकर वह माधव्य और विदूषक की कूटनीति और परामर्श से, उन आश्रमवासियो से यज्ञशाला मे मिलने का आदेश देता है। वहॉ पहुॅचकर राजा अन्य लोगों के सामने शकुन्तला को पहचानने से इन्कार कर देता है, उधर राजा की दी हुई राजकीय मुद्रा भी नदी में गिर जाती है। अतः शकुन्तला के पास उसके शब्दों के प्रतिकार का कोई भी प्रमाण नही रहता। इस तरह शकुन्तला छली जाती है।

---

१. यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व – डा. सरोज। पृष्ठ स. ११८

मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आधार पर यशपाल यहॉ पर नितान्त नवीन मोड देते है। मुद्रा के आभाव मे प्रबधिता शकुन्तला को कालिदास के नाटक की भॉति शारगराव और अनुसूया छोडकर नही चल देते बल्कि वह उसके दु ख-सुख के साथी है। शोषित और उत्पीडित सर्वहारा वर्ग मे प्रति लेखक की सहानुभूति ने ही यहॉ कथा को एक नवीन मोड प्रदान किया है।

इधर सानुमती से मेनका को अपनी पुत्री का पति से प्रबधिता और निराश्रित होने का समाचार मिलता है। असहाय व्यथा और अपमान की पीडा से उसका आत्महत्या के प्रयास का समाचार पाकर वह और भी विचलित हो जाती है। यशपाल मेनका के द्वारा युग-युग से चले आ रहे नारी-शोषण और लाछन की ओर सकेत करते है, "अनेक समाजो मे पुरुष ने स्वार्थ के प्रमाद मे नारी को अपने निरकुश भोग की वस्तु बना लेने के लिए उसे अपनी पशु सम्पति के समान सबलहीन बना दिया है। पुरुष ने नारी को स्ववश रखने की प्रयोजन से उसकी नारीत्व और व्यक्तित्व को पातिव्रत की धारणाओ से बाधकर उसे पत्नी मात्र बना दिया है। पति पुरुष ने पति-पत्नी के सम्बन्ध मे एकनिष्ठा का धर्म केवल पत्नी पर आरोपित करके स्वय स्वामी बन पत्नी को अधीन बना लिया है। इस तरह पुरुष वर्ग की आलोचना सुनकर पाठक की सारी सहानुभूति शकुन्तला की ओर हो जाती है।

मेनका के आदेश से शकुन्तला की असहायावस्था मे किन्नरी आती है तथा उसके मातृसजात्मक समाज मे, जहॉ पुरुष अथवा पति को निरकुश स्वेच्छाचार के लिए अवसर नही है, ले जाती है। यह लेखक की सर्वथा मौलिक और नवीन कल्पना है। इससे लेखक की मार्क्सवादी भावना का पता चलता है।[१]

---

१. अप्सरा का श्राप – यशपाल, पृष्ठ १७

रानी लक्षण के गर्भ से विकृत निष्प्राण सन्तान का जन्म होता है, जिससे राजा को अपनी भूल और दोष को स्वीकार करने के लिए विवश हो जाना पडता है। इधर मछुए के पास अँगूठी मिलने पर उसके खो जाने का कारण भी स्वय को मानता है। मेनका दुष्यन्त की दयनीय अवस्था का हाल सुनकर भी द्रवित नही होती बल्कि देवलोक मे भी उसकी आलोचना करती है।

इसके पश्चात् राजा कई दिनो तक अस्वस्थ रहता है। यशपाल ने देवलोक के राजा द्वारा दुष्यन्त को अपनी सहायतार्थ बुलवाया और दुष्यन्त का प्रजापति कश्यप के आश्रम मे दर्शन के लिए प्रस्थान तथा पुत्र भरत और शकुन्तला के पुनर्मिलन के प्रसग से अपने साथ लौटने के लिए निवेदन करता है तथा अपने किये हुए पर क्षमा-याचना करता है। पहले तो शकुन्तला तैयार नही होती, पर राजा की अनुनय-विनय पर तैयार हो जाती है, पर जैसे ही मेनका को यह समाचार मिलता है तो वह विचलित हो जाती है और अपनी बेटी की सहायतार्थ मृत्युलोक में प्रकट हो जाती है। वह पुत्री से पूछती है कि कहॉ जा रही हो ? शकुन्तला कहती है "पति के साथ।" तब मेनका बहुत ही रोषपूर्ण शब्दो मे कहती है "उसका छल-प्रपच पहचान कर, उससे पशुवत् निरादर पाकर भी उसे पति कहती हो।"

इस तरह मेनका, आधुनिक युग के विचारो की अप्सरा बनकर सामने आती है। दादा कामरेड से अप्सरा का श्राप तक अपने समस्त उपन्यासो मे मानक जीवन के उन मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने मे समर्थ हुए हैं जिससे कि त्रस्त मानव जाति कुछ राहत की सॉस ले सके। नारी को यशपाल ने समाज में सबसे अधिक शोषित माना है, यही कारण है कि उनके अधिकांश उपन्यासों में नारी शोषण के खिलाफ आवाज उठायी गयी है। डॉ॰ पारसनाथ मिश्र के शब्दो में भारतीय आदर्श

का श्रेष्ठतम, शुद्ध, उज्ज्वल रूप प्राचीन आश्रम मे मिल सकता है पर वह आदर्श दर्शन और आध्यात्मिक साधना के सहारे के बावजूद अत्यंत दुर्बल है, क्योंकि भीतर से खोखला है। शरीर के स्वाभाविक आकर्षण के सामने वह पराजित है। महर्षि कण्व के आश्रम मे पली शकुन्तला दुष्यन्त के सामने दार्शनिक और आध्यात्मिक शिक्षा को भूलकर सेक्स की पीडा से सतृप्त हो उठती है। शकुतला के समर्पण मे सेक्स की ही प्रधानता दिखायी देती है।"

ञ. क्यों फँसे ? (१९६८ ई०)

क्यो फॅसे ? यशपाल का ११२ पृष्ठो का एक लघु उपन्यास है, जिसमें यशपाल ने स्त्री-पुरुष के परम्परागत पारस्परिक सम्बन्धो को अनावश्यक मानते हुए उन्हे नई दिशा में विकसित होने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। उपन्यास के केन्द्रीय आशय की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कालीदास की इस लोकप्रिय उक्ति को उपन्यास के शीर्ष वाक्य के रूप में उद्‌घृत किया है कि 'पुराणमित्येव व साधु सर्वम् :[1] अर्थात परम्परा ही सदा श्रेय नही होती। स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम सम्बन्ध, विवाह तथा एक पति या पत्नीव्रत जैसे आदर्शो तथा परम्परा से चली आ रही मान्यताओं पर प्रश्न-चिन्ह लगाते हुए यशपाल ने इस उपन्यास मे नारी मुक्ति का तत्वदर्शन प्रस्तुत किया है। काम, प्रेम और विवाह जैसे प्रश्नों पर यशपाल का चिन्तन प्रारम्भ से ही विवादास्पद रहा है। इस उपन्यास ने इस प्रकार को मतव्य की सत्यता को निभ्रतिं रूप से यशपाल ने सिद्ध कर दिया। उपन्यास के बारे में हिन्दी कुछ समीक्षकों तथा आत्मीयो की विपरीत प्रतिक्रियाओ तथा समीक्षको से प्रेरित होकर यद्यपि यशपाल ने इसके अंतिम अंशों में दो-तीन बार फेर-बदल भी की,

---

१ क्यों फँसे ? – यशपाल, भूमिका से

किन्तु प्रकाशित रूप मे जो सामने आया उससे इन आरोपो का कतई निराकरण नही हो पाता कि यशपाल का काम सम्बन्धी दृष्टिकोण मार्क्सवादी विचारदर्शन के सर्वथा प्रतिकूल हैं वह समाज और स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धो मे एक प्रकार के निहायत पाशव स्तर के अराजकतावाद की हिमायत करता है। यशपाल ने उपन्यास मे अपने दृष्टिकोण को यह कह कर उचित ठहराने का प्रयास किया है कि उनके कुछ मित्रो को जो नई शैली के अमरीकी उपन्यासो से परिचित हैं, यह उपन्यास पसन्द आया। किन्तु यशपाल का यह एक तरफा विचार है क्योंकि भारतीय समाज की परिस्थितियो की उपेक्षा करते हुए उसमे वह सब कुछ थोपने का प्रयास किया है जो स्वच्छद यौनाचार के नाम पर नए अमरीकी समाज में धडल्ले से प्रचलित हैं कुछ भी हो, इस उपन्यास में वह आवश्यकता से अधिक आधुनिकत और प्रगतिशील हो उठे है।

प्रस्तुत उपन्यास का नायक भास्कर खाते-पीते घर का, अच्छी तरह जीवन निर्वाह योग्य नौकरी मे लगा हुआ हैं वह एक समाचार के सपादक विभाग मे कार्यरत है और इसी सिलसिले में एक चित्र प्रदर्शनी के दौरान उसका परिचय मोती से होता है जो एक मध्यमवर्गीय परिवार की विवाहिता स्त्री है। मोती एक पुत्र भी है। विवाह को अनपेक्षित बन्धन मानने वाला तथा उम्र के प्रभाववश कामेच्छाओं के दबाव को महसूस करने वाला नवयुवक पहली नजर में मोती के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। समाचार पत्र मे उसके वरिष्ठ सहयोगी पुन्नैया तथा शुक्ला ये दो व्यक्ति ऐसे है, जिनसे भास्कर हर प्रकार की बात कर लेता है। शुक्ला को तो लेखक ने शीघ्र ही पृष्ठभूमि में कर दिया है, किन्तु पुन्नैया को उन्होंने इस लघु उपन्यास में विशेष रूप से उभारा है। एक प्रकार से अपने प्रवक्ता के रूप में उसके

माध्यम से ही यौनाचार तथा स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के बारे मे अपने नये तत्वदर्शन को प्रस्तुत किया हैं। भास्कर औरतों को आकर्षित करने मे दक्ष है। मोती से पहले भास्कर को अपनी गवार किन्तु जवान मामी के सन्दर्भ मे काम प्रसगो का अनुभव हो चुका हैं मोती को देख कर उसकी इच्छा पुन भडक उठती है। पारिवारिक जीवन मे बीजरूप से पडे मोती के मन की अतिरजित प्रशसा तथा उसकी कला की तारीफ भास्कर इस तरह करता है कि वह पूरी तरह भास्कर की तरफ खिच जाती है। वह पारिवारिको बदिशो को तोड कर भास्कर को अपना शरीर सौपने मे भी किसी प्रकार का सकोच नही करती। लेखक ने मोती के इस समर्पण को इस आधार पर उचित ठहराने का प्रयास किया है कि "नियत राशन से पेट भर सकता है, मन नही,"[१] अर्थात् स्त्री-पुरुषों की यह इच्छा स्वाभाविक है कि वह एक से ही बंधे रहने मे एकरसता या मानसिक क्राति का अनुभव करें।

भास्कर के समक्ष ऐसे कई अक्सर आते है जबकि मोती उसके समक्ष शारीरिक समर्पण को पूरी तरह तैयार है, किन्तु सस्कारगत लज्जा उसे अपनी ओर से पहले करने से रोकती है। स्वयं ही भास्कर के समक्ष पसर जाने के बजाय वह भास्कर के पुरुष द्वारा पहल होते देखना चाहती है। भास्कर इसका अर्थ ये लगाता है कि मोती अंतिम समर्पण को उसके सामने नही आने देती। भास्कर के मन मे ये बात घर कर जाती है। और वह मोती से दूरी बना लेता हैं। मोती उसके इस पलायन का अर्थ नही समझ पाती पुन्नैया भास्कर को सोसायटी गर्ल्स के पास ले जाता है, किन्तु पैसा लेकर शरीर का धन्धा करने वाले उन लडकियो के से भास्कर की संगति नहीं बैठ पाती। मोती और उसके बीच गलत फहमी पैदा हो जाती है, और काफी अरसे के लिए दोनो का सम्बन्ध टूट जाता हैं परिस्थितियॉ उन्हें मसूरी में पुनः

---

१ क्यों फँसे ? – यशपाल। पृ. सं. ५८–५९

मिलाती है और दोनो पुन· कक्ष के एकान्त मे मिलते है। पुन· वही सब घटित होता है, और एक झटके से मोती से अलग होकर भास्कर बाहर निकल जाता है। इस प्रतिक्रिया से भास्कर कई बार पहले भी मोती से त्रस्त था और फिर से वही सब होने से वह खिसया कर एक सोसायटी गर्ल हेना को अपने कमरे मे लाता है और उससे तुष्टि प्राप्त करता है।

मोती भास्कर के व्यवहार से क्षुभित तो थी ही किन्तु भास्कर को भूल न पाती थी। एक सुबह वह खुद भास्कर से मिलने और अपनी व्यथा कहने होटल के उस कमरे मे जाती है · जहॉ रात भास्कर के साथ हेना थी। दरवाजा खोलते ही भासकर के साथ हेना को देखती है। हेना उसे देखते ही कमरे से निकले कर गायब हो जाती है। वह रात को अपने शरीर का पैसा भी नही लेती। भास्कर को इसका बडा दु·ख होता है कि जिससे उसने कामतुष्टि पायी उसे कुछ दे भी न सका। "मोती आवेश में भास्कर से कहती है- यह क्या है ? .. हमसे प्यार की बाते, हमारी इन्सल्ट, दूसरियों से रगरेलिया।"[१] भास्कर उसे शान्त करता है- "तुमने मजबूर किया। यह मेरी पसन्द नही। तुम पुचकार कर दुत्कार दो तो दूसरा क्या करे ? कही तो चैन पाए।"[२]

"तुम्हें ऐसी खुद पसर जाने वाले बेहया पसन्द है। मोती ने उचककर उसके ओठों पर दॉत गडा दिये। ... तुम मेरे हो। ... मार डालो मुझे।... किसी रंडी को नहीं छूने दूंगी।"[३] मोती के द्वारा हेना को रडी कहना भास्कर को नही आता। वह मोती से दूसरे दिन मिलने का समय नियत करता है। मोती वचन लेकर आश्वस्त होकर चली जाती है। भास्कर के बमन मे मंथन होता है। हेना को वह रात की फीस नहीं दे सका था। उसे वह कहॉ ढूंढे ? हेना के प्रति उसके मन मे सहानुभूति थी और मोती के प्रति विक्षोभ।

---

१. क्यों फँसे ? – यशपाल। पृ. स. ८६–८७
२. क्यों फँसे ? – यशपाल। पृ. स. ८८
३. क्यों फँसे ? – यशपाल। पृ. स. ८९

इसके पहले कि दूसरे दिन नियत समय पर मोती समर्पण के लिए उसके कमरे मे आए, घृणा से अभिभूत वह अपना कमरा छोडकर, वापस दिल्ली लौट आता है। मोती के द्वारा हेना के लिए रडी शब्द बार-बार उसके दिमाग मे चोट करता है।

उपन्यास यदि भास्कर, पुन्नैया, मोती और हेना की ही कथा होता, तो कोई खास बात नही थी, उसे परम्परागत सम्बन्धो से ऊबे हुए मुक्त यौनाचार का समर्थन तथा आचरण करने वालो की कथा मान कर सतोष कर लिया जाता। किन्तु सशपाल ने तो इस उपन्यास मे यह प्रतिपादित किया है कि परम्परागत दमघोटू सम्बन्धो मे स्त्री-पुरुष की वास्तविक मुक्ति उनके दिशानिर्देश मे ही सम्भव है, और यही उपन्यास का मुख्य उद्धेश्य है।

मेरी तेरी उसकी बात

स्वतन्त्रता पूर्व स्थिति मे राजनैतिक, सामाजिक पारिवारिक और वैयक्तिक द्वद्व तथा क्रान्ति का सम्यक् व व्यापक रुप यशपाल रचित बृहत उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' मे उपलब्ध है। प्रस्तुत उपन्यास मे भी नारी द्वारा सामाजिक जर्जर रुढियो का खण्डन धर्म और जाति की सकीर्णताओ को पार करना, परिवार, पति के बन्धनो से मुक्त होकर राजनैतिक क्रान्ति मे कार्य करना दिखाया गया है। यशपाल की उपन्यास श्रृखला की यह अन्तिम कडी है। उपन्यास मे, "दो पीढियो से क्रान्ति की वेदना को अदम्य बनाते वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और साम्प्रदायिक विषमताओ का स्पष्टीकरण भी है। क्रान्ति केवल सडॉध से उत्पन्न व्याधियो और सभी प्रकार की असह्वा बातो का विरोध भी है। पात्रो की मानवीय समस्याओ, जीवन की नैसर्गिक उमगो, आवश्यकताओ और सस्कारो के द्वन्द्वो का भी है।[1] यशपाल

१.मेरी तेरी उसकी बात, यशपाल, पृ. आवरण ..

अपने उपन्यास साहित्य में राजनीति और सामाजिक स्थिति दोनो को साथ लेकर चले है।

'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास में कथा का विस्तार राजनैतिक विस्फोट से ब्रिटिश शासन से मुक्ति तक ही नहीं बल्कि देश को अवश रखने के लिए विदेशी नीति द्वारा बोये विष–बीजो के अवशिष्ट प्रभावो पर्यन्त भी है, जिनके बिना नर–नारी की युक्ति असम्भव है।

इस उपन्यास मे यशपाल ने चालीस वर्षो का व्योरा देते हुए तीन पीढियो को चित्रित किया है। नर–नारियो की क्रान्ति ही नही बल्कि पात्रो की मानवीय सम्वेदनाओ, जीवन की नैसर्गिक उमंगों आवश्यकताओ और संस्कारो के द्वन्द्वो की भी चर्चा की है।

'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास में कथा का आरम्भ पिछली पीढी से होता है। उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध सयुक्त परिवार का काल है। पहली पीढ़ी की कथाएं सेठ रतनलाल, धर्मानन्द पण्डित तथा वकील कोहली की है जिसमें सामाजिक, साम्प्रदायिक संकीर्णता, जातीय दुरभिमान, परम्परागत रूख आदि दिखाकर उनके परिवर्तन की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। दूसरी पीढी की कथाएँ अमर, उषा, पाठक, रजा, नरेन्द्र की है जिसमें आधुनिक वातावरण की झलक है। पात्रों की राजनीतिक रुचि एवं क्रियाशीलता ने कथा को राजनैतिक बना दिया है, नयी पीढ़ी में परम्पराओं पर प्रहार करने और नयी आस्थाओं का निर्माण करने की ललक स्वाभाविक है। तीसरी पीढी का उल्लेख सकेत मात्र है जो भविष्य की द्योतक है।

'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास मे पात्रो के माध्यम से समाजवर्ग, रिश्वतखोरी, शोषण–नीति, बेरोजगारी, महगाई जैसी सम[illegible] [illegible] [illegible] किया है। "नारी को आत्मनिर्भर बनाने पर भी बल दिया गया है। नारी मे प्रेम और सन्तति पालन की वृत्तियॉ अधिक प्रबल होती है जबकि पुरुष मे अह वृति तीव्र होती है।"[१] यशपाल तो नारी के समाज सेविका या क्रान्तिकारी रुप मे भी उसे ममत्व की व्यापकता के दर्शन करते है। उषा के द्वारा उन्होने कहलाया है "बिल्कुल फीमेल कान्शेस फीमेल। सचेत प्रबुद्ध नारी अपने समाज के लिए अधिक चिन्ता करेगी, पैदा औरत करती है, रक्षा की चिन्ता भी उसी को रहेगी।"[२] इस प्रकार आधुनिक नारी के अह को यशपाल ने ममत्व से भिन्न नही देखते। उनका विश्वास है कि प्रबुद्ध नारी मे आत्मसम्मान की भावना अवश्य आयी किन्तु वह उनके ममत्व को पराजित नही कर सकी। उषा के चरित्र मे वात्सल्य और काम वृत्ति की ही प्रमुखता है। स्वयम उषा के शब्दो मे "डियर, मुझे क्षमा कर दो, सब तरह से तुम्हारी हूँ और रहूँगी, परन्तु बेटे के मन से कुण्ठा के सस्कार मिटाये बिना तुम्हारी पत्नी होने का सतोष और वर्ग न पा सकुगी। मुझे उसके लिए जितना सहना पडे, जितना समय लग जाये। स्वार्थ मे बेटे को छीनता अनुभव करने देना मुझे असह्य है।"[३]

डॉ विवेकी राय के शब्दो मे "यशपाल की साम्यवादी दृष्टि राजनीतिक सघर्ष और मूल्यानुसक्रमण युग मे एक सनातन मानवीय मूल्य और नारी को पूर्ण प्रतिष्ठा मे लगी हुई है। समाज, धर्म, जाति परम्परा, पति, नैतिकता और व्यवस्था से सघर्ष करती जूझती और सबको तोडती नारी वात्सल्य के सामने मुड गयी, बलि हो गयी।"[४] एक व्यक्ति के रूप मे उषा अपने परिवेश, समाज, धर्म, जाति विवाह सस्था से सघर्ष करती हुई, अपने स्वतत्र अस्तित्व के लिये उषा जितनी तेजी से

---

१ यशपाल के उपन्यासो मे मनोवैज्ञानिक रचना शिल्प – डॉ. मधु जैन, पृ. २६५

२. मेरी तेरी उसकी बात – यशपाल पृ. ७१८

३. मेरी तेरी उसकी बात – यशपाल, पृष्ठ ७६०

४. यशपाल, व्यक्तित्व और कृतित्व – रामव्यास पाण्डे, पृ. २२

अपने घर–परिवार, माता–पिता, धर्म–जाति, समाज का विरोध करके पति का चुनाव करती है परन्तु जब उसके स्वतत्र व्यक्तित्व पर पति द्वारा आक्षेप और बधन लगाए जाते हैं तो उतनी ही तेजी से वह पति विवाह संस्था को तोडने के लिए उद्यत हो जाती है। उषा का नरेन्द्र से मेल–जोल, उनके दाम्पत्य जीवन में दरार ला देता है।

पति–पत्नी के बीच नरेन्द्र की उपस्थिति मे अमर बौखला उठता है, सौजन्य, मानवता, सहयोग भावना उड जाती है, अमर कहता है, "तुम माया की तरह पति और मित्र दोनो चाहती हो।" अमर के आग्रह पर उषा के सामने जब फिर एक बार चुनाव का प्रश्न आता है, तो वह दृढ निश्चय से कहती है "इट इज नाट यू"। मानसिक तनाव मे उषा घर छोड जाती है और मनोद्वन्द्व मे छटपटाता अमर दुर्घटनाग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उषा स्वतत्र विचार की होने के कारण कभी परिस्थितियों से समझौता नहीं किया। सदैव उषा स्वतंत्र व्यक्तित्व के लिए समाज से द्वन्द्वरत रही है। पति–विवाह और परिवार सख्या की परम्परागत मान्यताओं को विच्छिन्न कर वह अपना व्यक्तित्व राष्ट्र के प्रति अर्पित करती है।

मेरी तेरी उनकी बात उपन्यास मे सन् १९४२ ई. (भारत छोडो आन्दोलन) मे देश मे उथल–फूथल का जब माहौल चल रहा था। क्रान्तिकारी देश की आजादी (स्वतंत्रा) के लिये, इन्कलाब जिन्दाबाद का गूॅज सर्वत्र लगाएॅ हुए थे उषा का वचन देशप्रेम, की भावना के लिए विद्यमान दिखलायी पडता है। "हमारे बेताज बादशाह और नेता देश से अंग्रेजो को निकालने के युद्ध मे मोर्चे पर बढ युके हैं। करो या मरो की प्रतिज्ञा से हमारे नेता इस युद्ध में कफन बांधकर मोर्चे पर बढ़ हैं। हमे भी उनके अनुकरण में कदम पीछे न हटाने की प्रतिज्ञा से सिर पर कफन बांधकर आगे

बढना है।" खुली बगावत के लिए महात्मा गाधी के छ आदेशो की सरल व्यावहारिक भाषा मे व्याख्य," . हमे गुलाब रहकर जिन्दा रहना मजूर नही है। इन्कलाब जिन्दाबाद। लडखडाती सरकार को एक धक्का और दो।" और अधिक ऊँचे नारे।[१]" उषा ने भारत छोडो सग्राम मे योगदान के लिये आह्वान किया।

यही उषा का आत्मत्याग लक्षित होता है। वह पाठक को बता देत है – "निरर्थक मान्यताओ और सस्कारो को स्वीकार नही कर रही हूँ, परन्तु समाज को एक झटके से नही बदल सकती। क्रान्ति लोगो को तोडना नही, मोडना है। परन्तु बेटे के मन मे कुण्ठा के सस्कार मिटाए बिना तुम्हारी पत्नी होने का सन्तोष और गर्व न पा सकूँगी। स्वार्थ मे बेटे को हीनता अनुाव करने देना मुझे असह्य है। मैं बेटे की भावना को अपने सतोष के लिए बलि न होने दूँगी, बलि होगी तो मेरी"[२] उषा अपने मनोद्वण्द्व को जीत लेती है। उषा, जाति, धर्म, परिवार, विवाह, पति, समाज, सरकार के प्रति विद्रोहिणी नारी है।

डॉ विवेकीराय के शब्दो मे "उषा क्रान्तिकारिणी हैं, समाज के लिए विद्रोही, सहयोगियो के लिए प्रेरक शक्ति, पति के लिए पहेली और पुत्र के लिये शुद्ध माता है।"[३]

मेरी तेरी उसकी बात उपन्यास मे यशपाल ने क्रान्ति का रुप तोड–फोड, ध्वंस वृत्ति में नही स्वीकारा है बल्कि उषा पात्र क्रान्ति द्वारा समाज को सही स्थिति तक पहुँचाने मे विश्वास करते हैं। पाठक है "व्यापक मान्यताओ से वैयक्तिक विरोध सफल नही होगा, केवल व्यक्ति को तोड़ देगा, समाज को भी उसकी गलत मान्यताओं के कारण तोड़ना नही, उसे मोडना ही होगा। क्रान्ति की सफलता तोड

---

१. मेरी तेरी उसकी बात – यशपाल, पृ. ४५३–४५६
२. मेरी तेरी उसकी बात – यशपाल, पृ. ४१०
३. यशपाल व्यक्ति और कृतित्व – सरोज गुप्ता, पृ. २७

देने के यत्न मे नही, मोड सकने मे है।"[1] समाज क्रान्ति के लिए नही है, बल्कि क्रान्ति समाज के लिए है। व्यक्ति क्रान्ति द्वारा समाज की दारुण व्यवस्था को समाप्त कर स्वरूप समाजवादी व्यवस्था का निर्माण कर सकता है। सम्पूर्ण उपन्यास मे उषा का चरित्र सामाजिक विकृतियो और रूढिवादिता से उबरता हुआ दिखलाई पडा है।

इस उपन्यास में सन् १६१६ से सन् १६४६ तक की राजनैतिक गतिविधियो का सम्यक चित्रण उपन्यास मे उपलब्ध है। धनजय वर्मा के शब्दो मे "यह उपन्यास समकालीन इतिहास के मानव–अनुभव का एक ऐसा दस्तावेज है, जिसमे सिर्फ व्यक्ति की अनुभूतियो और संवेदनाओ की लीला नहीं है, बल्कि उन सब, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ताकतो का भी खेल शामिल है, जो इस मानवीय अनुभव को रूपायिक और निर्देशित कर रहा है।"[2] उषा का द्वन्द्व संघर्ष एक नारी का द्वन्द्व नहीं रह जाता। बल्कि पूरे समाज के द्वन्द्व का प्रतीक हो जाता है। स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व के लडती उषा का बाह्य व मनोद्वन्द्व, पीडा, कसक, संकल्प, दृढ निश्चय, धर्म–जाति, सामाजिक व्यवस्था की जकडन और संघर्ष का प्रत्येक आयाम उपन्यास मे सूक्ष्मता से पूरी तरह उभरा है। वस्तुतः उपन्यास मे यशपाल की दृष्टि में क्रान्ति का अर्थ केवल शासको के वर्ण पोशाक का बदल जाना ही नही परन्तु जीवन मे जीर्ण रूढियों की सडांध से उत्पन्न व्याधियों और सभी प्रकार की असह्य बातों का विरोध भी स्पष्टता झलकता है। पूरा उपन्यास आदि से अन्त तक रोचक है। आगामी पचासों वर्षो तक यह उपन्यास भारतीय कथाकारो के लिए मार्ग दर्शक रहेगा। यशपाल की बुद्धि और मूलहानि के समन्वय में ही मनुष्य का कल्याण देखते हैं। उषा के शब्दों मे "बुद्धि विवेक इस्टिंक में सहायक होने चाहिए।"[3]

---

३. मेरी तेरी उसकी बात – यशपाल पृ. ५७७

२. क्रान्तिकारी यशपाल एक समर्पित व्यक्तित्व – मधुरेश, पृ. १४२

३. मेरी तेरी उसकी बात, पृ. ७१८

दूसरा अध्याय

उपन्यासकार यशपाल के उपन्यासों में मार्क्सवादी नारी चेतना :

मार्क्सवादी चिन्तन :

उन्नीसवी शताब्दी के क्रान्तिकारी विचारक काल-मार्क्स का जन्म "जर्मनी मे एक छोटा सा नगर कत्रियेर मे ५ मई, सन् १८१८ ई॰ मे हुआ था।"[1] इनका पूरा नाम कार्ल हेनिरिच मार्क्स (Karl Henerich Marx) था, जो यहूदी परिवार से सम्बन्धित थे। इनका 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' फरवरी, १८४८ ई॰ मे प्रकाशित हुआ मार्क्स की इस घोषणा-पत्र का प्रभाव ससार के मजदूर आन्दोलनों पर पडा और मजदूरों के आन्दोलन ने अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया। इस घोषणा के बाद मजदूरो में एक नयी भावना, जिसे मार्क्स श्रेणी चेतना का नाम देते हैं, पैदा हो गयी। श्रेणी चेतना को हम मार्क्सवाद के क्रियात्मक रूप का बीज कह सकते हैं।

कार्ल-मार्क्स ने जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया, कालान्तर मे वही सिद्धान्त मार्क्सवाद की संज्ञा से अभिहित हुए। मार्क्स ने व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओ रोटी-कपडा और मकान पर विचार करना अत्यावश्यक और उचित समझा। उन्होने सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर इतनी गहराई से विचार किया कि अन्तत उसे 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' का प्रवर्तक बनने का गौरव प्राप्त हुआ।

---

१. लेनिन : कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा, पृ. सं. ६१ प्रगति प्रकाशन मास्को, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

भौतिकवाद

कार्ल-मार्क्स ने एक ओर विज्ञान (कार्य-कारण) को अपने सिद्धान्तों का मूलाधार बनाया और दूसरी ओर 'फेवर बारव' की भौतिकवादी धारणा को मान्यता प्रदान की। मार्क्स की दृष्टि मे भाववादियो (हीगेलियन) का परम तत्त्व सत्य से बहुत दूर है। मार्क्स ने भाववादी दर्शन का विरोध करते हुए वस्तु आदि दर्शन की स्थापना की।

'कैपिटल' (दास कैपितोल) के प्रथम खण्ड की प्रस्तावना मे मार्क्स ने हीगेल के भाव को भौतिक सृष्टि के अतिरिक्त और कुछ नही माना। "वह भौतिक सृष्टि जो मनुष्य को मन के द्वारा प्रतिबिम्बित होकर विचार रूपो मे परिवर्तित हो जाती है।"[१]

तात्पर्य यह है कि भौतिक सृष्टि की छाया ही हमारे मानस दर्पण में विचारों के रूप मे अवतरित होती है। मार्क्स का भौतिकवादी दृष्टिकोण यान्त्रिक भौतिकवादियो के दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न था। मार्क्स हीगेल का अनुकरण करता हुआ समस्त जगत् मे द्वन्द्वात्मक स्थिति को स्वीकार करता है। मार्क्स के दर्शन पूर्ण क्रमबद्वता है एवं वर्ग संघर्ष की भावना निहित है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectic Materialism)

मार्क्स हीगेल के द्वन्द्ववाद और फेवर बारव के भौतिकवाद से प्रेरित होने के कारण द्वन्द्वात्मक भौतिक भी कहा जाता है। द्वन्द्वात्मकता ही उनके सिद्वान्तों को वैधानिक आधार माना। मार्क्स ने पदार्थ जगत् से लेकर मानव जगत् तक परिव्याप्त देखा। इसी के आधार पर उसने अपने चरम लक्ष्य वर्गहीन समाज की कल्पना प्रस्तुत की।

---

१. लेनिन – कार्ल मार्क्स, पृ. सं. २३।

मार्क्स ने इस भौतिकवादी दर्शन मार्क्स के अनुसार "बाह्यजगत्। और मानव चिन्तन दोनो की गति के आम नियमो का विज्ञान है।"[1]

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद वह दार्शनिक प्रणाली है जो हमे आन्तरिक नियमो का ज्ञान कराती है, जिनके अनुसार इस भौतिक जगत् का विकास होता है, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दृश्य जगत् की गति के नियमों की व्याख्या करता है।"[2] मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर हीगल का प्रभाव स्पष्ट है। मार्क्स ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दो शब्दों से बना है पहला द्वन्द्वात्मक और दूसरा भौतिकवाद द्वन्द्वात्मक शब्द का अभिप्राय विचार विनिमय अथवा वाद-विवाद। मार्क्स के अनुसार चरम सत्ता पदार्थ (भौतिक तत्त्व) है जबकि एगेल्स भी "ससार की वास्तविक एकता भौतिकता में मानता है उसके अस्तित्व में नहीं।" सत्ता का अनिवार्य अग गति को भी मानता है। मार्क्सवाद प्रत्येक वस्तु को निरन्तर गतिशील परिवर्तनशील एव विकासशील मानता है।" गतिहीन पदार्थ की कल्पना उसी प्रकार नही की जा सकती जैसे पदार्थ रहित गति की"[3] चूँकि पदार्थ निरन्तर गतिशील है, अतएव प्रतिक्षण इसमें परिवर्तन अवश्यंभावी है।

मार्क्सवाद जीवन और जगत् मे द्वन्द्वात्मक स्थिति को स्वीकार करता है। साहित्य द्वन्द्वात्मकता का प्रस्तेला है। साहित्यकार सामाजिक गतिविधियो का, निरन्तर परिवर्तनशील समाज व्यवस्था का चित्रण प्रस्तुत करता है। साहित्य में गतिशीलता और परिवर्तनशीलता का स्वरूप ही साहित्यकार को दिशा प्रदान करता है, जिसके फलस्वरूप तत्कालीन सामाजिक जीवन पर अमिट प्रभाव देखा जाता है।

---

१. लेनिन – कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा – प्रगति प्रकाशन मास्को, पृ. स. १५ पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड – नई दिल्ली–११००५५

२. आचार्य नरेन्द्र देव – राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ. ८७

३. एंगेल्स – ऐंटीड्यूरिंग पृ. ८७

वर्ग-संघर्ष :

मार्क्सवाद वर्ग को दो भागो मे श्रमिक और पूॅजीपति के अस्तित्व को स्वीकार करता है। आज उसका लक्ष्य श्रमिक क्रान्ति के द्वारा पूॅजीवाद का विनाश और वर्गहीन समाज की रचना है। वर्ग सघर्ष के प्रतिपादन का श्रेय कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक ऐगिल्स को है और इनमे से भी प्रमुख रूप से कार्ल मार्क्स को। इन दोनो लेखको ने १८५६ ई० मे दास कैपिटल के अन्तर्गत कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो मे उस सिद्धान्त का उल्लेख किया था।

मैकाइवर के अनुसार "किसी वर्ग का अर्थ, ऐसी श्रेणी अथवा प्रकार से है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति या व्यक्ति समूह आते हैं। लेनिन के अनुसार वर्ग वह चीज है जो समाज के एक भाग श्रम को हडप लेने का अधिकार बनाती है, यदि समाज का एक भाग सारी भूमि हडप लेता है तो समाज में दो वर्ग जमींदार और किसान बन जाते हैं। यदि समाज का एक तमाम मिलो कारखानों, शेयरो और पूॅजी पर अधिकार कर लेता है और दूसरा भाग इन कारखानों मे मज़दूरी करता है तो समाज में दो वर्ग पूॅजीपति और सर्वहारा वर्ग बन जाते हैं।

मार्क्स ने कम्यूनिस्ट घोषणा पत्र मे लिखा। "अभी तक आविर्भूत समस्त समाजो का इतिहास वर्ग संघर्षो का इतिहास रहा है।"[१] वर्ग सघर्ष घटनाओं की चालक शक्ति है। मानव जाति के विकास का इतिहास वर्गो तथा वर्ग-सघर्ष के अस्तित्व के साथ जुडा है। अमीरो और गरीबो, शोषकों और शोषितों की विद्यमानता निरन्तर संघर्ष यह एक एतिहासिक तथ्य है जो दीर्घकाल तक नाना शताब्दियों के दौरान सामाजिक प्रगति की अभिन्न अभिलाक्षणिकता बना रहा।

---

१. लेनिन – कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा, पृ. १७

आधुनिक भारतीय विचारकों ने भी वर्ग-सघर्ष पर अपना अभिमत प्रस्तुत किया है। डॉ॰ सम्पूर्णानन्द जी के अनुसार प्रतिस्पर्धा के कारण ही व्यक्तियो और मनुष्यो के समूहों के जीवन बनते बिगडते रहते हैं। इस प्रतिस्पर्धा का नाम ही वर्ग-संघर्ष या वर्गयुद्ध है। मार्क्स ने वर्ग-सघर्ष का मूलाधार आर्थिक माना है किन्तु ससार मे धर्म, जाति और राष्ट्रीय आधार पर भी भीषण सघर्ष हुए है जिनका कोई आर्थिक आधार नही रहा।

पूँजीवाद ने आज दुनिया मे मनुष्य के साथ मनुष्य के नग्न स्वार्थ को खुलकर खेलने का अवसर और उन्मुक्त धरातल प्रदान किया है। सर्वहारा वर्ग शोषण से मुक्त यथार्थ मानवी सम्बन्धो की स्थापना मे सक्रियता निभाता है सर्वहारा जीवन के यथार्थ स्वरूप को अंकित करने के लिए साहित्यकार को शोषित वर्ग के जीवन के साथ आत्मीयता स्थापित करे।

मार्क्सवाद 'साहित्य को निरुद्देश्य नही मानता जैसा कि ससार के मजदूर-आन्दोलन के प्रसिद्ध नेता 'जार्ज दिमित्रोव' ने सोवियत लेखकों की एक सभा मे कहा था "कविता उपन्यास आदि कलाकृतियो के रूप में तुम हमें एक तेज हथियार दो जो संघर्ष मे काम आ सके। अपनी कला से क्रान्तिकारी कर्त्ता बनाने में मदद करो।"[१] समाज के ऐतिहासिक, विकास ने आज साहित्य को वर्ग-सघर्ष का शक्तिशाली हथियार बना दिया है।

समाज में होने वाले परिवर्तन आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक कारणो से प्रभावित होते है। उत्पादन और वितरण की व्यवस्था में आने वाला वैषम्य ही आर्थिक कारणों को जन्म देता है। जैसे-२ उत्पादन शक्तियों का विकास होता रहता है। उत्पादन प्रणाली में स्वतः परिवर्तन देखने को मिला। मार्क्स ने पावर्टी ऑफ

१. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ॰ पारस नाथ मिश्र, पृ. ६५–६६

फिलासफी में लिखा है - "हाथ की चक्की उस समाज का निर्माण करती है जिसमें प्रभुत्व सामन्त का होता है। भाप से चलने वाली चक्की वह समाज बनाती है, जिसमें प्रभुत्व औद्योगिक पूँजीपति का होता है।"

सर्वहारा वर्ग पूँजीवाद से जन्म लेकर उसी की कब्र खोदता है और उसके विनाश के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है। "सर्वहारा क्रान्ति मजदूर वर्ग के बल पर सम्भव है। सर्वहारा क्रान्ति की सबसे बडी विशेषता होगी। समाज की वर्गीय भावना से मुक्त करके उसके भीतर साम्यवाद का प्रसार।"[१] सामन्तयुग मे शोषक सामन्त था और पूँजीवादी युग में शोषक पूँजीपति है। सक्रमण काल मे सर्वहारा का एक मात्र उद्देश्य क्रान्ति के शत्रुओ को सर्वदा के लिए समाप्त कर देना होगा, जिससे उसकी सत्ता को चुनौती देने वाला कोई न रह सके। मार्क्स के अनुसार श्रमिक बुर्जुआ वर्ग के विरोध को समाप्त करने के लिए राज्य को अस्थायी रूप से क्रान्तिकारी संस्था के रूप में स्थापित करते हैं। जिसके फलस्वरूप सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना की जा सके। सर्वहारा अधिनायकत्व में उत्पादन के समस्त साधनों पर राज्य का अधिकार होगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार काम करना होगा और प्रत्येक श्रमिक को उसके कार्यानुसार वेतन प्राप्त होगा। वितरण की इस व्यवस्था में मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई भेदभाव नही रखता है। यही समाजवाद का आधारशिला है। अतः हम कह सकते हैं कि उत्पादन का आधार लाभ कमाने की प्रवृत्ति न होकर सामाजिक उपयोगिता होगी।

मार्क्सवाद वर्गविहीन समाज की स्थापना पर विशेष बल देता है। जब सघर्ष और वर्गीय भावना का अन्त होगा तथा समाज में सबको समान अधिकार प्राप्त होंगे

---

२. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ. पारसनाथ मिश्र, पृ. ४१

और श्रम समाज की सम्पत्ति होगी। उत्पादन व्यवस्था इतनी विकसित होगी कि गॉवो और नगरो की दूरी अपने आप मिट जायेगी।

साम्यवाद (कम्यूनिज्म) - समाज मे वर्गविहीन समाज की स्थापना के फलस्वरूप साम्यवाद दृष्टिगोचर होगा जिसका आर्थिक सूत्र होगा "योग्यता के अनुसार कार्य और आवश्यकता के अनुसार वेतन।"[१]

मार्क्सवाद को हिन्दी मे हम साम्यवाद भी कहते हैं। कम्यूनिज्म शब्द लैटिन के 'कम्यूनिज' शब्द से व्युत्पन्न हुआ है। कम्यूनिज्म का अर्थ 'परस्पर सेवा करने के लिए तत्पर रहना।"[२] यही कारण है कि फ्रास के तत्कालीन उन्नत नगर स्वशासन और और राजनीतिक अधिकारो को प्राप्त करके अपने को कम्यून कहते थे। कम्यूनिज्म की परस्पर सेवा वाली ध्वनि ही कम्यूनिज्म के मूल मे काम करती रही। साम्यवादी व्यवस्था वर्गहीन समाज की राज्य के स्थान पर सार्वजनिक रूप से कार्य करेगी और राज्य मे एक वर्गीय सगठन न होकर जन सस्था का रूप धारण कर लेगा। वस्तुत· राज्य का लोप तभी सम्भव है जब विश्व के सभी देश समाजवादी खेमें मे नहीं आ जाते।

मार्क्सवाद हर व्यक्ति को उसकी योग्यतानुसार आगे बढने का समान अवसर देने का पक्षपाती है। मार्क्स ने शिक्षा जगत् मे शिक्षा को अधिकारी वर्ग या रूलिंग क्लास से मुक्त करने का प्रयासरत है। बच्चें, युवा और वृद्धो तथा महिलाओ के अधिकार की बात कही है। संक्षिप्त में मार्क्सवादियो द्वारा वर्गविहिनी समाज मे हर व्यक्ति को आगे बढने का समान अवसर प्राप्त होगा। अपनी योग्यतानुसार कार्य करना हर व्यक्ति का निजी उत्तरदायित्व होगा।

---

1. "From each according to his ability to each according to his needs".

2. ... Common origin doubtful, perhaps can together and munis-ready to be of service, obliging. " English Dictionary by Annondole

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि मार्क्सवादी दृष्टिकोण से साम्यवाद के अन्तर्गत वर्गविहीन समाज की स्थापना ही नवीन समाजवाद का सूचक है जिसमे न कोई धनी होगा न गरीब, न कोई अत्यधिक सुख के कारण भोग-विलास मे मग्न होगा और न ही कोई दरिद्र की आग मे झुलसता, तडपता और रोता हुआ मिलेगा।

मार्क्सवाद मूलत एक साहित्यिक आन्दोलन नही था, लेकिन सभी देशो के साहित्य पर उसका दूरगामी प्रभाव पडा है। साहित्य की भाव धारा और शिल्प विधान को भी उसने परिवर्तित कर दिया। मानव समाज के विकास को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न मार्क्स ने किया था।

"मार्क्सवाद ही पहला प्रयत्न था जिसने मनुष्य समाज के विकास को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने का यत्न किया। मार्क्स ने भावुक सुधारको के समाजवादी हवाई हमलो को धुन्ध मे मिटाकर वैज्ञानिक समाजवाद की बुनियाद डाली।"[1] दार्शनिको ने केवल जगत् की व्याख्या की है पर मुख्य बात है उसको बदलने की, यही मार्क्सवाद का दृष्टिकोण था। मार्क्सवाद समाज मे समता लाने की एक विधि अथवा वैज्ञानिक विचारधारा है।

मार्क्स का सिद्धान्त सामान्यता द्वन्द्वात्मकता भौतिकवाद नाम से जाना जाता है। द्वन्द्वात्मकता से मार्क्स का मतलब विचारो के सघर्ष और गतिशीलता से था। 'भौतिकवाद शब्द का प्रयोग भी सोद्देश्य था। अपने पदार्थ की सर्वोपरिता को स्वीकारते है। कोई पराभौतिक शक्ति के अनुसार इस ससार की गतिविधियॉ सचालित होती है, यह मत उनके लिए मजूर नही था।

मार्क्स ने जगत् के मूल मे भौतिक तत्त्व को स्वीकार कर आत्मा, मन, मस्तिष्क

---

१. मार्क्सवाद – यशपाल, पृ. स ३५

तथा विचारो को भौतिक पदार्थो से उत्पन्न स्वीकार किया। वे हेगेल के भाववादी दर्शन के विरोध मे उभरे फेवर बारव के भौतिकवाद से काफी प्रभावित थे और अपने इतिहास दर्शन को इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा कहते थे। कार्ल मार्क्स ने मानव समाज के इतिहास का आर्थिक और भौतिक दृष्टिकोण से विवेचन किया है।

वस्तुत मार्क्स ने पहली बार भौतिकवाद का इस्तेमाल सगत ढग से मनुष्य के समाज और इतिहास की व्याख्या करने के लिए किया। उन्होने कहा कि जीवन के उत्पादन की क्रिया और उस क्रिया के दौरान कायम सामाजिक बन्धन समाज की वह बुनियाद है, जिस पर राज्य, धर्म, विचारधारा और कला की इमारत खडी होती है। यह कि मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व का निर्धारण उसकी चेतना नही करती, बल्कि चेतना का निर्धारण उसका सामाजिक अस्तित्व करता है।

मार्क्स के दर्शन की एक प्रमुख प्रस्तावना ही थी भौतिकवादी या वैज्ञानिक ढग से यथार्थ के आत्मपरक व्यावहारिक पहलू की खोज। इसके अलावा उन्होने स्पष्ट रूप से कहा विचार जब जनता द्वारा ग्रहण कर लिए जाते है, तब भौतिक शक्ति बन जाते है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के दूसरे प्रतिपादक और मार्क्स के सहयोगी एगेल्स ने आज तक का सारा दर्शन भौतिकवादी और भाववाद के दो विरोधी खेमो मे बॅटा रहा है। मनुष्य द्वारा उत्पादन और सृजन के हर कर्म मे चेतना और उद्देश्य की अग्रगामी भूमिका होती है इसलिए चेतना शारीरिक श्रम के जरिए निर्मित होने का भ्रम भी पाल लेती है। कुल्हाडी की रूप-रेखा अगर लुहार के दिमाग मे मौजूद हो, अगर वह कुल्हाडी का विचार जा सका हो, तभी वह कुल्हाडी को वस्तुगत रूप दे

सकता है। यानि वास्तविक कुल्हाडी का निर्माण कर सकता है। लेकिन कुल्हाडी चेतना के भीतर से पैदा नही होती। लोहा चेतना से पहल ही प्रकृति मे मौजूद होता है। जिसकी तलाश करके और उपयोगिता समझकर मनुष्य उसे अपने उपयोग की भिन्न-भिन्न वस्तुओ मे डाल सकता है। भौतिक पदार्थ का सिर्फ रूप बदला जा सकता है, उसका उत्पादन नही किया जा सकता। "मैं इस बात से इन्कार नही कर सकता कि मार्क्स के चालीस वर्ष तक इकट्ठे काम करने से पहले और बाद मे भी मैंने स्वतंत्र रूप से आर्थिक सिद्धान्तो की खोज का काम किया है परन्तु हम लोगो के विचारो का अधिकाश भाग, विशेषकर जहॉ अर्थशास्त्र, इतिहास और क्रियात्मक व्यवहार के आधारभूत सिद्धान्तो का सम्बन्ध है, श्रेय मार्क्स को ही है। इसलिये इन विचारों और सिद्धान्तो का सम्बन्ध भी उसी के नाम से होना चाहिए ।"[१]

मार्क्स ने मनुष्य समाज के इतिहास की घटनाओ को कार्यकारण की श्रृखला मे जोड दिया। मार्क्स का कहना था कि प्रकृति की तरह मनुष्य समाज के विकास और परिवर्तन के भी नियम है, उसी नियम का आधार मानते हुए उपन्यासकार यशपाल ने अपने उपन्यासो मे मार्क्सवाद के सारभूत तत्त्व" को पहचानकर अपनी लेखनीय के माध्यम से आधुनिक जीवन मूल्यता को संदर्भित किया है।

मार्क्स और एंगेल्स ने अपने दर्शन को औद्योगिक मजदूर वर्ग का विश्व दृष्टिकोण कहा जो आज तक का सबस संगठित प्रौद्योगिकी के सबसे उन्नत औजारों से लैस और सबसे क्रान्तिकारी वर्ग है। वर्ग चेतनायुक्त श्रमिक वर्ग सामाजिक परिवर्तन के लिए क्रान्ति मचाता है। तदन्नतर होने वाले युग दो भागो में विभाजित रहेंगे समाजवादी युग और साम्यवादी युग। साम्यवादी युग में ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार वर्गों का पूरा सत्यानाश नहीं, समता का सूर्योदय होगा,

---

१. मार्क्सवाद – यशपाल, पृ. सं. ३५

जिसका प्रथम चरण समाजवादी व्यवस्था है।

मार्क्सवाद एक प्रकार का नया और वैज्ञानिक मानववाद है जिसे राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे द्वन्द्वात्मक वस्तुवाद और समाजशास्त्र तथा इतिहास के क्षेत्र मे ऐतिहासिक वस्तुवाद कहा जाता है। "बेवर के शब्दो मे "मार्क्सवाद केवल श्रमिक वर्ग ही बुलन्द आवाज नही हे, यह वर्तमान, समाज के प्रभावो तथा जटिलताआ का निश्चित रूप से समझने की वृहद् प्रणाली है, क्रान्तिकारी परिस्थितियो तथा समाज से सम्बन्धित विविध रूपो का अध्ययन करना ही इसका उद्देश्य है।

मार्क्सवादी दर्शन मे पूर्ण क्रमबद्धता है और इस क्रमबद्धता का कारण है उसकी क्रान्तिकारी प्रभावात्मकता क्योकि इसका आधार वर्ग सघर्ष का सिद्धान्त है। जार्ज कैटलीन के अनुसार "द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद आध्यात्म पर अधारित है।" मार्क्सवाद के दर्शन भौतिकवाद अनात्मवाद और निरीश्वरवाद से आशकित होते है। मार्क्सवाद इस प्रकार के दो तरगे ढग को अवैज्ञानिक समझता हे। आध्यात्मवादी आत्मा को चेतना और बुद्धि से पृथक् वस्तु मानते है परन्तु विनाश की खोज मे चेतना और बुद्धि से परे कोई वस्तु नही है। मार्क्सवाद आत्मा के विश्वास को केवल मानसिक अभ्यास या सस्कार समझते है। मार्क्सवाद की नजर मे आत्मा-परमात्मा, भूत-प्रेत आदि काल्पनिक वस्तुओ की तरह केवल विश्वास की वस्तु है। आत्मा-परमात्मा पर विश्वास रखने से मनुष्य अपने सामने एक महान और उच्च आदर्श को रखकर महान शक्ति का आश्रय पाकर विकास कर सकता है। मार्क्सवाद कहता है कि जो शक्ति वास्तव मे है ही नही वह मनुष्य को किस प्रकार ऊँचा उठा सकती है और आश्रय दे सकती है। मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार धर्म, कर्तव्य और न्याय परिस्थितियो के अनुसार बदलते रहते है। मार्क्सवाद मनुष्य के की उन्नति की कोई

सीमा स्वीकार नही करता और न ही किसी लक्ष्य को अतिम आदर्श स्वीकार करता है। वह विश्वास करता है मनुष्य आर उसका समाज उन्नति कर जिस अवस्था को पहुँच जाता है वही से आगे उन्नति का एक नया मार्ग शुरू हो जाता है। मार्क्सवाद गहरे परिवर्तन को ही नाश और उत्पत्ति के रूप मानता है, और प्रकृति के किसी भी अश को परिवर्तन और विकास के नियम से मुक्त नहीं मानता।

मार्टिन्डेल ने सूत्र रूप मे मार्क्सवाद की व्याख्या करते हुए लिखा है कि - "मार्कसिज्म रिप्रजेन्ट्स ए फार्म आव कान्फिलिक्ट आइडियोलाजी डवलप्ड इन दि नेम आव दि प्रोलेटेरिएट"। मार्क्स ने [1] सामाजिक जीवन एवं मानव इतिहास की प्रत्येक घटना को वैज्ञानिक एव क्रान्तिकारी दृष्टिकोण से परखा। मार्क्स के दर्शन को विश्लेषित करते हुए जार्ज कैटलिन ने लिखा है कि ' दि मार्निसगन फिलासफी इज ए कोइरेन्ट होल। इज मारिसम विकास रिवोलूशनरी ऐक्शन इज बिल्ट अपान क्लास वार थियरी, दि क्लास वार अपान दि एकोनामिक थियरी आव सरप्लस वैल्यु दिस एकोनामिक थियरी अपान दि एकोनामिक इन्टरप्रेटेशन आव हिस्ट्री, दिस इन्टरप्रेटेशन अपान दि मार्क्स-हिगोलियन लाजिक आर डाइलेक्टिक्स एण्ड दिस अपान का मैटेरियलिस्टैस मेटाफिजिक्स।"

मार्क्सवादी सिद्धान्त भौतिक तत्त्वों पर आधारित है। अत उसे वैज्ञानिक भौतिकवाद की संज्ञा से अभिहित किया गया। मार्क्स ने इस संसार को परिवर्तित करने के लिए समाजवादी दर्शन को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। मारिस कार्नफोर्थ ने लिखा है कि भौतिकवाद का अर्थ है ऐसा दृष्टिकोण जो भौतिक जगत् की हर वस्तु की, जिसमें मानव जीवन की सभी घटनाएं शामिल है, व्याख्या स्वयं भौतिक तत्त्वों के आधार पर करता है।"[2] मार्क्स ने व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक क्षेत्र

---

१. दि नेचर एण्ड टाइम्स ऑफ सोसियोलाजीकल थियरी – मार्टिन्डेल पृ. १६२

२. प्रगतिवादी समीक्षा – राम प्रसाद द्विवेदी पृ. १८

मे कल्पना की उडाने भरने की बजाय जीवन की यथार्थ आवश्यकताओ के आधार पर सोचने के लिए विवश किया। उसके अनुसार- "जगत् के मूल मे भौतिकतत्त्व ही वह विजय है जो विश्व की चरम सजा है। मार्क्स का भू-तत्त्व ही सबका जनक है चेतना उसी से अविर्भूत हुई प्रतिदिन के अनुभव का ससार ही सच्चा ससार है ब्रह्म का या आत्मा का हमारे लिए कोई महत्त्व नही है इसके विपरीत भौतिक पदार्थ जैसे मिट्टी, पत्थर, रक्त, मास, मज्जा आदि को हम प्रत्यक्ष देखते ही अनुभव करते है। अत वे हमारे लिए सत्य एव अतिम है।[१]

मार्क्सवाद मात्र कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तो का सग्रह ही नही है अपितु समाज मे उसका एक गतिशील स्वरूप रहा है, इस सम्बन्ध मे एमिल बर्न्स का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि "जैसे-जैसे इतिहास की नई-नई तहे खुलती जाती है, जैसे-जैसे मनुष्य और अनुभवयुक्त होता जाता है, वैसे-वैसे मार्क्सवाद का भी अनवरत[२] विकास किया जा रहा है तथा उसे नये-नये तथ्यो पर लागू किया जा रहा है जो अब प्रकाश मे आते जा रहे है।"[२]

मार्क्सवाद विश्व की कम्युनिस्ट पार्टियो का वह घोषित सिद्धान्त है जिसके आधार पर वह अपनी राजनीति, आर्थिक, सास्कृतिक योजनाओ को निर्मित कर सर्वहारा क्रान्ति की सफलता के उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।[3]

डॉ॰ राम किशन सैनी के अनुसार "मार्क्सवादी चितन एक राजनीति अथवा श्रमिक क्रान्ति का कार्यक्रम मात्र नही है अपितु यह एक सर्वव्यापी दृष्टि है।" मार्क्सवाद अपने कार्यक्रम मे एक व्यक्ति को नही बल्कि समाज के सब व्यक्तियो के हित को महत्त्व देता है।"[४] इसलिए मार्क्सवाद मे स्वार्थ का अभिप्राय केवल

---

१. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ॰ पारसनाथ मिश्र, लोक भारती प्रकाशन,

२ एमिल बर्न्स मार्क्सवाद क्या है ? – ओम प्रकाश सगल पृ स. ५

३ आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव – डॉ हरिकृष्णा पुरोहित पृ २७८

४. आधुनिक मार्क्सवाद – यशपाल। पृ. ४८

व्यक्तिगत नही बल्कि श्रेणी या समाज के हित से होता है और समाज के लिए निजी स्वार्थ का बलिदान बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता है और समाज को हानि पहुँचाकर संकीर्ण स्वार्थ साधने की चेष्टा सामाजिक दृष्टि से अदूरदर्शिता और मूर्खता है।

मार्क्सवाद के अनुसार आर्थिक उद्देश्य से किये जाने वाले प्रयत्न, समाज के सगठन, विचारो और शासन का रूप निश्चित करते हैं। पूँजीवादी प्रणाली या प्राचीन विचारो मे विश्वास रखने वाले अनेक लोग ऐतिहासिक आर्थिक दृष्टिकोण को समाज के विकास और इतिहास का आधार मानने मे एतराज करते हैं। उनका कहना है, आर्थिक और भौतिक परिस्थितियों को ही मनुष्यों के सब कार्यो का आधार मान लेने से मनुष्य के स्वतत्रतापूर्वक अपने भरोसे पर काम करने का अवसर कहीं नहीं रह जाता।

मार्क्सवाद आर्थिक परिस्थितियों को भाग्य की बात नही समझता। आर्थिक परिस्थितियों के कारण पैदा हो जाने वाली अडचनो को दूर करने के लिए मनुष्य जो विचार और कार्य करता है, मार्क्सवादी उन्हे भी आर्थिक परिस्थितियो का ही अग समझते हैं।

मार्क्स ने श्रम की महत्ता पर विशेष बल देते हुए कहा कि जो अलगाव श्रमिक वर्ग के लिए एक क्रिया है वही शासक वर्ग के लिए जीवन की अवस्था होता है। वस्तुत. कर्म की परतंत्रता सारे मानव ससार की परतत्रता है।

पूँजीवादी समाज मे अलगाव और अजनबीपन सार्वभौम हो गया है। मार्क्स यह जरूर मानते थे कि मनुष्य परम स्वतंत्र नहीं है और हर पीढी अपने से पहले की

पीढी से प्राप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीति, धार्मिक, एव सास्कृतिक ढाचे के आधार पर ही काम शुरू करती है और उसमे कुछ और जोडती है। वस्तुत मानवता का इतिहास श्रम, तकनीक और सामाजिक सम्बन्धो के निरन्तर विकास का इतिहास है।

श्रम की महत्ता का प्रतिपादन लेनिन के शब्दो मे "जो काम नही करते उन्हे अगर मताधिकार से वचित कर दिया जाए तो सच्ची समानता होगी जो काम नही करे वो खाये भी नही"।[1]

'मनुष्य को श्रम करना चाहिए ताकि वो जीवित रह सके' ट्राटस्की का नारा था। मार्क्स ने दुनिया को बदलने का आह्वान किया उन्होने श्रम के द्वारा बाह्य और आन्तरिक प्राकृतिक को बदलने और अनिवार्यता पर काबू पाने मे ही स्वतत्रता देखी उनकी दृष्टि मे वे कर्म और जीवन से मुक्ति नही बल्कि कर्म और जीवन से मुक्ति चाहते थे। इन्होने कर्म को जीवन का सार भौतिकवादी दृष्टिकोण से माना जो जीवन के लिए उत्पादन का कर्म ही सारे मानवीय क्रिया कलापो का प्राथमिक और बुनियादी रूप था। श्रम प्रक्रिया ही मनुष्य को अन्य पशुओ से अलग करती है क्योकि घोसला या छज्जा बनाने जैसे जटिल कर्म भी पशु सहज प्रवृत्ति के आधार पर करते है जबकि मनुष्य का सारा रचना कर्म एक निश्चित अवधारणा और योजना की मॉग करता है। जिस प्रकार जगलो की जगह खेत और मिट्टी से मकान बना दिये गये है। इसके अलावा आन्तरिक प्रकृति को भी बदल दिया है श्रम ही मनुष्य का जीवन और उसकी स्वतन्त्रता की आधारशिला है आज की स्थिति मे पूॅजीवाद है तो श्रम प्रतिवाद और इनके सघर्षो से एक नवीन सामाजिक व्यवस्था 'समाजवाद' का अभ्युदय होगा ऐसा मार्क्स ने कहा है।

---

१ लेनिन सोवियत सत्ता क्या है ? – प्रगति प्रकासन मास्को सस्करण सन् १९६७ ई० पृ. २६

मनुष्य के विकास के लिए समाजवादी व्यवस्था मे प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति और विकास के लिए समान अवसर प्राप्त होगा और प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रम का पूरा प्रतिफल मिलेगा। समष्टिवाद या कम्युनिज्म मे प्रत्येक मनुष्य अपनी सामर्थ्य भर मेहनत करके अपनी आवश्यकतानुसार पदार्थ प्राप्त कर सकेगा।

मार्क्सवाद के अनुसार "तर्क और सिद्धान्त रूप से मध्यम श्रेणी जैसे किसी स्तर का बने रहना सम्भव नही. परन्तु जीवन की अवस्था के दृष्टिकोण से एक ऐसा स्तर समाज के बुद्धिजीवी लोगो का है जो पैदावार के साधनो से हीन है जो अपनी श्रम शक्ति बेचकर ही जीविका पाते हैं, परन्तु उनका श्रम बुद्धि का या कलम चलाने का है, हथौडा या हॅसियॉ चलाने का नही।"[१]

उपर्युक्त कथन मध्यवर्गीय लोगो के अन्तर्गत आता है जो विवशता के दोहरे पाटो के रूपों मे पिसते रहते हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा यूरोप के पश्चिम देशों तक सीमित थी परन्तु सोवियत संघ की स्थापना विश्व इतिहास की ऐसी घटना थी जिसने समस्त संसार को मार्क्सवाद की ओर आकर्षित किया।

कला के क्षेत्र में मार्क्सवाद की कितनी भी कमजोरियॉ क्यो न हो यह बात अवश्य मानना पडता है कि साहित्य को इसने जनवादी बना दिया है। साहित्य को मार्क्सवाद एक प्रकार से 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' की दृष्टि से देखता है।

मार्क्सवादी विचारधारा की प्रवृत्तियों में मुख्यतः क्रान्ति मंच चेतना शोषित दलितों के प्रति सहानुभूति वर्ग वैषम्य और वर्ग संघर्ष की प्रवृत्ति और शोषण के विरुद्ध हिंसा की अभिस्वीकृति, उपनिवेशवादी विरोध कला जीवन के लिए सिद्धान्त

---

१. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ पारस नाथ मिश्र पृ॰ १५६

का समर्थन जनशक्ति मे आस्था श्रम की महत्ता का प्रतिपादन समर्वितरण का सिद्धान्त एव राज्य सजा का लोभ एव आदर्श साम्यवादी की परिकल्पना सभी गुण विद्यमान है।

मार्क्सवाद की मूलभूत यही चिन्तन धारा जब हमारे देश मे स्वीकृति हुई तो उसमे यहॉ की स्थिति के अनुकूल कुछ भी परिवर्तन न कर ज्यो का त्यो ग्रहण कर लिया। परिणाम यह हुआ कि जो स्थितियॉ मार्क्सवादी देशो के समान थी उनके साथ तो ये मेल खायी किन्तु कुछ स्थितियॉ जो उनसे भिन्न थी उनके लिए यह विचारधारा अनुकूल नही पडी, फिर भी उसका समाजवादी दृष्टिकोण सर्वग्रास सिद्ध हुआ। यही कारण है कि हमारे देश का गणतत्र शासन का वही मूल आधार बना, जिसे स्वतत्रता पूर्व हमारे देश के क्रान्तिकारियो ने अपना एक मात्र उद्देश्य घोषित किया था।

मार्क्सवादी दर्शन का मूल उद्देश्य वर्गहीन समाज की प्रतिस्थापना है, जिसमे जॉति, पॉति धर्म श्रेणी आदि मनुष्य के विकास मे बाधक नही हो। व्यक्ति की कार्यक्षमता ही उसके स्तर का मापदण्ड हो। धर्म के स्थान पर कर्म की प्रधानता हो। शोषक और शोषित नाम के वर्गो का उन्मूलन कर वह समानता के स्तर पर सामाजिक नियमो को स्वीकार करता है। देश का उपार्जन, श्रम और पूँजी की समान महत्ता के द्वारा सबके उपयोग की वस्तु है। इस प्रकार इस विचार के अनुसार हर व्यक्ति की आगे-बढने का समान अधिकार है और कोई व्यक्ति किसी की उन्नति मे बाधक नही बन सकता।

यही मार्क्सवाद की विचारधारा का मूल तत्र है जिसको आधार मानते हुए उपन्यासकार यशपाल ने जीवन मूल्यो, विचारो, सिद्धान्तो को अपने मार्क्सवादी

दृष्टिकोण द्वारा जैसे उपन्यास-दादा कामरेड, देशद्रोही, मनुष्य के रूप, झूठा-सच आदि उपन्यासो मे सर्वग्राही रूप से अभिव्यक्त करने का पुरजोर रूप से प्रयास किया है एवं राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक क्षेत्रो मे भी मार्क्सवादी दर्शन को रूपायित किया है।

ख. मार्क्सवादी परिवेश और यशपाल

उपन्यासकार यशपाल की जीवन दृष्टि मार्क्सवादी चिन्तन से अनुप्राप्ति है। मार्क्सवाद समाज मे समता लाने की एक विधि अथवा वैज्ञानिक विचारधारा है। यशपाल ने इससे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया है "मैं कम्युनिज्म को सर्वधारण जनता की मुक्ति का साधन वैज्ञानिक विचारधारा समझता हूँ, अपनी सम्पूर्ण शक्ति को उस वाद के प्रति 'देय' स्वीकार करने मे मुझे कोई सकोच नही है।[१]

यशपाल की दृष्टि मे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही मार्क्सवाद के लिए पर्याप्त है क्योकि वह विचार की एक पद्धति है जो समय और स्थान विशेष मे स्वीकृत मान्यताओं की सीमाओ से जकडी हुई नहीं है। वह हमारे नित्य बढ़ते ज्ञान, अनुभव के आधार पर परिस्थितियो और सामयिक आवश्यकताओ के अनुसार चिन्तन की प्रेरणा है।"[२] यशपाल के इस विचार की पुष्टि मार्क्स की पुस्तक से होती है। यशपाल ऐसे ही उपन्यासकार है जिन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव पड़ा था अपने उपन्यासों में यशपाल ने सामाजिक यथार्थवाद की अभिव्यक्ति भी दी। सामाजिक यथार्थवाद का मुख्य उद्देश्य पूॅजीवाद के नाश और वर्गविहीन समाज की स्थापना में योग देना है। पाठकों पर भी इस विचारधारा का गहरा प्रभाव पडा और उपन्यासो

---

१. देखा, सोचा, समझा – यशपाल, पृ.स. ११३।

२. धर्मयुग, २८ अगस्त १९६६ ई., पृ. सं. ८६

मे भी इसी विचारधारा को खोजने लगे। प्रकाश सक्सेना ने यशपाल के उपन्यासों पर टिप्पणी करते हुये लिखा था .. "यशपाल के उपन्यासों की मुख्य विशेषता उनका तीखा और चुभता हुआ व्यंग है, प्रेमचन्द का व्यंग भी काफी जोरदार से होता है अपने उपन्यासों और कहानियो मे उन्होंने धर्म पर सामाजिक कुरीतियों पर मिथ्या विश्वासो पर निर्भर चोटे की हैं, परन्तु यशपाल का व्यंग उससे भी अधिक कटु और छिदता हुआ है। हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द से मिले व्यगास्त्र को यशपाल ने अपने उपन्यासो में और अधिक तेज और नुकीला किया है। ऐसे उपन्यासकार यदि भविष्य मे भी हिन्दी का मिलते रहे तो कोई शक नही है कि हिन्दी सरलता से विश्व उपन्यास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना सकेगी।" इस सजग कलाकार ने हिन्दी कथा साहित्य को बहुत योग बढाया है और अभी तक उसको अबोध गति में कोई विराम चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होता है।

यशपाल नारी स्वतत्रता के पक्षधर है वे नारी की समस्या के मूल में उसकी आर्थिक परतंत्रता को स्वीकारते हैं उन्होंने विवाह और परिवार के सम्बन्ध मे भी अपनी कृतियों के माध्यम से मार्क्सवादी विचारधाराओं को मूर्तरूप देने का प्रयत्न किया है। यशपाल का आग्रह प्रेम विवाह और परिवार के प्रति इतना प्रबल है कि उनके औपन्यासिक पात्र प्रवृत्ति से विवाह विरोधी है। वे जानबूझकर या अनजाने में विवाह से कतराते हैं और यदि वैवाहिक बन्धन में पड जाते हैं तो उसे तोड फेंकने के लिए छटपटाते हैं। यशपाल के उपन्यास साहित्य में अनैतिक मूल्यों, सामाजिक व्यवस्थाओं का विरोध मिलता है जो स्वस्थ समाज के विकास मे बाधक है। भारत में क्रान्तिकारी स्वतंत्रता आन्दोलन का चित्रण किया है जो एक द्रष्टा और सहयोगी के चरित्र का अंकन भी करता है।

यशपाल मे मार्क्सवादी विचारधारा फ्रायड की कामशक्ति से मिलकर चलती है वे पूँजीवादी और गाँधीवाद का विरोध करते हुए समाजवाद का समर्थन करते है। वे प्रेम को कामेच्छा मात्र मानते है इस सन्दर्भ मे यशपाल के उपन्यास दादा कामरेड (१६४१), पार्टी कामरेड (१६४६) मनुष्य के रूप (१६४६, आदि उल्लेखनीय है। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार नाश मे भी सृजन होता है। इसका समर्थन राजेन्द्र यादव ने नाश को ही शिव मान कर किया है "हमे उसके साथ नाचना है, वह शिव है, हम प्रेत है।"

यशपाल के उपन्यासो मे सामाजिक पीठिका से जिन पात्रो का उदय हुआ है। उनके माध्यम से लेखक ने सामाजिक रूढियो एव परम्परागत मान्यताओ मे जकडे और घुटन की शिकार पात्रो को प्रस्तुत किया है। इन्ही सामाजिक पात्रो मे कुछ ऐसे भी पात्र है जो एक ओर सामाजिक रूढियो के बन्धन के कारण अनेक प्रकार की विवशताएँ अनुभव करते है और दूसरी ओर उन्हे तोडकर नये जीवन मूल्य की भी स्थापना करते है। जैसे झूठासच उपन्यास मे लेखक ने देश विभाजन के अवसर पर अनेक पात्रो को धार्मिक एव साम्प्रदायिक उन्माद के कारण अमानवीय भूमिका निभाते हुए दिखाया है।

राजनैतिक, सामाजिक उपन्यासो के अतिरिक्त यशपाल ने ऐतिहासिक एव पौराणिक उपन्यासो की भी सृजना की है। जो इतिहास, पुराण न होकर इतिहासिक पौराणिक कल्पना मात्र है। मार्क्सवाद हमारे युग क्रान्ति दर्शन है जिसमे सामाजिक क्रान्ति के लिए वर्ग सघर्ष की भावना दृष्टिगत होती है आधुनिक युग मे यदि प्रगतिशील शक्तियॉ सामाजिक क्रान्ति की ओर उन्मुख हो रही है तो समाज मे व्याप्त विभिन्न प्रक्रियावादी शक्तियॉ उन्हे रोकने के प्रयास मे लगी हुई है।

सामाजिक विषमता, आर्थिक शोषण को दूर करने के लिए प्रतिक्रियावादी शक्तियो की पराजय आवश्यक है। यशपाल जी अपने उपन्यासों मे इन शक्तियो की परस्पर संघर्ष को चित्रित किया है जो आधुनिक परिवेश में प्रगतिशीलता का सूचक है।

यशपाल के अनुसार समाजवाद या मनुष्यत्व का आधार विज्ञान द्वारा निर्मित कल-मशीने मनुष्य की सभ्यता का विकास करती है। यदि मनुष्य समाज का विकास नही करेगा तो उसका विनाश और पतन निश्चित होने लगेगा। मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य बढना ही सामाजिक रूप से उसका विकास है। ये विज्ञान की बढती हुई शक्ति पर ही निर्भर है। यशपाल का कहना है कि यदि गॉधीवाद इसका विरोध करता है या इसे विनाशी सभ्यता का प्रतीक मानता है तो वह पूॅजीवादी प्रणाली या व्यवस्था का ही समर्थन करता है।

यशपाल का विचार है कि .... "घरेलू उद्योग धन्धे पैदावार को वैयक्तिक ढंग से करने का तरीका है और वह सामन्तवादी प्रणाली का अवशेष है। इस ढंग से अड़ना समाज को पुरानी व्यवस्था मे बॉधे रखने का बहाना है।"[१]

मार्क्सवाद समाज के लिए ऐसे शासन व्यवस्था को आदर्श समझता है जिसमें किसी भी श्रेणी या वर्ग का शोषण न हो सके। अपने इसी विचारों की अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी प्रथम उपन्यास 'दादा कामरेड' में की उपन्यास का नायक हरीश, पूॅजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करते हुए समाजवादी समाज व्यवस्था के निर्माण के लिए प्रयत्नशील दिखायी देता है। अपने जनवादी विचारों के कारण वह जीवन के सभी क्षेत्रो में क्रान्तिकर दकियानूसी विश्वासों गलत रूढियों जर्जर मान्यताओं को उखाड़ फेकना चाहता है समाजवादी लक्ष्यों के प्रति वह इस हद तक समर्पित है कि राह में आने वाली किसी भी बाधा की रंचमात्र परवाह नहीं करता।

१. गांधीवाद की शव परीक्षा – यशपाल, पृ. सं. ६०

मार्क्सवादी दर्शन के अन्तर्गत समाज दो वर्गो मे बाटा गया है-जिसमे पहले वर्ग पूँजीपति और दूसरा वर्ग मजदूर या सर्वहारा वर्ग। इन्ही दो वर्गो को संघर्ष से समाज के निरन्तर विकास की प्रक्रिया को आधार माना गया है। मार्क्स ने विश्व मच पर मजदूर वर्ग के लिए एक नारा "दुनिया के मजदूर एक हो, सगठित हो।" दिया था इसी को आधार मानते हुए यशपाल ने 'दादा कामरेड' मे मजदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए हरीश के शब्दो मे कहा - "मजदूर भाइयो यह मिलें तुम्हारी और तुम्हारे भाइयो के मेहनत से बनी है। तुम्हारे बिना यह मिले एक सेकेण्ड भी नही चल सकती। इसमे धागे का एक तार भी तैयार नही हो सकता, तुम्हारी मेहनत की कमायी से मिलो के मालिक और हिस्सेदार बैठे-बैठे ससार के सब सुख लूटते है.. मजदूर भाइयो । हम सूखी रोटी के निवाले मॉग रहे हैं और मालिक लोग अपने एशो-इशरत के लिए सिद्ध कर रहे हैं हम मर जायेंगे किन्तु पीछे नही हटेंगे।[1]

इस प्रसंग में मजदूर वर्ग या श्रमिक वर्ग को सगठित होने का आहवाहन यशपाल ने मार्क्स के दर्शन से प्रभावित होकर किया है।

मार्क्स ने समाज के विकास क्रम में मूलभूत विपत्तियॉ प्रभावित कर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित व्यवस्था को आदिकाल से आधुनिक काल तक सामाजिक विकास को अपने उपन्यासों में यशपाल ने निक्षेपित किया है। वर्ग संघर्ष की भावना को मार्क्स ने अपने दर्शन में उठाया जिसमें शोषक वर्ग के अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध शोषित वर्ग सदा संघर्ष करता है और शोषक वर्ग उतनी ही निर्ममता के साथ इसका दमन भी करता है मार्क्स ने इसी को वर्ग सघर्ष का नाम दिया। वर्ग-संघर्ष जब अत्यन्त तीव्र ओ उठता है तो समाज मे आकस्मिक परिवर्तन हो जाता है जो क्रान्ति के नाम से जाना जाता है। क्रान्ति का मूल लक्ष्य होता है,

---

१. दादा कामरेड – यशपाल, पृ. स. ११६

पतनोन्मुख, रुग्ण, प्रतिगामी शक्तियो के हाथ से स्वस्थ प्रगतिशील शक्तियों के हाथ मे सत्ता का संक्रमण। इस प्रकार मार्क्सवाद के अनुसार क्रान्ति विध्वसात्मक न होकर निर्माणात्मक होती है।

यशपाल मार्क्सवादी जीवन दर्शन मे विश्वास रखने वाले कलाकार है। यशपाल का साहित्यकार-कम्युनिज्म' की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा का अनुमोदन करता है। उन्होने यह स्पष्ट स्वीकार किया है " मैं सर्वसाधारण जनता को शोषित और अन्याय पीडित समझता हूॅ इस अन्याय से जनता की मुक्ति का उपाय कम्युनिज्म भी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा की मानता हूॅ।"[१]

इस प्रकार यशपाल का लक्ष्य पीड़ित और दलित मानवता के उद्धार के लिए परिस्थितियॉ उत्पन्न करना है। इनसे उपन्यास 'डायलेक्टिस' वर्ग सघर्ष और सर्वधारा वर्ग की क्रान्ति की आधारभूमि पर खडे दिखलाये पड़ते हैं। उनके उपन्यासों मे पूॅजीवादी, समाजवादी समाज व्यवस्था के परम्परागत नैतिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह का भाव जागृत होता है। उनके प्रत्येक उपन्यास में प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील नारी पात्रों के बीच सघर्ष दिखलायी पडता है। यशपाल ने "मनुष्य के भौतिक परिवेश अथवा आर्थिक सामाजिक परिस्थितियों की ही विचार परिवर्तन एवं जीवन मूल्यों में परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण कारण माना है और साहित्य, कला, संस्कृति, धर्म, न्याय एव नीति आदि को उस पर आश्रित बताया है।[२]

सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तनशील महत्त्वपूर्ण कारणों में धर्म और नीति का भी यशपाल साहित्य में विशेष स्थान है। जो उनके उपन्यासों के माध्यम से पात्रो में सर्वत्र दिखलायी पडता है।

---

१. देखा, सोचा और समझा – यशपाल पृ. सं. ८

२. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ. पारस नाथ मिश्र, पृ ११४

मार्क्स के अनुसार धर्म यथार्थ का विकृत अथवा काल्पनिक प्रतिबिम्ब मात्र है। "हर प्रकार का धर्म मनुष्यो के मस्तिष्क मे उन बाह्य शक्तियो के काल्पनिक प्रतिबिम्ब के सिवा और कुछ नही होता जो उनसे दैनिक जीवन को नियंत्रित करती है ऐसा प्रतिबिम्ब जिसमे लौकिक शक्तियॉ अलौकिक शक्तियों का रूप धारण कर लेती है।"[१] "All religion, nowever is nothing but the fantastic reflection in men's minds of those external forces which control their daily life, a reflection in which the therrestrial forces assume the form of supernatural forces "

इसलिए मार्क्सवाद के अनुसार उन सब प्राचीन मान्यताओ जादू-टोने का भी अन्त होना अनिवार्य है। मुक्त समाज मे धार्मिक उपासना के लिए कोई स्थान नही हो सकता। क्योंकि उसका प्रत्येक सदस्य उस आदिम कालीन बचकाने अन्धविश्वास से मुक्त हो चुका है कि प्रकृति के पीछे अथवा उससे ऊपर कोई प्राणी है जिन्हे बलि चढा के या प्रार्थनाओं के द्वारा खुश किया जा सकता है। वस्तुत: समाजवादी व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि वह "धार्मिक जादू-टोने के तमाम तामझाम का और उसके साथ-साथ धार्मिक उपासना के समस्त आवश्यक तत्त्वो का अन्त कर दे।" [२]

यशपाल ने इसी दृष्टिकोण से अनेक कहानियों की सृष्टि की जैसे -'तूफान का दैत्य', 'जादू के चावल', ' अंग्रेज का घुघरूँ' आदि मे जादू-टोनों की निष्फलता और अंधविश्वासों का भण्डा-फोड किया गया है। इसी तरह यशपाल ने भी धार्मिक अन्धविश्वास की भरसक निन्दा की है। यशपाल की दृष्टि में जीवन का लक्ष्य इहलौकिक न मानकर आध्यात्मिक या पारलौकिक मान लेना सामाजिक समस्याओं

---

1. Engels : Anti-Duhring, 1959 P. 435 - Quoted From V. Afanasyev : Marxit Philosophy, P. 370

२. मार्क्स और एंगिल्स, धर्म ड्यूरिंग मत से खण्डन – एंगिल्स से उद्धृत , पृ. सं. १६३–१६४।

और रूढियो को बढावा देना ही है। मार्क्सवाद के अनुसार धर्म कर्त्तव्य और न्याय परिस्थितियों के अनुसार मनुष्य के जीवन मे बदलते रहते हैं। परन्तु अध्यात्मवादियों के विचार मे आत्मा-परमात्मा कभी नही बदलते, इसलिए परिवर्तन के मार्ग पर चलते हुए समाज को परिवर्तन आशकित करने वाली आध्यात्मिकता सदा पीछे की ओर घसीटती है। जबकि मार्क्सवाद यह सिद्ध करता है कि धर्म विश्वास ने सदा ही नवीन विचारों का विरोध कर सदैव प्राचीन व्यवस्था विश्वास और पद्धति की ही सहायता की है। मार्क्स के अनुसार धर्म उत्पीडित प्राणी की आह है, एक हृदय हीन दुनिया का एक हृदय है उसी तरह जिस तरह की आत्माविहीन स्थिति की वह आत्मा है वह जनता की अफीम है ."जनता के मिथ्या सुख के रूप मे धर्म का उन्मूलन करना उसके वास्तविक सुख के लिए आवश्यक है।[१]

उपन्यासकार यशपाल का धार्मिक दृष्टिकोण मार्क्स के अनुसार यही है। यशपाल की व्याख्या के अनुसार.. आध्यात्मवादियों का कहना है कि.. आत्मा-परमात्मा में विश्वास रखने से मनुष्य अपने एक महान और ऊँचे आदर्श को रखकर महान शक्ति का आश्रय पा सकता है। जबकि मार्क्सवाद कहता है जो शक्ति वास्तव में है ही नहीं वह मनुष्य को किस प्रकार ऊँचा उठा सकती है और आश्रय दे सकती है। उससे मिलने वाला आश्रय केवल मिथ्या विश्वास होगा। "[२]

इस प्रकार धर्म परक और नीति परक सिद्धान्तों के आधार पर मार्क्सवादी परिवेश में उपन्यासकार यशपाल ने अपनी सशक्त लेखनी द्वारा समाजवादी व्यवस्था के भौतिक (आध्यात्मवादी) दृष्टिकोणों पर अपने विचारों की विशद् व्याख्या विभिन्न उपन्यासों जैसे दादा कामरेड, देशद्रोही, पार्टी कामरेड, झूठा सच आदि उपन्यासों में द्रष्टव्य किया है।

धर्म मार्क्स – एंजिल्स, पृ. स. ५१
२. यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ. सरोज गुप्त, पृ. ६७

मार्क्सवाद के अनुसार मनुष्य के जीवन मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान आर्थिक भी है दूसरे रूप में यह हम कह सकते हैं कि समाज के इतिहास का आधार आर्थिक है जो मार्क्सवाद के आर्थिक नीव पर कायम रहता है। इसका ये अर्थ नही कि मनुष्य जो कुछ करता है वह धन या द्रव्य की प्राप्ति के उद्देश्य से ही करता है। अर्थ ही समाज के व्यक्तियो के पारस्परिक सम्बन्धो की बुनियाद है। आर्थिक स्थितियो मे परिवर्तन सामाजिक सम्बन्धो में अनिवार्य रूप से लाता है। मार्क्स के अनुसार - "भाई-भाई का, पति-पत्नी का, बाप-बेटे का, राष्ट्र-राष्ट्र का सम्बन्ध अर्थ के ही आधार पर बनता बिगडता है।"[1]

तात्पर्य यह है कि सारे सामाजिक सम्बन्ध अर्थ की ही आधारशिला पर ही अवस्थित है। जब की मार्क्सवाद आर्थिक परिस्थितियों को भाग्य की बात नही समझता। आर्थिक परिस्थितियों के कारण पैदा हो जाने वाली अडचनों को दूर करने के लिए मनुष्य जो विचार और कार्य करता है मार्क्सवादी उन्हें भी आर्थिक परिस्थितियो का ही अग समझते है। मार्क्सवादी यशपाल को भी सभी मान्यताएँ मार्क्सवाद की मान्य है। यशपाल के उपन्यासो मे सामाजिक सम्बन्धों का जो विश्लेषण दिखलायी देता है वह उपर्युक्त बातो की पुष्टि करता है। जैसे मनुष्य के रूप की सीमा, मनोरमा, झूठा-सच का जयदव पुरी आदि का जीवन व्यक्तिगत स्तर पर एक और दासों, सामन्तो, मजदूरों एवं पूँजीपतियों आदि का जीवन सामूहिक रूप से स्पष्ट करते हैं।

वस्तुत. यशपाल के उपन्यास सामाजिक सम्बन्धों के सन्दर्भ मे अमूल-चूल से परिवर्तित होते दिखलायी पडते हैं। आज भी हम सामाजिक जीवन में इसी सच्चाई का अनुभव करते हैं।

---

१. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ॰ पारस नाथ मिश्र, पृ. सं. १२८

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि मार्क्सवादी परिवेश मे उपन्यासकार यशपाल की यह मान्यता बिल्कुल सटीक आधुनिकतावादी सन्दर्भ मे परिलक्षित होती है।

ग. प्रगतिशीलता और यशपाल की परिदृष्टि

प्रगतिशील उपन्यासकार यशपाल का नाम सुप्रसिद्ध है। उन्होने अपनी लेखनी के माध्यम से यथार्थवाद का सम्पुष्ट विवेचन अपने उपन्यासों मे किया है। इनके उपन्यास जैसे दादा कामरेड, देशद्रोही, मनुष्य के रूप, झूठा-सच आदि मुख्यत. मार्क्सवादी विचारधारा से ओत-प्रोत है ये उपन्यास प्रगतिशील साहित्य भारतीय सामाजिक चेतना के विकास मे स्थान रखता है।

यशपाल प्रगतिवाद के विजय मे कहते हैं.. "प्रगतिवाद क्या है, यह बात काफी कूट छानकर देखी जा चुकी है, हम यह समझ चुके है कि जो पूँजीवाद एक समय समाज की आवश्यकताओ को पहले की अपेक्षा अधिक परिमाण मे तृप्ति कर सकने के कारण विकासशील या अब इस सीमा पर पहुँच गया है, जहॉ वह अपने स्वार्थ के लिए समाज को बर्बाद कर रहा है, इसलिए वह विकासशील नहीं रहा, इस पूँजीवादी व्यवस्था में सामाजिक विकास और प्रगति के लिए अवसर नही। हम यह स्वीकार भी करते हैं कि समाज की वर्तमान अवस्था मे संघटित मजदूर वर्ग ही एक मात्र प्रगतिशील और क्रान्तिकारी शक्ति है जो समाज की इस जीर्ण व्यवस्था से नयी और विकासशील, व्यवस्था में ले जा सकती है। पूँजीवाद की यह व्यवस्था में बंधे समाज में जो अव्यवस्था और घुटन पैदा हो रही है, जो विनाश हो रहा है, उसे संगठित और सचेत मजदूर वर्ग के नेतृत्व में समाजवादी व्यवस्था लाकर ही दूर

किया जा सकता है। हम यह भी मानते है कि सामाजिक विकास का मार्ग आर्थिक आधार पर श्रेणीगत सघर्ष ही रहा है और भविष्य के लिए भी यह क्रम अनिवार्य है। इस सिद्धान्त से भी विवाद नही कि समाज की सम्पूर्ण व्यवस्था ही जड उत्पादक के साधनो से स्वामित्व अधिकार मे ही जमी हुई है और जर्जर पूँजीवादी व्यवस्था को सुधार के पेवन्द लगाकर समाज के पोषण के योग्य नही बनाया जा सकता। समाज की रक्षा के लिए आवश्यकता है सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था मे क्रान्ति की। पूँजीवादी शोषक व्यवस्था के स्थान पर समाजवादी पोषक व्यवस्था लाने की और समाज की भावना की अभिव्यक्ति के रूप मे साहित्य की उपादेयता को इस लक्ष्य की प्राप्ति मे सहायक बनना ही है। परन्तु फिर भी "आर्थिक विधान को ही समाज का श्वास माने तो भी हम समाज के स्थूल शरीर की उपेक्षा नही कर सकते। समाज की वास्तविकता का परिचय देने के लिए केवल उसकी श्वास गणना या साज़ के फेफडो (आर्थिक व्यवस्था) का एक्सरे चित्र देना ही पर्याप्त नही हो सकता।"[१] यदि हम अपने प्रगतिशील आलोचना का परिचय देने के लिए जनता के सामने आलोचक का एक्सरे फोटो पेश कर दे तो जनता क्या स्वयम् आलोचक भी अपने आपको शायद नही पहचान पायेगा।

मार्क्स का विश्वास था कि सृष्टि अपने जन्मकाल से ही विकासशील रही है। इस विकास के मूल मे प्रगतिवादी और प्रतिक्रियावादी तत्त्वो का पारस्परिक सघर्ष कार्य करता रहा है। जैसे-जैसे प्रगतिवादी तत्त्वो की विजय होती है, वैसे ही वैसे ससार भी निरन्तर विकसित होता है। मार्क्स ने संसार को केवल समझना ही नही चाहा था, बल्कि मार्क्स तो दुनिया को ही बदल डालना चाहता था। मार्क्सवाद की दृष्टि मे प्रगतिशीलता वर्तमान शोषण, असन्तोष एव विषमता आदि के मूल कारणो

---

१. यशपाल के उपन्यासो का मूल्यॉकन – सुदर्शन मेहलोत्रा, पृ. १६५

का उन्मूलन कर विश्व का पुर्निर्माण करना चाहता है।

प्रगतिवादी जीवन की दृष्टि से और साहित्य की भाव-धारा के परिवर्तन के नियम के आग्रह से आधुनिक युग की तात्कालिक आवश्यकता है। प्रगतिवाद का एक निश्चित जीवन दर्शन है।

डॉ॰ सुधीन्द्र के शब्दो मे "प्रगतिवाद हिन्दी कविता मे वह नवीन धारा है जो जनवाद, मानववाद आदि विचारधाराओ से प्रेरित और अनुप्राणित है, कलाकार को, कवि को, अपनी कला को स्वान्त सुखाय ही न रहने देकर उसे लोक कल्याण और मगल के महान और उच्च उद्देश्य का एक उपकरण बनाना चाहिए। यहि युग के कवि का धर्म है, प्रगतिवाद का आधार यही विचार बिन्दु है।"

आधुनिकता के सन्दर्भ मे प्रगतिशीलता का यशपाल के उपन्यासो मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। १६वी शदी के उत्तरार्द्ध मे देश मे नयी जागृति आयी। उस समय पूँजीवाद के निर्मम चक्र से आर्थिक शोषण की प्रक्रिया तीव्रतर होती जा रही थी। आर्थिक आधार पर समाज तीन वर्गो मे बॅटा था, पहला वर्ग, उच्च वर्ग, दूसरा वर्ग मध्यम वर्ग एव तीसरा निम्न वर्ग था। "प्रथम उच्च वर्ग जो पूँजीपतियो और जमीदारो का वर्ग था द्वितीय मध्यवर्ग जिसमे समाज का अधिकाश शिक्षित जन समुदाय सम्मिलित था, तृतीय निम्न वर्ग जिसके अन्तर्गत किसान, मजदूर अथवा इसी स्तर के अन्य लोग थे पूँजी की चोट से सबसे अधिक पीडित समाज के निम्न तथा मध्य वर्ग ही थे वस्तुत इन वर्गो के जीवन एव मरण का प्रश्न था ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा देशी पूँजीवाद और सामन्तवाद के दोहरे-तीहरे प्रहार इन पर हो रहे थे।"[1] परन्तु मध्य वर्ग विशेषतय. सक्रिय न हो सका लेकिन निम्न वर्गीय किसान

---

१. प्रगतिवादी समीक्षा – डॉ. राम प्रसाद द्विवेदी पृ. स. ६० – ६१

एव मजदूरो ने शोषक सजा को चुनौती देने का मार्ग अपनाया जो मार्क्सवाद के विचारधारा से प्रभावित है।

सन् १६३५-३६ ई० के पूर्व सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक उथल-पुथल से होने वाली भारतीय जनमानस ही नही समस्त यूरोपीय जन मानस उद्वेलित हो चुका था उस समय साहित्य के क्षेत्र मे नित्य नये नवीन साहित्यकारो का अविर्भाव हुआ था उन्ही मे से सजग साहित्यकारो ने समाज मे नयी स्वस्थ दिशा प्रदान करने के लिए 'प्रगतिशील लेखक सघ' (प्रोग्रेसिव राइटर्स एशोसियेशन) नामक एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था की स्थापना की (जिसका प्रथम अधिवेशन पेरिस मे हुआ जिसके अध्यक्ष अग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार ई० एम० फास्टर थे। इस सम्मेलन का मूल उद्देश्य फासिज्म तथा नाजीवाद के फौलादी पखो से साहित्य और समाज की रक्षा करना था।

भारत मे प्रगतिशील लेखक सघ का प्रथम अधिवेशन १६३६ ई० मे हुआ। इसके अध्यक्ष प्रेमचन्द थे इन्होने अध्यक्षीय भाषा मे साहित्यकारो का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा "हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमे उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयो का प्रकाश हो जो हममे गति, सघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नही क्योकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[1] कला या साहित्य को प्रेमचन्द जी उद्देश्य मानते थे और उसकी सामाजिक उपयोगिता में उनका दृढ विश्वास था साहित्यकार के लक्ष्यो और कर्त्तव्यो पर विचार करते हुए उन्होने कहा-"अब उनका उद्देश्य मनोरजक, सयोग-वियोग, नायक- नायिका की कहानी मात्र का निर्माण करना नही है अपितु उन प्रश्नो को भी उठाना है जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित

---

१. **साहित्य का उद्देश्य – प्रेमचन्द, पृ. स ३६**

होते है।"[1]

इस प्रकार प्रगतिवादी साहित्य के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से अनेको अधिवेशन हुए जिसमे अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक सम्मेलन के अतिरिक्त हिन्दी के प्रगतिशील लेखको ने प्रगतिवादी विचारधारा को समाज के सामने प्रस्तुत करने मे अपनी अक्षुण्ण योगदान दिया।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक सम्मेलन की अध्यक्षता (सन् १९४७) करते हुए श्री राहुल सास्कृत्यायन ने प्रगतिवाद के वास्तविक स्वरूप की चर्चा करते हुए कहा - "प्रगतिवाद कोई सकीर्ण सम्प्रदाय नही। प्रगतिवाद का काम है प्रगतिवादी के रास्ते को खोलना, उसके पथ को प्रशस्त करना। प्रगतिवाद कलाकार की स्वतत्रता का नही, परतत्रता का शत्रु है। प्रगति जिसके रोम-रोम मे भीज गई है, प्रगति ही जिसकी प्रकृति बन गई है, वह स्वयम् सीमाओ का निर्धारण कर सकता है। उसकी सीमा अगर कोई है तो यहि कि लेखक और कलाकार की कृतियॉ प्रतिगामी शक्तियो की सहायक न बने। प्रगतिवाद कला की अवहेलना नही करता। यह तो कला और उच्च साहित्य के निर्माण मे बाधक रूढियो को हटाकर सुविधा प्रदान करता है। यह रूढिवाद और कूप मडूकता का विरोधी है।"[2]

प्रगतिशील आन्दोलन के दौरान (१९३६-४२) मे समाजवादी विचारो का सस्थान तत्कालीन प्रगतिशील लेखको मे यशपाल का नाम आता है।

सन् १९३६ मे विश्व की प्रगतिशील चेतना से प्रभावित होकर भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग ने लखनऊ मे एक अधिवेशन आयोजित किया, जिसका सभापतित्व प्रेमचन्द ने किया। उस समय भारतीय जनमानस सामान्य रूप से और बुद्धजीवी वर्ग विशेष

---

१. साहित्य का उद्देश्य – प्रेमचन्द, पृ. स ५
२. प्रगतिवादी काव्य – उमेश चन्द्र मिश्र, पृ ३९

रूप से यह अनुभव करने लगा कि प्रगतिशीलता को स्वीकारे बिना स्वाधीनता प्राप्त सम्भव नही। उस समय उपन्यासकार यशपाल १६३२ से १६३८ ई० तक वह जेल के सीखचो मे बन्द थे। जेल से छूटने के बाद यशपाल प्रगतिशील लेखक सघ के सम्पर्क मे आकर प्रगतिशील चेतना मे निखार लाए। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इन्होने अपनी लेखनी के माध्यम से प्रगतिशीलता को अपने प्रारम्भिक उपन्यासो देशद्रोही, मनुष्य के रूप, पार्टी कामरेड आदि मे परम्परावाद प्रतिक्रियावाद, जातिवाद, धार्मिक कट्टरता और सडी गली रूढियो के प्रति विद्रोह और दूसरी ओर फासिज्म का विरोध की प्रतिध्वनि एव बिम्ब स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

प्रगतिशील साहित्य नये दृष्टिकोण, नई मान्यताए एव नई विचारधारा लेकर हमारे देश मे आया, उसमे त्रुटियॉ होते हुए भी अनेक विशेषताएँ रही। इनके अलावा अनेक विदेशी साहित्यकारो मे जैसे, सुप्रसिद्ध रूसी लेखक गोर्की की रचनाओ मे बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से ही यथार्थवादिनी प्रगतिशीलता के दर्शन होते है।

प्रगतिशील, शब्द को लेकर आचार्य द्विवेदी एव श्री गगा प्रसाद पाण्डेय ने भी इस प्रगतिशील साहित्य का विरोध किया है प्रगतिशीलता का एक नया 'वाद' आज यहॉ चल पडा है। इस सम्प्रदाय के प्राणी साहित्य को प्रगतिशील बनाना चाहते हे पर मुझे तो आश्चर्य होता है कि साहित्य प्रगतिशील कब नही रहा ? क्योकि अप्रगतिशील चीज कभी, चिरकाल तक जीवित नही रह सकती। इसके अतिरिक्त साहित्य कभी कुम्हार के घडे की भॉति बढाया, बनाया नही जाता, वह तो अपने आप बनता है। वह दिमाग की उत्तेजक उत्पत्ति नही है, वरन् वह साधना से सधी तथा अनुभूति से अनुप्राणित वस्तु है, उसे ढकेलकर कोई भी प्रगति नही दी जा सकती।

प्रगतिशील लेखको ने अपनी कृतियो द्वारा समाज की जनवादी और उदारवादी परम्परा को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है। इसमे साहित्यिक न्यूनता है किन्तु भविष्य मे हो सकता है कि जीवन के प्रगतिशील मानदण्ड और कलात्मक वैभव से समन्वय स्थापित हो सके।

प्रगतिशील आलोचको के ऐसी प्रवृत्ति मे हमे स्वय उनके प्रयत्नो की सार्थकता के विषय मे आशका होने लगती है। "साहित्य मे प्रगतिवादी आन्दोलन का लक्ष्य होना चाहिए साहित्य मे प्रगति की चेतना व भावना की वृद्धि परन्तु ये आलोचक अपनी सूझ की प्रगति को कही साहित्य मे इतना आगे न बढा दे कि प्रगति की उष्णता की वृद्धि से साहित्य का सम्पूर्ण जल ही भाप बन कर उड जाए।"[१]

उक्त विचारधारा को लेकर क्रान्तिकारी साहित्यकार के रूप में यशपाल अपने उपन्यास क्षेत्र में पदार्पण करते हैं। 'सिंहावलोकन' (यशपाल की आत्मकथा) से स्पष्ट होता है कि वे गॉधी दर्शन अहिंसा आदि मे विश्वास न कर क्रान्ति मे विश्वास करते थे तथा आन्दोलनों में भाग ले कर अपनी विचारधारा को क्रियात्मक रूप देने मे भी पीछे न रहें।

स्वतंत्रता के पश्चात पूँजीपतियो के प्रति विद्रोह की भावना से ओत-प्रोत यशपाल जैसे लेखक ने मार्क्सवादी आधार को लेकर अपने साहित्य जगत् मे प्रवेश किया। यशपाल के प्रारम्भिक उपन्यास 'दादा कामरेड' में इस क्रान्ति का प्रबल रूप मिलता है। इस उपन्यास के आधार पर यशपाल पूर्णतया समर्थक है। उनके अनुसार समाज में दो वर्ग हैं एक सर्वहारा और दूसरा शोषक वर्ग। आज के वैज्ञानिक युग में पूँजीवाद ने समाज को इस वर्ग भेद को और भी अधिक तीव्र और

---

१. बरगत की बेटी के प्रथम परिचय से

विशद बना दिया है। इस दृष्टिकोण से यशपाल 'दादा कामरेड' उपन्यास को एक शाश्वत और सार्वदेशिक दर्शन के रूप मे स्वीकार करते हैं।

सर्वप्रथम रचना 'दादा कामरेड' (१६४१) मे रमेश के रूप मे उनका क्रान्तिकारी व्यक्तित्त्व अपने सम्पूर्ण तेज, रोष, उत्साह और बल के साथ जगमगा रहा है। अदालत मे फॉसी के पूर्व का कथन है "हमारा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने परिश्रम के फल पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए। एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य से, एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी से, एक देश द्वारा दूसरे देश से उसके परिश्रम का फल छीन लेना अनुचित है। अन्याय है, अपराध है। यह समाज मे निरन्तर होने वाली भयकर हिसा और डकैती है। इस हिसा और शोषण को समाप्त करना ही हमारे जीवन का उद्‌देश्य रहा है, उसी के लिए हमने प्रयत्न किया है हमे पूर्ण विश्वास है कि न्याय की यह धारणा जो कुछ व्यक्तियो के देश मे आराम के अधिकारों की रक्षा के लिए ६६६ फीसदी जनता को जीवन के अधिकारों और साधनो से वचित कर देती है, एक दिन बदलेगी और हमारा बलिदान इस प्रयत्न में सहायक होगा।"[१] इसी उद्‌देश्य को पूर्ण करने के लिए बलि के अवसर पर थी साम्राज्यवाद के यश तथा संसार से शोषण के नाश के नारे लगते हैं। प्रगतिवादी लेखक कला को आधार मानते हुए कला को कला के लिए न मानकर समाज के लिए माना है। यशपाल भी इसी विचारधारा को अपनी उपन्यास साहित्य मे आधार बनाकर.. "कला जीवन के लिए" की अभिव्यक्ति करते हैं। उनका कहना है . "कला को कला के लिए निर्लिप्त क्षेत्र में ही सीमित न रख कर मैं उसे भाव या विचारों का वाहक बनाने की चेष्टा कयो करता हूँ ? .. क्योंकि जीवन मे मेरी साध्य केवल व्यक्तिगत जीवन यापन ही नहीं बल्कि सामाजिक जीवन की पूर्णत है

---

१. दादा कामरेड – यशपाल, पृ. सं. १६४

इसलिए कला से सम्बन्ध जोडकर भी मै कला को केवल व्यक्तिगत सतोष के लिए नही समझ सकता। कला का उद्देश्य है जीवन मे पूर्णता का यत्न। बजाय इसके कि कला का यत्न बहककर पैतरे बदलकर शान्त हो जाये क्या ये अधिक अच्छा नही कि वह समाज के लिए आधार प्रस्तुत करे ?"

यशपाल ने कला जीवन के लिए इसी दृष्टिकोण का अन्त तक निर्वाह किया है। परन्तु यथार्थ का चित्रण और जीवन का साधन बना लेने पर भी उनकी कला मे छिछलापन और भद्दापन नही। उनमे सौन्दर्य है, प्रभावोत्मकता और भावो को प्रकट करने की पूर्ण क्षमता है जो अपने आपमे सराहनीय है।

प्रगतिवादी यशपाल ने स्वस्थ मानव प्रवृत्तियो को, जिनमे मुख्य क्षुधा और काम को प्रकृति रूप से अपने साहित्य मे स्थान दिया, सुन्दरकला के माध्यम से उनका यथातथ्य निरूपण किया। यही कारण है कि दादा कामरेड और पार्टी कामरेड, देशद्रोही, और दिव्या जैसे रानजीतिक और ऐतिहासिक प्राय सभी उपन्यासो मे राजनीति और रोमास का चित्रण है। उपन्यासकार यशपाल का ध्येय पाठक के हृदय मे कुत्सित भावनाओ को उद्बुद्ध करना नही वरन् यथातथ्य चित्रण द्वारा उसके प्रति सचेत और विवेकशील बनाना है। यशपाल का विचार है कि समाज अपने अनुभव और परिस्थितियो के प्रभाव मे अपनी जीवन निर्वाह के साधनो और व्यवस्था मे परिवर्तन करता जाता है। समाज की जैसी जीवन प्रणाली और व्यवस्था होती है वैसे ही समाज की विचारधारा होती है। हमारे विचार, नैतिकता, मान्यताऍ अथवा आदर्श जीवन की प्रणाली का परिणाम ही होते है। इसलिए मानव-समाज विचारधारा और आदर्श को निश्चित करने मे स्वतन्त्र है।

निष्कर्षत हम यह कह सकते है कि प्रगतिशील उपन्यासकार यशपाल ने अपने उपन्यासो मे भारतीय सस्कृति की मान्यताएँ नये दृष्टिकोण, नयी विचारधाराएँ, स्त्री जीवन मूल्यो की अवधारणा, सामाजिक व्यवस्था, वर्ग विहीन समाज की परिकल्पना, देश प्रेम आदि की भावनाओ का समन्वय यथार्थवादी धरातल मे प्रस्तुत किया है।

प्रगतिशील लेखक यशपाल ने अपने उपन्यास साहित्य द्वारा समाज की जनवादी और उदारवादी परम्परा को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है जो वर्तमान स्थिति मे मनुष्य या व्यक्ति के सामने सामाजिक उपयोगिता का समाधान करता है।

(घ.) मार्क्सवाद और यशपाल की नारी परिकल्पना

मार्क्सवाद मे 'नारी' के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण था एक स्वस्थ भावना थी। स्त्रियॉ भी पुरुषो की तरह मनुष्य हैं और उनके कन्धों पर भी समाज का उतना ही उत्तरदायित्व है जितना की पुरुषो के कन्धों पर। स्त्री जननी है। जब तक स्त्री का शारीरिक और मानसिक विकास न होगा तब तक सन्तान का पूर्ण विकास नहीं होगी। "मार्क्सवाद स्वीकार करता है, सन्तान उत्पन्न करना केवल स्त्री ही का उत्तरदायित्व नहीं बल्कि यह काम सम्पूर्ण समाज के कामो में एक महत्त्वपूर्ण काम है, मनुष्य समाज का अस्तित्व इसी पर निर्भर करता है। यह महत्त्वपूर्ण कार्य ठीक रूप से होने के लिए परिस्थितियॉ अनुकूल होनी चाहिए। स्त्री सन्तानोत्पत्ति एक उत्तरदायी स्वतन्त्र अग समझकर, अपनी इच्छा से सन्तान पैदा करे। सन्तान पैदा करने के लिए समाज की सभी स्त्रियो के लिये ऐसी परिस्थितियॉ होनी चाहिए कि वह अपना स्वास्थ्य ठीक रख सके और स्वस्थ सन्तान को जन्म दे सके।"[१]

मार्क्सवाद यह मानता है कि "स्त्री पुरुष की पूँजी नही है, उसकी भोग्या भी

---

१. मार्क्सवाद – यशपाल, पृष्ठ ८६

नही है। दोनो इस पृथ्वी पर जन्म लेकर समान अधिकार रखते है। स्त्री को माता बनने के कारण पुरुष के समक्ष आत्मसमर्पण करने की कोई आवश्यकता नही। विवाह के सम्बन्ध मे मार्क्सवाद समाज के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के विचार से पूर्ण स्वतन्त्रता देता है परन्तु उच्छृखलता और गडबड को पेशा बना लेने और इसके साथ अपनी वासना के लिए दूसरे व्यक्तियो और समाज की जीवन-व्यवस्था मे अडचन डालने को वह भयकर अपराध समझता है।"[१]

समाजवादी व्यवस्था मे स्त्री भी समाज मे बराबर का अग है। वह स्त्री का स्थान समाज के प्रत्येक क्षेत्रो मे होना मानता है। वह पुरुष की तरह एक स्वतत्र बौद्धिक इकाई और महत्त्व की समभागी है उसका अस्तित्व हर तरह स्वतत्र है उसे स्वाधीन होना है। इन्ही विचारो की पुष्टि यशपाल ने अपने समस्त कथा साहित्य मे की है।

भारतीय समाज मे चाहे वह हिन्दू अथवा मुस्लिम नारी की स्थिति हमेशा दयनीय रही है। उत्पादन पर जैसे ही पुरुष वर्ग का आधिपत्य हुआ नारी की स्थिति क्रमश गिरती गयी। समय के परिवर्तन पर भले ही स्त्री की स्थिति मे थोडा बहुत अन्तर रहा हो लेकिन उसका मूल भाव एक ही था, नारी साधन है, साध्य नही। पुरुष ने उसके स्वतत्र व्यक्तित्व के अस्तित्व को स्वीकार नही किया बल्कि बहुपत्नीत्व और सती प्रथा के प्रचलन तथा विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध लगाकर उसे और भी निरीह और परोपजीवी बना दिया। जन्म से ही स्त्री पुरुषो द्वारा घर की चहारदीवारी मे कैद कर दी गयी किन्तु उच्च वर्गीय नारियो की वासनाओ को कैद नही किया जा सका बल्कि प्रतिबन्ध ने उन्हे काम-कुण्ठाये ही दी। "सामाजिक सन्दर्भो मे देखा जाता है कि निम्नवर्गीय नारी पात्रो को भोगवादी वृत्ति या तो उनकी

---

१ मार्क्सवाद – यशपाल, ६०

आर्थिक व्यवस्था का परिणाम है या फिर एक प्रकार से उनकी ग्राम्य सस्कृति का ही एक अग है।"[1]

सभ्यता के आरम्भ से ही स्त्रियो की स्वतन्त्रता के ऊपर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये। उसे कदम-कदम पर अन्य लोगो पर आश्रित रहना पडा। स्त्री की स्वतत्रता का पक्ष मार्क्सवाद का एक मुख्य उद्देश्य रहा। मार्क्सवाद नारी के आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर देखना चाहता है। मार्क्सवाद के विचार मे-"अपने पतियो के दुराचार के अभ्यास को स्त्रियॉ इसलिए सहती आयी है क्योकि उनके आगे अपनी जीविका का और विशेषकर अपने बच्चो के भविष्य का प्रश्न था। अब यदि इन आर्थिक विचारो का अन्त हो जाये तो उससे स्त्री-पुरुषो मे समानता की स्थापना होगी।"[2] समाजवादी समाज मे नारी के लिए आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर रहना अत्यन्त आवश्यक है। स्त्री को पैदावार के साधनो मे पुरुष के समान ही भाग लेना चाहिए। समाज के पूर्ण विकास के लिए समाज के आधे भाग स्त्री का सहयोग आवश्यक है। यशपाल ने भी इसी मान्यता को आधार माना है और उनका कहना है कि समाज मे सबका बराबर का अधिकार होना चाहिए। स्त्री को घर के भीतर कैद कर के रखना केवल इसलिए कि बाहर उनकी सुरक्षा नही तो घर मे भी क्या सुरक्षा हो सकती है ? इस तरह से उनकी महत्त्वाकाक्षा को दबाना ही है। समाज मे प्रत्येक प्राणी जगत् के अपना, समाज राज्य व राष्ट्र के विकास के लिए प्रगति का अवसर प्रदान किया है तो फिर इसमे भेद के लिए स्त्री को अलग स्थान देना, उसे केवल घर की वस्तु समझना, उसके विवेक को शून्य बना देना ये सब बाते समझ से परे हैं। उन्हे केवल आर्थिक कारणो की वजह से पुरुषो की गुलामी सहनी पडती है। यशपाल की भी मान्यता यही है कि – 'स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता स्त्री का मानवी अधिकार है।

---

१ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासो मे सामती जीवन–विजय कुमार अग्रवाल पृ.स. १०८

2. "With the disappearance of the economic considerations which compelled women to tolerate the customary inffidelity of the men-the anxiety about their own livlihood and even more about the future of their children-the equality of women thus achieved will, Judging from, all previous experiences, result for more effectively". - K. Marx : F-ntels : selected works, vol-II, P. 240

आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना स्वतन्त्रता का कुछ अर्थ नही, वह ढोग मात्र है। पूँजीवादी मनोवृत्ति स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता का विरोध करके, स्त्री को अपने भोग की वस्तु बनाये रखना चाहती है।"[१] उनके विचार मे 'स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता समाजवाद की प्राप्ति और स्थापना मे सहायक होगी। इसीलिए पूँजीवादी व्यवस्था, स्त्री की गुलामी या पर्दे के आधार पर जमाई गई प्रतिष्ठा की धारणा से उसे कोमल और दयनीय बताकर उसे आर्थिक सघर्ष से दूर रखना चाहती है।'[२] यशपाल इसके पक्ष मे नही, उनके विचार मे तो समाजवादी सस्कृति मे ही नारी का अपना अस्तित्व है वह समाज मे अपनी अलग पहचान बना सकती है। स्त्री का महत्त्व केवल किसी एक ही बनकर अपना जीवन समाप्त कर लेने मे नही होना चाहिए। वह अमुक की ही कुछ न होकर स्वय की भी कुछ होती है। समाज के एक व्यक्ति के नाते समाज का महत्त्वपूर्ण अग भी बन सकती है यहॉ स्त्री को चौके और बिस्तरे के लिए उपयोगी बनाकर सुरक्षित नही रखा जाता। यशपाल की सभी नायिकाएॅ इसी आदर्श को अपना कर चलती है। वे पुरुष का दमन अथवा उसकी गुलामी स्वीकार नही कर सकती, इसीलिए 'दिव्या' उपन्यास की नारी पात्र दिव्या सामन्तवाद के प्रतीक 'रुद्रधीर' से कहती है, 'कुल वधू का सम्मान, कुल-माता का आदर और कुलमहादेवी का अधिकार आर्य पुरुष का प्रश्रय मात्र है। वह बारी का सम्मान नही उसे भोग करने वाले पराक्रमी पुरुष का सम्मान है।[3] और वह इस राज-पुरुष का आश्रय छोडकर साधारण व्यक्ति मारिश को अपना साथी चुनती है।

यशपाल ने मार्क्सवादी विचारधारा के अन्तर्गत नारी के जिस रूप की कल्पना की है उसके लिए वे समस्त रूढिबद्ध सस्कारो, नैतिक धारणाओ और विश्वास के बन्धन को कमजोर कर देना चाहते है। नारी की पराधीनता से क्षुब्ध होकर वे कह

---

१. बात–बात मे बात – यशपाल, पृ. स. ५६

२. बात–बात मे बात – यशपाल, पृ. स ५६

३. दिव्या – यशपाल, पृ. स. २१५

उठते है "क्या नारी अपनी वासनापूर्ति तथा सम्पत्ति के लिए औरस उत्तराधिकारी प्राप्त करने वाले को पति मानकर पतिव्रत धर्म का पालन करती रहे ? क्या आत्मरक्षा आत्मनिर्भरता, जो मानव धर्म हैं, वे नारी के धर्म नही है ?"[१]

नारी के लिए आत्मनिर्भरता की पक्षधरता (वकालत) यशपाल दृढता से करते हैं। नारी शिक्षा, नारी अधिकार के प्रति वे सदैव से सजग रहें। उनकी मान्यता थी कि जीवन मे हर कोई अपने मस्तिष्क से स्वतंत्र है यदि स्त्री अपने प्रति होने वाले अन्याय को चुपचाप सहती रहेगी तो उसका शोषण युगो-युगो तक होता रहेगा। वह अन्याय सही नहीं बल्कि उसके प्रति आवाज उठाये। आत्मनिर्भर नारी अपने प्रति शोषण नही सह सकती क्योकि उसे अपने ऊपर दृढ विश्वास रहता है कि वह अपने जीवन का भार स्वयं उठा सकती है। यशपाल की दृष्टि मे, . "क्योकि वह ईमानदार है और उसमे आत्मनिर्भरता का साहस और विश्वास है वह जानती थी कि वह 'पुरी' से तृप्ति, सन्तोष और प्रसन्नता नही पा सकती थी, न उसे दे सकती थी, .. पुरी पुरुषत्व की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए छल कर रहा था. कनक ऐसे छल में सहयोग नहीं देना चाहती थी। यदि कनक चाहती तो कानूनन पुरी से बेटी के लिए खर्च ले सकती थी। उसने ऐसा भी नहीं किया क्योंकि उसमें आत्म विश्वास था और आत्मनिर्भर रहना चाहती थी।"[२]

यशपाल का विचार था कि आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहने पर नारी सामाजिक बन्धनों के संकुचित दायरे में बन्द दाम्पत्य-जीवन की कृत्रिम नैतिकता एवं अत्याचार और दमन के विरूद्ध तीव्र कदम उठा सकती वह अन्याय के प्रति लड सकती है, व्यक्तित्व की ओर अधिक निखार कर समाज की प्रगति मे सहायक सिद्ध हो सकती है। समाज में बुद्धिजीवी वर्ग मे अपने विचारो को रख कर समाज के विकास मे एक

---

१. अप्सरा का श्राप – यशपाल, पृ. सं. २१५

२. झूठा–सच (देश का भविष्य–२) – यशपाल, ३२५

नयी किरण दे सकती है। यशपाल नारी को आर्थिक रूप से ही नही पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर और स्वतन्त्र देखने के पक्षपाती है। उनके विचार मे अमीर श्रेणी की स्त्रियो को धन की कमी न होने पर भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नही होती। वह घर मे फूलो मे लगे उस गुलदस्ते के समान है जो शोभा तो बढा सकते है लेकिन उपयोग मे नही लाये जा सकते। ऐसी स्त्रियों का अपना अलग अस्तित्व कुछ भी नही होता। ' अमीर श्रेणी की औरते पुरुष के मनबहलाव और सन्तान प्रसव करने के अतिरिक्त कुछ नही करती। इस समाज की स्त्रियॉ यदि छतरी और बटुआ हाथ मे लेकर मनमानी साडियॉ और जेवर खरीदने की स्वतन्त्रता पा जाती हैं तो वे अपने आपको स्वतत्र समझती है परन्तु स्वतन्त्रता से अपना घर बसाना चाहे या स्वतन्त्रता से सन्तान पैदा करना चाहे तो क्या वे कर सकती है।"[१] यशपाल के विचारो मे यह नारी स्वतन्त्रता नहीं पराधीनता है। पराधीन नारी को पैसे खर्च करने की स्वतंत्रता हो सकती है लेकिन स्वय निर्णय लेने की स्वतन्त्रता नही होती। नारी आर्थिक रूप आत्मनिर्भर रहने के साथ-साथ अन्य अधिकारो की भी स्वतत्रता उसे होने चाहिए। उसे स्वय निर्णय का अधिकार भी होना चाहिए। यशपाल की दृष्टि में नारी को स्वतत्रता देने का अभिप्राय यह नही कि नारीत्व का दुरूपयोग किया जाये बल्कि नारी मे स्वय इतना साहस और सुबुद्धि होनी चाहिए कि वह सही-गलत का निर्णय कर सके। साथ ही उसे प्रेम करने का भी अधिकार और स्वतंत्रता होनी चाहिए।.. "पुरूष स्त्री को स्वयं प्रेम करने का अधिकार नही देना चाहता। इसका अर्थ है हमारा समाज स्त्री-पुरुष के प्रेम मे विश्वास नहीं करता। जो समाज स्त्री को स्वतः प्रेम करने का अधिकार नहीं देना चाहता, वह स्त्री को सामन्ती युग की तरह केवल भोग और उपयोग की वस्तु नही समझता।"[२]

---

१. दादा कामरेड – यशपाल, पृ. सं. १०१–१०२
२. जग का मुजरा – यशपाल, पृ. सं. ४७

यशपाल नारी को भोग और उपयोग की वस्तु नही बनाना चाहते। यही कारण है कि उनके साहित्य मे नारियॉ अपनी स्वतत्रता और आजादी के लिए परम्परागत मान्यताओ को तोडते हुए एक नवीन आधुनिक विचारधारा के लिए हुए दिखलायी देती है। यशपाल नही चाहते कि "स्त्री को देवी या माता का स्थान देकर गृह-मन्दिर में प्रतिष्ठित कर दिया जाए जिससे कि मन्दिर का मालिक पुजारी पुरुष उस पर अपना अधिकार और शासन चलाता रहे।"[१] नारी की ये स्वतत्रता के व्यक्तित्व के विकास मे बाधक सिद्ध होती है। वह अपने मार्ग मे कोई भी रूकावट सामने नही आने देना चाहती है।

नारी सम्बन्धी स्वतन्त्रता तथा समानाधिकार की बात यशपाल रूस की समाजवादी दृष्टि से कहते हैं। यशपाल का कहना है कि – "यहॉ पुरुष के प्राप्य सभी अवसर नारी के लिए भी सुलभ हैं। जैसे पुरुष बाप बनने के साथ ही प्रोफेसर, इजीनियर और डॉक्टर बन सकते हैं, वैसे ही रूस में नारी मॉ बनने के साथ ही समाज के एक व्यक्ति के नाते समाज का महत्त्वपूर्ण अग भी बन सकती है। .. वहॉ स्त्रियो को केवल चौके और बिस्तरों के लिए उपयोगी बनाकर सुरक्षित नहीं रखा जाता।"[२]

नारी के लिए ही.. "पतिव्रत धर्म-अर्थात् स्त्री का एक पुरुष से सम्बन्ध रखना-स्त्री का सबसे बडा धर्म बताया गया ताकि व्यक्तिगत सम्पत्ति के आधार पर बना हुआ परिवार और समाज तहस-नहस न हो जाये।.. इस कारण पुरुष और समाज के हाथ मे जितने भी साधन धर्म, रीति-रिवाज आदि के रूप में थे, उनसे स्त्री को पुरुष के आधीन होकर चलने की शिक्षा दी गयी।"[३]

सारे नियम स्त्री के क्षेत्र में डालकर पुरुष वर्ग उस पर मनमानी करता है। नारी की स्वतन्त्रता तथा समानाधिकार के इस युग में यशपाल नारी के आदर्श 'सती'

---

१. चक्कर क्लब – यशपाल, पृ. सं. ६७

२. बात बात में बात – यशपाल, पृ. सं. ५१

३. मार्क्सवाद – यशपाल, पृ. सं. ८१

रूप की कल्पना करना भी व्यर्थ समझते हैं। उनकी दृष्टि मे 'सती प्रथा' घोर अत्याचार तथा भीषण अन्याय का ही प्रतीक है। "मैं आज पति के वियोग मे, पत्नी के चित्तारोहण मे सौन्दर्य नही विभीषिका ही अनुभव करता हूँ। मैं उस आदर्श को सुन्दर बनाने का प्रयत्न नही कर सकता। मैं अतीत मे भी किसी पति को पत्नी के वियोग में चिता पर चढने के लिए व्याकुल होने के उदाहरण नही देख पाता तो स्त्री-पुरुषों की समता के विचार के इस युग मे मुझे पति के सती होने के आदर्श के प्रति रागात्मक सहानुभूति उत्पन्न करना भीषण अन्याय ही जान पडता है।"[१] नारी विषयक इसी दृष्टिकोण की अभिव्यंजना उन्होने अपने उपन्यासो मे की है। "कोई अन्य व्यक्ति समझेगा कि वह वैधव्य और अकेलेपन मे बिलखती, बिसूरती रहती तो तुम्हे संतोष होता। जीवन की असह्य यत्रणा से आत्म-हत्या की इच्छा मे तडपती रहती तो तुम उससे सहानुभूति रख सकती थी। वह सुरक्षा और सतोष अनुभव कर रही है, यह सुनकर तुम क्षुब्ध हो रही हो।"[२] 'बारह घण्टे' की विनी का अपने जीवन निर्वाह के लिए फेंटम के साथ रहने का निर्णय इसी तथ्य की पुष्टि करता है।

'यशपाल आधुनिक समाज और परिस्थितियो के अनुकूल नारी को पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर देखना चाहते। उनकी दृष्टि में नारी भी मनुष्य है, उसका भी अपना व्यक्तित्व है, अपनी आकांक्षायें हैं, उसे पूर्ण रूप से पारिवारिक या सामाजिक बन्धनो में बांधकर नहीं रखा जा सकता। उसे पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए, उसे भी समाज में सक्रिय अंग के रूप में देखना चाहिए। उसके लिए सबसे अधिक आवश्यक है उसकी आर्थिक आत्मनिर्भरता जो उसे पुरुष-समाज के सम्मुख पगु और निर्बल बनाने की अपेक्षा आत्मविश्वास की भावना और आत्मनिर्णय के अधिकार से पुष्ट

---

१. ओ भैरवी – यशपाल, भूमिका से।

२. बारह घण्टे – यशपाल, १०६

करती है।"[1]

यशपाल के विचार मे इन्ही आदर्शो को लेकर नारियॉ जीवन में जूझती दिखायी देती हैं। इतना ही नही उनकी नारियॉ आधुनिक समय मे बिल्कुल खरी उतरती है। इतना ही नही, उनकी नारी विषयक विचारधारा इसीलिए परम्परागत न होकर आधुनिक है, जो आज के प्रगतिशील युग मे राजनीति क्षेत्र मे पदार्पण कर गृहस्थ की सकीर्ण परिधि से निकल खुली हवा मे सास लेते हैं इतना ही नही उन्होने नारी को आगे बढने के लिए प्रोत्साहित किया और मानो पद निर्देशक करते हुए परम्परागत रूढियों के सकीर्ण दायरे को तोडकर बाहर आने का प्रशस्त मार्ग दिखाया।

यशपाल ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार प्रेम को भी द्वन्द्वात्मक दृष्टि से देखा " और सब चीजो की तरह जीवन में प्रेम की गति भी द्वन्द्वात्मक है। यदि प्रेम बिल्कुल छिछला रहे तो वह असंयत वासना मात्र बन जाता है और यदि जीवन मे प्रेम या आकर्षण का संयम विवेक से न हो तो वह जीवन के लिए घातक भी हो सकता है।"[2] ऐसा ही रूप यशपाल ने 'मनुष्य के रूप' उपन्यास में मनोरमा और सुतली वाला के प्रेम विवाह से स्पष्ट किया है, मनोरमा विवेक और बुद्धि से विचार न करके केवल आवेश में आकर सुतलीवाला से विवाह कर लेती है परन्तु अन्त में उसे सुतलीवाला से उपेक्षा सहन करनी पडती है। .. "घर पर सुतलीवाला और मनोरमा मे बातचीत बन्द हो गयी। खाने का समय दोनों का अलग-अलग हो गया। १५वें दिन सुतलीवाला बैरे के पास उसके, लिए लिफाफा छोड जाता है, जिसमें सौ रुपये थे।"[3] दोनो में टकरार बढता ही जाता है जिसका अन्त मनोरमा सम्बन्धविच्छेद करके पाती है। वह जीवन मे अन्याय सहन करने की विरोधी है।

---

१. यशपाल, व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ. सरोज गुप्त, पृ. स. ६५

२. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृ. ८०।

३. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृ. सं. २२७

यशपाल जी ने प्रेम को जीवन की उदात्त और सबसे ऊँची भावना तो माना है तथा वह भी कहा है कि इस भावना के अपूर्ण रहने पर व्यक्ति का जीवन व्यर्थ और बोझ बन जाता है। परन्तु यह नही कहा कि यह प्रेम जीवन मे पार्थिव या इन्द्रियजन्य प्रेम के अतिरिक्त भी कोई वस्तु है अर्थात् वे प्रेमभावना को आत्मिक अथवा आध्यात्मिक भावना मानने को तैयार नही। आधुनिक काल में ही नही प्राचीन काल की सावित्री सत्यवान की पौराणिक गाथा के माध्यम से तर्क के आधार पर उस प्रेम को भी इन्द्रियजन्य तथा पार्थिव माना है। "सावित्री ने सत्यवान के अपने प्रेम की पूरी कर सकने के लिए यम से आग्रह किया। इसमे ऐसे प्राण डाल दो कि सौ पुत्र उत्पन्न कर सकने तक जवान बना रहे क्या आत्मिक प्रेम से सौ पुत्र हो जायेगे ? सावित्री की निष्ठा मे आत्मिक प्रेम की कल्पना थी या पार्थिव आवश्यकता।"[१] इसी आधार पर यशपाल जी ने प्रेम को पार्थिव और इन्द्रियजन्य आकर्षण बताया है न कि अतीन्द्रिय। इनकी दृष्टि मे "आध्यात्मिक प्रेम नपुसक प्रेम है, वासना को पूरी करने की जब सामर्थ्य न हो तो मन को बहलाने का तरीका है, स्वयम् जो कुछ कर सकने का अवसर नही, भगवान के नाम से उसकी कल्पना कर मन को बहला दिया।"[२] मे यशपाल विश्वास नही करते। "प्रेम जीवन की मांग होता है और प्रेम पात्र उस मार्ग को पूरा करता है। प्रेम पात्र कोई भी व्यक्ति हो सकता है। प्रेम पात्र यह व्यक्ति प्रेम का उन्मेष पूरा कर सकने के कारण ही अच्छा या प्यारा लगता है।[३]

अत स्पष्ट है कि यशपाल की प्रेम-सम्बन्धी भावना नितान्त आधुनिक है। परम्परागत प्रचलित मान्यताओ को उन्होने तर्क के आधार पर निर्मूल सिद्ध कर दिया है, समाज मे जिस विषमता तथा प्रवंचना ने नारी को पकड रखा है, उसके

---

१. बारह घटे – यशपाल, पृ॰ १०६
२. चक्कर क्लब – यशपाल पृ॰ १६
३. बारह घटे – यशपाल, पृ॰ १०१

प्रति आज की नारी मे उसको मचलती भावनाओ मे विस्फोट विद्रोह हैं। "यही आत्मनिष्ठा उन्हे स्वनिर्मित स्वालम्बन पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। उपन्यासो मे नारियो मे शैलबाला (दादा कामरेड), चन्दा (देशद्रोही), दिव्या (दिव्या) और तारा कनक (झूठा सच) इत्यादि सभी जीवन संघर्ष करते रहने के अन्त में समाज की मिथ्या मान्यताओ और लोक लाज के अपार सागर से बाहर कूद पडने को विवश हो जाती है।"[१]

भारतीय समाज मे स्त्री सदैव शक्ति का प्रतीक रही है उसे ही भविष्य का निर्माता कहा गया है। 'जागरूक होती महिलाओ ने यह सीख लिया है कि अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन और गोष्ठियॉ तो होती रहेगी पर अपने आस-पास की समस्याओं का समाधान आपस की छोटी सी कोशिश मे भी तलाशा जा सकता है।"[२]

आधुनिक नारियॉ अबला से सबला बनती नजर आ रही हैं। वे अपने ऊपर किसी भी प्रकार का अन्याय, बन्धन सहन नही कर सकती ये उनकी मुक्ति चेतना का सबसे बडा उदाहरण है। यशपाल के उपन्यासो मे विभिन्न नारी पात्रों का जो चित्रांकन मिलता हैं वह समाजवादी व्यवस्था पर आधारित नारी की स्वतन्त्रता का पक्षधर है। "नारी यह दुनियॉ तुम्हारी है। इस दुनियॉ मे तुम अपनी इच्छा से जिओ। यह दुनियॉ यदि एक नदी हैं, तुम उस पूरी नदी में तैरती रहो। यह दुनियॉ यदि एक आकाश है, तुम पूरे आकाश में विचरण करती फिरो। जीवन यदि तुम्हारा है, जो दरअसल तुम्हारा ही है, तो वह जीवन तुम जैसी इच्छा हो, जिओ। नारी तुम अपना हक खुद हासिल करो।.. यह देखो, मैं सारे दुःखों को झाडकर खडी हो गयी हूँ।.

---

१. यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन – सुदर्शन मेलहोत्रा।

२. अमर उजाला, अबला से सबला बनती महिलाएं – लेख अलका आर्य, ७ मई, २०००

मैने किसी अश्लीलता, किसी भी तरह की अस्वस्थता के साथ समझौता नही किया।"[1]

इस प्रकार यशपाल ने अपने कथा साहित्य मे नारी विषयक दृष्टिकोण को आधुनिकता के रूप मे अभिव्यजित किया है। जो नारी के प्रगति के मार्ग मे विकासोन्मुख होते है।

---

१. औरत के हक मे – तसलीमा नसरीन, पृ. सं॰ १२७ वाणी प्रकाशन, प्रथम सस्करण, १९९४

तीसरा अध्याय

उपन्यासों में विशिष्ट नारी पात्रों का आधुनिकता के स्वरुप का अनुशीलन :-

क. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नारी के पारम्परिक आयाम

हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द ने जिस विचारधारा की पृष्ठभूमि समाज के लिए तैयार की थी वह समानता सन् १६०५ ई० से सन् १६३६ ई० तक विद्यमान रही। प्रेमचन्द के जाते-जाते ही हिन्दी उपन्यास ने एक नया और स्पष्ट मोड लिया। सामान्य जन-जीवन की दिन-प्रतिदिन की घटनाओ से उपन्यास अलग होता गया उसका झुकाव मनुष्य के मन स्थिति की सम्पूर्ण प्रक्रियाओ के उद्घाटन की ओर एव आन्तरिक सम्भावनाओ की ओर होता गया।

प्रेमचन्द ने जिस सशक्त परम्परा का नेतृत्व किया था वह आगे गतिशील रही। सन् १६३६ के बाद हिन्दी उपन्यास का मुख्य विषय धन-लालसा और यौन भुभुक्षा रहा है यही दो कथा-वस्तु के आधार हैं जिन पर उपन्यास खोलते ही दृष्टि पडती है प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासो में नारी के विवाहोत्तर जीवन की समस्याओं का मुख्य रूप से वर्णन हुआ है। यद्यपि इस काल मे जीवन के प्रत्येक पहलुओ मे स्त्री पुरुष की समानता की भावना बदले हुए समाज मे फैल चुक थी। फिर भी उपन्यासकारो ने अनुभव किया कि भारतीय स्त्री पढ लिखकर भी अपनी आजादी तथा मानवीय अधिकारो के लिए व्याकुल होने पर भी अपने सरक्षक से वे अधिकार नही पाती जो वह स्वतत्र ले लेता है।

स्त्री की सबसे प्रमुख विडम्बना यह है कि प्रत्येक अवस्थाओ मे उसे पुरुष संरक्षण की अनुभूति समाज द्वारा दिलायी जाती है। बाल्यावस्था मे वह पिता की सरक्षिता मे पली होती है, यौवनावस्था मे भाई का सरक्षक उस पर हावी होता है फिर उसे सात फेरो के बन्धन मे बधकर आजीवन पति की सरक्षिता मे जीवन व्यतीत करना होता है और वृद्धावस्था मे पुत्र की सरक्षिता मे जीवन की सध्या का अन्त हो जाता है। इसलिए इस युग के प्राय सभी उपन्यासो मे पुरुष द्वारा नारी के शोषण की समस्या का चित्रण मुख्य रूप से हुआ है। अपने विकसित व्यक्तित्व के कारण नारी अब पुरुष के शोषण व सरक्षिता को सहज रूप मे स्वीकार नही कर पाती। वह अब मौन रह कर अत्याचारो को नहीं सह सकती बल्कि उसका खुलकर विरोध करती है। अत विकसित अहम् युगल की टकराहट के दाम्पत्य जीवन में विसगतियॉ उत्पन्न होने लग गयी। जिनका उपन्यासो मे चित्रण होना अनिवार्य था। दूसरी ओर नारी के इसी व्यक्तित्व विकास के कारण उसकी रुचि और भावना का महत्त्व बढ गया और समाज एव साहित्य में घर-बाहर अथवा पर पुरुष के प्रति प्रेम की समस्या व्यापक रूप मे खडी हुई।

प्रेमचन्द युग मे नारी का व्यक्तित्व अपेक्षाकृत कम विकसित होने के कारण नारी का प्रेम भी प्राय. परम्परागत मार्ग पर ही विकसित होता था। वह अत्याचारो को सहती थी, घुटती थी और अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देती थी। दोषारोपण फिर भी उनके ऊपर होता था। बदलते युग में नारी की इन समस्याओं ने एक नवीन मोड लिया और इसके पश्चात् हिन्दी उपन्यासो में जो चित्रण हुआ। वह जीवन का मुख्य अंग बना।

प्रेमचन्दोत्तर युग मे जो मुख्य प्रभाव नारी पर पडा, वे दो नवीन विचारधाराओ के कारण पडा। पहला प्रभाव मार्क्स की विचारधारा और फ्रायड का मनोविश्लेषण। "मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार समाज व्यक्तियो और परिवारो का समूह है। परिवार मे स्त्री-पुरुष दोनो की अहम भूमिका निहित है, समाज इन्ही दो पहलुओ से विकसित होता है। फिर क्यो पुरुष कमाएँ, स्त्री खाएँ, जब दोनो का महत्त्व समान है तो स्त्री को भी अपने विचारो को समाज में लाने का पूरा अवसर मिलना चाहिए।"[१] इन्ही विचारो के फलस्वरूप स्त्री घर की चहारदीवारी से बाहर निकलकर समाज के बहुयामी क्षेत्रो मे प्रवेश किया। आज ऐसा कोई भी क्षेत्र अछूता नही, जहॉ नारी ने कदम न रखा हो यही विचारधारा फ्रायड के मनो- विश्लेषणवाद मे दिखायी देती हैं। अन्तर केवल इतना है कि "फ्रायड के अनुसार मनुष्य के अन्दर मुख्य रूप से काम-भावनाओ को महत्त्व देते हुए मनुष्य के अवचेतन मन मे पडी दमित कामवासनाओ के औचित्य की मुख्य एव गौण मन स्थिति का विश्लेषण करता है।"[२]

इन्हीं विचारधाराओ के फलस्वरूप पूँजीवाद समाज व्यवस्था मे दो वर्ग होते हैं एक शोषक तथा दूसरा शोषित। इन दो वर्गो में आपस में संघर्ष चलता रहता है। नारी शोषित है और पुरुष शोषक। समाज की उन्नति एव कल्याण के लिए नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता एव उसके जीवन का विकास अत्यन्त आवश्यक है। स्त्रियॉ भी पुरुषों के ही समान मनुष्य है समाज की उन्नति बिना स्त्री के सहयोग से पूर्ण नही हो सकती।

नारी मुक्ति के दिग्दर्शक जॉन स्टुअर्ट–मिल ने सन् १८५६ ई॰ में अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "सब्जेक्ट आफ वुमन" मे नारी स्वतंत्रता का प्रतिपादन किया था।

---

१. मार्क्सवाद – यशपाल, पृष्ठ संख्या – ७६

२. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद – डॉ॰ त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ सं.–३०

जिसको पढकर उस समय की पुराण पथियो मे खलबली मच गयी किन्तु मार्क्स-एगेल्स ने पहली बार नारी सम्बन्धो का ऐतिहासिक विश्लेषण किया और उन परिस्थितियो और सामाजिक कारणो का उपाहस किया जिनके कारण समाज मे नारी अपने सम्मान और स्वतन्त्रता से वचित हो गयी। एगेल्स ने कहा जिसका उत्पादन के साधनो मे अधिकार होगा समाज मे उसी का सम्मान होगा, उसी के हाथ मे सत्ता होगी। उन्होने कहा नारी की मुक्ति तभी सम्भव हो सकती है जब वह सामाजिक स्तर पर उत्पादन के योग्य हो। यही कारण है कि मार्क्स के अनुयायियो ने नारी को घर से बाहर लाकर सामाजिक स्तर पर कार्य करने एव सामाजिक समानता प्राप्त करने पर बहुत बल दिया।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य मे नारी की अनेक सामाजिक समस्याओ पर भी, तर्क अकन प्रस्तुत किया है। इन समस्याओं मे जैसे वेश्या समस्याओं मे नारी की अतिसोचनीय स्थिति पर हमारा समाज प्रश्न चिह्न लगाता है यदि हम वेश्याओ के प्रति यह भाव रखे कि वे हमारी ही माताएँ एव बहने हैं जो वेश्या बन गयी हैं तो कभी भी यह दूषित कोढ जिन्दा रह ही नही सकता। वास्तव में वेश्याएँ जन्म से वेश्या नहीं होती बल्कि सामाजिक एव आर्थिक परिस्थितियों द्वारा बनायी जाती है। दूसरी मुख्य समस्याओं के अन्तर्गत विधवा समस्या है। हिन्दी उपन्यासो के अन्दर यह प्रेरणा आर्य समाज के द्वारा आयी। प्रेमचन्द युग में इन प्रथाओं के कुपरिणाम का कारुणिक चित्र प्रभूत मात्रा मे मिल जाता है परन्तु प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों मे यह समस्या पुनःविवाह का प्रतिपादन करती है।

नारी की अन्य समस्याओं में वृद्ध विवाह, बाल विवाह, दहेज, वेश्यागमन तथा अनमेल विवाह आदि कुरीतियो हिन्दी उपन्यासकारो के मुख्य विषय बन गये।

जिनका उत्तर प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासकारो मे मिलता है उन्होंने नारी के अबला रूप को नही बल्कि सबला रूप का प्रतिपादन किया।"[1]

निष्कर्षत हम यह कह सकते हैं कि प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य मे नारी की उठती मनोदशा एवं मनोविचारो को एक नया आयाम देखने को मिलता है, जो आधुनिकवाद की ओर इगित करता है।

ख. आधुनिकतावाद की बोधगम्यता

आधुनिकता अग्रेजी के (माडर्निटी) का हिन्दी रूपान्तरण है, आधुनिकता एक जटिल प्रक्रिया है जो विश्व साहित्य के अन्तर्गत विवादाग्रस्त बनी हुई है। वर्तमान युग मे सर्वत्र परिवर्तनाकांक्षी प्रवृत्तियो का उद्‌भव एव विकास हुआ है अर्थात् आधुनिकता मे ठहराव एवं स्थिरता के स्थान पर निरन्तर बदलाव ही इसे आधुनिकतावाद की ओर ले जाते हैं।

आधुनिकता के मूल मे यह प्रश्न है कि ... क्या आधुनिकता का सारा अधिकार पाश्चात्य विचार को एवं उनके अनुयायियों के ही हाथ मे है। क्या हम जो कुछ सोचते, लिखते हैं, पढते हैं उसका आधुनिकता से कोई सम्बन्ध नही है। हॉ शायद नही है क्योकि अभी हम इतने पिछडे हुए हैं कि अभी हमे आधुनिक नही माना जा सकता न तो हमारा देश और न ही उसका साहित्य आधुनिक बना है। यहॉ पर ये विचार उठना स्वाभाविक हो जाता है कि हम किस आधुनिकता की बात कर रहे हैं। इतिहास साक्षी है कि हम पुरातन बेड़ियॉ तोड चुके हैं नये विचारो के फलस्वरूप हमारा साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा। आज न रामायण की सीता अपने ऊपर चारित्रिक दोष स्वीकार करती है और न ही वह बिना जाने अपना दोष सुनकर

---

१. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद – डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ सं. १३५

निकल जाती है और न ही कोई अहिल्या पत्थर की बुत बनती है। बिना अपने ऊपर दोषारोपण जाने वह अपने आप को दोषी नही मानती यदि हम ईमानदारी से सोचे तो यह सत्य प्रतीत होगा कि आधुनिकता के तथाकथित पुरोधा जिस दिखावटी मुखौटे को पहनकर भारत रूपी नवोदित शिशु को सजाना चाहते हैं वह उसके लिए सौन्दर्य का साधन बनने के बजाय असहाय बोझ बनता जा रहा है।

हम पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण मे अपनी भारतीय सभ्यता, सस्कृति को भूलते जा रहे है। अपने आप को अति आधुनिक कहलाने की होड मे हम दूसरो का अनुकरण तो करते है लेकिन वह मात्र अपनी सभ्यता की तिलाजलि देना होता है। आशा की जा सकती है कि '२१वी शदी के अन्त तक हमारी आधुनिकता भी बढकर वैसी ही हो जायेगी जैसी आज पाश्चात्य आधुनिकता है। हमारी अपनी आधुनिकता का विकास भी बिल्कुल पाश्चात्य गतिविधियो के अन्धानुकरण के रूप मे ही होगा। इस बात की कोई गारण्टी नही हो सकती है कि हमारी उपलब्धियॉ और उनके साधन हमारे अपने हो, स्वतंत्र हों फिर हम पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण क्यों करने लगे। "वैसे आज हम विगत संस्कारो की पुरातता और अत्याधुनिक सस्कारों के बीच सघर्ष पाते हैं, जिससे अनुभव सम्प्रेक्षण मे अतिक्रमण की चेतना का प्रगल्भ मुखरित होता है यही सामाजिक सम्बन्धो की यथार्थता मे मानव के सार तत्व की प्रतिष्ठा का नवीनीकरण है।"[१]

आधुनिकता की इस अवधारणा को आधुनिक साहित्य जगत् में भी स्वीकार किया। सर्वप्रथम आधुनिकता उपन्यासो मे दृष्टिगोचर होती है। यदि हिन्दी उपन्यासों पर सरसरी नजर डाली जाय तो लगता है कि आधुनिकता की बोध की शुरूआत मुंशी प्रेमचन्द कृत गोदान (१६३४-३६) से मानी जा सकती है। इसमे हिन्दी उपन्यास

---

१. आधुनिक युग के वातायन से – अशोक कुमार गुहा, पृष्ठ स. – १६

आधुनिकता दृष्टि से नया मोड लेता है। आधुनिक प्रक्रिया के प्रशस्त मार्ग मे बौद्धिकता ने जीवन को प्रभावित ही नही किया है अपितु जीवन को स्पन्दित भी कर रहा है।

"भौतिक यथार्थ को भोगने की क्षमता और वर्तमान और भविष्य के बीच निष्कासित जैसी मन स्थिति आधुनिकता के अर्थ सन्दर्भ है। आधुनिकता वस्तुत सभ्यता की मार्मिक वेदना है। सभ्य होने की भावना मे प्रताडित व्यक्तित्व की सघर्ष स्थिति है। आधुनिकता बौद्धिक स्तर पर जीवन उसका विकासशील प्रक्रिया का रक्तचाप है और जितनी भी इस विकासशील जीवन के क्रम मे यातनाएँ हैं वे आधुनिकता का श्रेय हैं।"[१]

आधुनिक लेखक और कवि भी इन्ही अनुभूतियो और सनसनाहटो के इर्द–गिर्द चक्कर काटते है जो शहरी लोगों के भीतर जागती है।

आधुनिक उपन्यासों मे नारी को उपन्यास की अहम् भूमिका मे चित्रित किया। आज का उपन्यासकार इन्ही के माध्यम से एक नये परिवेश की अवधारणा करने में सफलता प्राप्त करता है। उपन्यासो मे नारी के प्रेम सम्बन्धी, आकर्षण, विकर्षण के बढते हुए पगचिन्हो को देखकर किसी प्रभाव विशेष की गन्ध अनुभव होने लगती है। वह पुरातन संस्कृति से हटकर फैशन परस्त और ऐश्वर्य प्रधान नारी का रूप धारण किये हुए है।

आज उपन्यासो में सेक्स प्रदर्शन, आधुनिक अस्तित्व बोध की पुष्टि करता है। यह मात्र उसमे वासना के प्रति आकर्षण निर्माण करता है तथा पुंसत्वहीन, सकल्पहीन और सुविधाकामी नायको की अवधारणा भी है। उपन्यासों की वर्णवस्तु

---

१. नये प्रतिमान, पुराने निकष – लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृष्ठ सं. – ११

पूर्ण रूप से यौन भावना ही है। आधुनिक युग का साधारण मनुष्य विशेषता नयी पीढी की मनोवृत्ति का आयाम है। उपन्यास के बढते हुए चरण मे नारी के प्रेम प्रसगो मे स्वच्छन्दता, उन्मादकता के क्षणो मे नारी के मॉसल चित्रणो तक का रूप पहना देती है। हिन्दी के उपन्यासकार नारी के रूप सौन्दर्य और आगिक भगिमा मे उलझी रहती है। आधुनिकता नारी की मासल देह का चित्रण करना ही नही है लेकिन हमारा बदलता समाज, चलचित्रो, पत्र-पत्रिकाओ, विभिन्न, दूरदर्शन चैनलो द्वारा इसी रूप मे बोध कराता है। हमारी अपनी परम्परा मे बहुत सी चीजे ऐसी है जो हमारी थी, हमारी है पर अन्धानुकरण की दौड मे हम उन्हे भूल गये।

निष्कर्षत समग्र रूपो पर चिन्तन करते हुए हम यह कह सकते है कि आधुनिकता एक सतत् प्रवाहमान प्रक्रिया है जो अतीत के माध्यम से वर्तमान का आकलन करते हुए आगत को भी अनुरेखित करती है।

ग. प्रगतिशील उपन्यासकार यशपाल और नारी के प्रतिमान

प्रगतिशील कथाकार यशपाल का नाम उपन्यास साहित्य जगत् मे सुप्रसिद्ध है जिन्होने अपनी लेखनी के माध्यम से यथार्थवाद का सम्पुष्ट विवेचन अपने उपन्यासों मे नारी पात्रो के द्वारा अकन किया है जो आधुनिकता का बोध कराती है जैसे 'दादा कामरेड' की शैल, 'मनुष्य के रूप' की सोमा, 'देशद्रोही' की राजदुलारी, 'झूठा सच' की तारा, कनक, 'बारह घटे' की बिनी, 'अप्सरा के श्राप' की मेनका आदि उल्लेखनीय नारी पात्र है जिनके माध्यम से उपन्यासकार यशपाल ने अपने प्रगतिशील विचारधारा का परिचय दिया।

यशपाल का सम्पूर्ण साहित्य रूढिवादी परम्पराओ को तोडता हुआ जनमानस पर विजय की घोषणा करता है तथा भारतीय नारी की समर्थक जीवन मे नयी दिशा प्रदान करने की ओर सकेत करता है। यशपाल नारी स्वतन्त्रता के पक्षधर है। वे नारी की समस्या के मूल मे उसकी आर्थिक परतन्त्रता को स्वीकारते है। उन्होने विवाह और परिवार के सम्बन्ध मे भी अपनी कृतियो के माध्यम से मार्क्सवादी विचारधाराओ मे मूर्त रूप देने का प्रयत्न किया है। यशपाल का आग्रह प्रेम विवाह और परिवार के प्रति इतना सबल है कि उनके औपन्यासिक पात्र प्रवृत्ति से विवाह विरोधी है। वे जानबूझकर अनजाने मे विवाह से कतराते है और यदि वैवाहिक बन्धन मे पड जाते है तो उसे तोड फेकने के लिए छतपटाते है। जैसे झूठा-सच की कनक, मनुष्य के रूप की मनोरमा आदि द्रष्टव्य है। इनके उपन्यास साहित्य मे अनैतिक मूल्यो सामाजिक व्यवस्थाओ का विरोध मिलता है जो स्वस्थ समाज के विकास मे बाधक है। भारत मे क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता आन्दोलन चित्रण किया है जो एक द्रष्टा और सहयोगी के चरित्र का अकन भी करता है। "यशपाल जी के विचारो मे राजनीतिक आवेश नहीं है बल्कि है एक मर्म गहराई। उनमे प्रभाव के नाम पर 'एमोशनल एटैचमेट नही है आज जबकि इसी का बोलबाला है। यही कारण है कि हिन्दी उपन्यास पाठको मे वे अत्यन्त प्रिय है।"[१]

हिन्दी उपन्यासकारो मे यशपाल एक नवीन नारी विषयक विचारो को लेकर मजबूत कडी के रूप मे स्वीकार किये जाते है। ये रति स्वतन्त्र के प्रबल समर्थक है। इसके लिए वे विवाह जैसे पवित्र सस्कार को भी नही मानते उनका विचारणीय सोच है कि जब स्त्री को किसी की बनकर ही रहना है तो नारी स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नही। प्राय उनके सभी उपन्यासो मे नारी स्वाधीनता को इसी विचार के

---

१ मासिक वीणा, फरवरी १६४६ ई०

अन्तर्गत निरूपित किया है। "स्त्री का समाज मे स्थान स्त्री स्वातन्त्र्य, स्त्री शिक्षा, प्रेम विषयक दृष्टिकोण आदि विषयो पर यशपाल जी का मत आरम्भ से अन्त तक एक जैसा है।"[१] इनके विचारो मे नारी चरित्रों में स्त्री स्वातन्त्र्य का सघर्ष अपेक्षाकृत अधिक तीव्र देखा जा सकता है। उनके उपन्यासो की नारियॉ प्राय अभिजात्य वर्ग तथा मध्यवर्ग की है इनमे से अधिकाश तो कालेज की छात्राऍ हैं जो राजनीतिक चेतना सम्पन्न है और साम्यवादी पार्टी का कार्य करती हैं। यशपाल के नारी चरित्रो के सामने दोहरा सघर्ष है। पहला एक तो उन्हे पुरानी जर्जर रूढियो से मुक्त होना है और दूसरे उन्हे पूँजीवादी शोषण तथा साम्राज्यवादी शासन को भी समाप्त करना है। इसके लिए ये नारियॉ राजनैतिक सगठनो ओर कार्यो मे खुलकर भाग लेती है। वस्तुत आधुनिक भारतीय स्त्रियो के सामने सघर्ष का रूप दोहरा था। रूढिवादी समाज से संघर्ष तथा पूँजीवादी व्यवस्था से सघर्ष। इन्ही संघर्षो के मध्य नारियो की वस्तु स्थिति का वर्णन उपन्यासकार ने किया है। मार्क्सवादी विचारधारा के होने के कारण यशपाल ने "स्त्री को केवल उपयोग और भोग की वस्तु बनाकर रखना मनुष्य के जन्म के स्त्रोत को बिगाडना है। समाज की उन्नति और वृद्धि के लिए स्त्रियों के मानसिक और शारीरिक विकास तथा समाज में स्त्रियो के समान अधिकार के लिए उन्हें भी पैदावार के कार्यो मे भाग लेकर उसका फल पाने का समान अवसर होना चाहिए।"[२] इन्ही विचारों की अभिव्यक्ति यशपाल ने अपनी नारी विषयक दृष्टिकोण मे दी है। मनुष्य के रूप मे मुख्य नायिका सोमा न जाने क्या से क्या हो जाती है पर उन सब रूपों में एक आन्तरिक साम्य है। कह सकते है कि परिस्थितियो के साथ संगति बैठा देना उसके चरित्र की विशेषता है। इसी क्रम मे झूठा सच उपन्यास में नारी की मुख्य चेतना जॉति-पॉति एव धार्मिक भेदभाव,

---

१. यशपाल के उपन्यासों में सामयिक चेतना – डॉ॰ ह. श्री. सोन, पृष्ठ सं.–१६१

२. मार्क्सवाद – यशपाल, पृष्ठ. सं. – ८४

लोकतत्र की दुर्गति, गाधीवादी सिद्धातो का खोखलापन आदि बातों का सागोपाग चित्रण इस उपन्यास की विशेषता है। दादा कामरेड की शैल भी रूढिवादिता का विरोध करती हुई दादा के साथ निकल पडती हैं जो स्वतन्त्र विचारो के परिचायक है। इस प्रकार यशपाल जी का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रगतिशील सामयिक चेतना से अद्भुत और युगीन प्रगति का द्योतक बनकर व्यक्त हुआ।

घ॰ उपन्यासों में नारी का चित्रांकन

उपन्यास की कथावस्तु का आधार स्तम्भ विभिन्न पात्रो के चारित्रिक उत्थान-पतन से होता है। चरित्र-प्रधान उपन्यासो का सारा-ताना बाना चरित्रो के आधार पर बुना जाता है विभिन्न पात्रो का चरित्र-चित्रण करना ही उपन्यासकार का प्रथम उद्देश्य रहता है। चरित्र–चित्रण के द्वारा एक और उद्देश्य को सिद्ध की जाती है। चरित्र-चित्रण के बल पर पात्र को व्यक्तित्व प्राप्त होता है। चरित्रांकन के द्वारा लेखक पात्र के व्यक्तित्व के गुप्त आन्तरिक पक्ष का उद्घाटन करता है अतएव व्यक्तित्व को पूर्णतः प्रदान करने के लिए लेखक चरित्र-चित्रण की प्रत्यक्ष विधि का आश्रय ग्रहण करता है।

यशपाल ने अपने उपन्यासो में सामाजिक पीठिका से जिन पात्रों का उदय किया है उनके माध्यम से लेखक ने सामाजिक रूढियों एवं परम्परागत मान्यताओं में जकडे और घुटन के शिकार पात्रो को प्रस्तुत किया। इन्ही सामाजिक पात्रों में कुछ ऐसे भी हैं, जो एक ओर सामाजिक रूढियों के बन्धन के कारण अनेक प्रकार की विवशताएँ अनुभव करते हैं तो दूसरी ओर उन्हे तोडकर नये जीवन मूल्य की स्थापना भी करते हैं। नैतिक सन्दर्भ में लेखक ने कुछ ऐसे पात्रों की रचना की है

जो आज के समय की परम्परागत नैतिक धारणाओ के विस्फोटक रूप को प्रकट करते हैं। इसके विपरीत यशपाल के उपन्यासो मे कुछ ऐसे पात्रों का चित्रण भी मिलता है जो नैतिक रूढियो पर आघात कर उन्हे ध्वस्त कर देने मे चरितार्थता मानते है। प्रगतिवाद के पोषक होने के कारण इन्होने अपने उपन्यासो का मुख्य विषय नारी की गतिशीलता व परिवर्तनशीलता को बनाया। इनके उपन्यासो मे नारी एक नवीन विचारधारा को प्रस्तुत करती दिखायी देती है।

अब हम लेखक के प्रत्येक उपन्यासो के विशिष्ट नारी पात्रो का चरित्र विश्लेषण प्रस्तुत करते है।

नारी पात्र

(दादा कामरेड)

शैल

'दादा कामरेड' की मुख्य नारी पात्रो में हम शैल को रख सकते हैं जो आधुनिकता की कसौटी पर खरी उतरती है। 'शैल' बदलते हुए समाज की एक नये ढग की लडकी है, पढी-लिखी व बौद्धिक स्तर पर तर्क-वितर्क करने वाली स्त्री है। घर का वातावरण भी आधुनिकता से अतिरंजित था और पिता ने भी पुत्री को पर्याप्त स्वतत्रता दे रखी थी।

शैल उपन्यासकार की एक ऐसी चरित्र सृष्टि है जिसके माध्यम से लेखक ने पूँजीवादी व्यवस्था की विसंगतियों और अन्तर्विरोधो का यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत

करने का प्रयास किया है। शैल कुछ इस तरह रहती है कि जैसे उसकी मन स्थिति पर दु:ख के बादल छाये हो। लोग सुख तो बॉट लेते हैं पर दु ख बाटने को कोई भी तत्पर नही होता। शैल इसीलिए हमेशा बाहर से प्रसन्नचित्त रहने की कोशिश करती है। शैल के जीवन मे प्रेम ही प्रेम है वह प्रेम को ही जीवन मानती है। "मेरे तो होश सम्भालने के दिन से ही मेरे जीवन मे प्रेम रहा है और शायद जीवन रहते उससे छुटकारा भी ना होगा। जब छोटी थी, अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रेम किया। समझ आने पर प्रेम का क्षेत्र भी बढा अर्थात् प्रेम को अधिक देने से उससे अधिक पाने की इच्छा होने लगी। जब वह पूरी नही हो पाती, निराशा और क्लेश होने लगता।"[१] शैल अपनी इसी इच्छा की पूर्ति के लिए सदैव तत्पर रहती है। पर उसका दर्शन खोखला है। प्रेम में जब प्राप्य की इच्छा होती है तो वह स्वयम् बन जाता है। प्रेम में होती है पवित्रता और उसके साथ ही होता है परस्पर विश्वास। पर जहॉ प्रेम मे वासना या शारीरिक सम्बन्ध की इच्छा आ जाती है वही प्रेम नीचे गिर जाता है। शैल भी एक के बाद एक से प्रेम करती है और शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित करती है। उसका पहला सम्बन्ध अपनी सहेली के भाई से होता है जो शारीरिक सम्बन्ध स्थापित होने के पश्चात् भाग चलने को कहता है। पर पिताजी का मोह "शैल को ऐसा न करने के लिए मजबूर कर देता है फिर वह उसे एक दवाई देता है जिससे कोई अनिष्ठ न हो। इस प्रकार महेन्द्र और फिर खन्ना से, हरीश से वह अपने प्रेम का विस्तार करती है। शैल जो कुछ भी करती है भारतीय समाज मे मान्य नही है इसीलिए शैल को ऐसे समाज से शिकायत है।.. "जीवन के सब मार्ग समाज में बन्द पाकर मुझे सबसे अधिक खिजलाहट समाज के प्रति होती है।"[२] शैल के जीवन में इतने अधिक लड़के पुरुष कदापि न आते, यदि हरीश जैसा

---

१. दादा कामरेड – यशपाल, पृष्ठ संख्या – ३५

२. दादा कामरेड – यशपाल, पृष्ठ संख्या – ११०

व्यक्ति जो शैल के विचारो से पूरी तरह मेल खाता है, जो नारी को पुरुष की सम्पत्ति न समझकर नारी को साथी मानता है, पहले ही उसके जीवन मे आ गया होता या फिर शैल स्वयम् तत्कालीन भारतीय जीवन मे उभरती हुयी प्रगतिशील चेतना से सम्पन्न न होता उसका चरित्र भी भारतीय सभ्यता के अनुकूल शीशे की तरह चमकता। यह सच है कि जब तक स्त्री-पुरुष मे विचारो का मेल नही बैठता तब तक स्त्री-पुरुष दोनो का ही जीवन एक अनचाही राहो मे भटकता रहता है क्योकि स्त्री-पुरुष जीवन के दो पहिए है, जो सदैव एक दूसरे के चलने से ही सुचारु रूप से जीवन की अतिम सन्ध्या तक पहुॅचते है। शैल के जीवन मे इतना अधिक उतार चढाव मात्र इसलिए आया क्योकि वह प्रगतिशील चेतना से सम्पन्न है। शैल विवाह क्यो नही करती ? इसके स्पष्ट कारण है। वह अपने आपको पुरुष के अधीन नही मानना चाहती। शैल उन लडकियो मे से है जो अपनी वासना की तृप्ति के लिए विवाह जैसी दकियानुसी परम्परा से घृणा करती है। वह जीवन मे रोज नयी ताजगी चाहती है और विवाह कर एक सीमित दायरे मे रहना शैल जैसी विचारो वाली लडकियॉ पसन्द नही करती। हरीश के साथ एक विवाद मे शैल कहती भी है "सन्तान और वश की रक्षा के अलावा और भी बहुत कुछ जीवन मे है।"[१] और वह बहुत "कुछ जीवन मे क्या है ? सिर्फ नये व्यक्तियो से रोज के सम्पर्क और उनके साथ शारीरिक सम्बन्ध, यह शैल के कृत्य स्वयम् ही सिद्ध कर देते है। शैल की सबसे बडी समस्या यह है कि वह रूढिग्रस्त सस्कारयुक्त भारतीय नारियो की भॉति वह अपने आपको किसी ऐसे पुरुष के हाथो नही सौंप सकी। जो स्त्री को मनचाहे ढग से भोगने की वस्तु और अपनी सम्पत्ति समझता हो।

---

१ दादा कामरेड – यशपाल, पृष्ठ संख्या – २२

शैल भारतीय जीवन मे आ गये नये परिवर्तनो के बीच के उभरी है। वह अपना निजी महत्त्व चाहती है। अपनी स्वतत्रता चाहती है। अपने आप पर किसी का भी रोक-टोक उसे नागवार है। शैल के माध्यम से लेखक ने आधुनिक नारी का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज मे नारी की, स्थिति हमेशा से सोचनीय रही है शैल ने उस दयनीयता को अपने जीवन मे लेशमात्र भी स्थान नही दिया।

हरीश के पूर्व शैल के जीवन मे जितने भी पुरुष आते है वे सब पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते है। नारी पर अपना अधिकार जमाने वाले, उसे अपनी निजी सम्पत्ति मानने वाले भोग की और मात्र भोग की वस्तु समझने वाले और एक ऐसी दासी बनाकर रखने वाले जिसका अपना स्वतत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व कही भी सामने नही आता। शैल इन सब मान्यताओ से अपने आप को बिल्कुल अलग रखती है। वह जीवन, यौवन का, वह स्वतत्रता का दिल खोलकर स्वागत करती है। यही कारण है कि कुछ आलोचको ने शैल की दुश्चरित्रता की ओर सकेत किया है।

स्वयम् लेखक भी उपन्यास के प्रारम्भ मे कहते है   आचरण के कुछ प्रेमियो को शैल के व्यवहार मे नग्नता दिखायी देगी। इस प्रकार का चरित्र प्रस्तुत करना वे आदर्श की दृष्टि से घृणित समझेगे। हो सकता है, शैल उनकी सहानुभूति न पा सके, परन्तु यह शैल है कौन ? दादा कामरेड की शैल स्वयम् कुछ न होकर घृणा से नाक-भौ सिकोडने वालो की अतिरिक्त, परन्तु जागरुक, सक्रिय प्रवृत्ति ही है।"[1] "इस प्रकार यशपाल ने नारी सम्बन्धी अपने इस नग्न चित्रण का दोषारोपण समाज के कतिपय नाक-भौं सिकोडने वाले अतृप्त एव जागरूक लोगो के माथे मडकर

---

१ दादा कामरेड – यशपाल (भूमिका से) पृष्ठ सख्या–८

अपने को निर्दोष सिद्ध करना चाहा है। किन्तु यशपाल का यह नग्न चित्र श्रेष्ठ साहित्य के लिए किसी भी प्रकार वाछनीय नही है।"[1] शैल जीवन भर अपने विचारो से मेल खाते व्यक्ति को खोजती रहती है और जब उसे अपने विचारो से मेल खाते हरीश मिलता है जो अनावश्यक बन्धनो से मुक्त होकर जीने और जीने दो मे विश्वास करता है। तो वह उसे अपना लेती है और इस रूप मे अपना लेती है जिसके बाद फिर उसके जीवन मे किसी के आने का प्रश्न ही नही उठता शैल के चरित्र की सबसे बडी विशेषता यही पर उजागर होती है कि वह हरीश के गर्भ को लेकर पिता को समाज की बदनामी से बचाने के लिए सहजता से घर छोड देती है और अपने पिताजी से कहती है कि "पिताजी मुझे कुछ नही चाहिए। स्त्री होने के नाते मेरा जो प्राकृतिक अधिकार है, उससे कुछ अधिक मैने नही किया है। मै मनुष्य हूँ, मनुष्य बनी रहना चाहती हूँ।"[2] वह हरीश को उसकी क्रान्ति को, उसकी निशानी के रूप मे जो उसके गर्भ मे पल रहा होता है जीवित रखना चाहती है। यही पर उसके सोच मे बदलाव आया है जो शैल मातृत्व को बोझ समझती थी। वही मातृत्व की इस निशानी को अपने भीतर समेटती दिखायी पडती है। यदि उसमे केवल सेक्स ही आनन्द का चरम उद्देश्य होता तो वह इस बार भी पहले की भाति अपने गर्भ को गिरा देती। लेकिन उसने ऐसा करना उचित नही समझा वह हरीश के लघुरूप को समाज मे फिर से लाना चाहती है।

प्रसिद्ध मार्क्सवादी राल्फ फाक्स के अनुसार समाजवादी यथार्थवादी चरित्र वही हो सकता है जिसके माध्यम से विसगतियो से भरी हुई पूँजीवादी व्यवस्था का यथार्थ चित्रण भी हो, साथ ही जो कही न कही, अपने भीतर सामाजिक दायित्वो को समझता हुआ ऐसी दिशा की ओर अग्रसर हो, जहाँ से आशापूर्ण भविष्य झाँकता

---

१. हिन्दी उपन्यासो मे नारी – डॉ॰ शैल रस्तोगी, पृष्ठ सख्या– २२३

२. दादा कामरेड – यशपाल, पृष्ठ सख्या–१३५

हो। शैल के चरित्र मे ये सारी विशेषताएँ दिखायी देती हैं। वस्तुत. शैल के इस आचरण पर परम्परावादी आलोचक कहते हैं कि यह भारतीय सस्कृति और सामाजिक मर्यादा के विरुद्ध है। पूँजीवादी, दकियानुसी, समाज मे प्रेम और उससे भी आगे बढकर शारीरिक सम्बन्ध गुप्त रूप से चाहे जितने भी किये जा सकते हैं पर, हमारा समाज इसे हमेशा अनुचित ही मानता आया है। हम चाहे जितने भी प्रगतिशील हो जाये लेकिन हमारे रूढिग्रस्त सस्कार अभी भी चारो तरफ हमे जकडे है। जिसका उदाहरण उपन्यासकार ने अन्त मे शैल को घर मे जगह न देकर दिखाया है।

हमारे समाज मे विवाह से पूर्व सन्तान प्राप्ति आज भी अनुचित माना जाता है। यही कारण है कि कुछ आलोचको की दृष्टि मे शैल का चरित्र उज्ज्वल न होकर कलकित हो गया। नारी स्वतत्र की समर्थक शैल के चरित्र के ये पक्ष जहॉ उसे एक सशक्त आधार प्रदान करते हैं वहॉ कतिपय ऐसी बाते भी हैं जो उसके चरित्र की सीमा बन गयी है परम्परागत प्रेम विवाह के विकृत स्वरूप के प्रति उसकी तीखी प्रक्रिया स्वाभाविक है किन्तु उसकी यह प्रतिक्रिया अतिवादी स्तरों तक पहुँच गयी है। लेखक ने एक साथ उसके चरित्र मे कई वैचारिक आसगतियो को गुथ दिया है। एक मार्क्सवादी लेखक होने के नाते यदि यशपाल ने उसे भी सही वैचारिक पीठिका पर नारी स्वातत्र्य की प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया होता तो शैल का चरित्र न केवल पाठक के सम्मान एवं प्रशसा का अधिकारी बनता वरन वह अपने विद्रोही रूप को भी वास्तविक सार्थकता दे पाने मे समर्थ होता। शैल अतिवादी भूमिका पर चलने वाली एक ऐसी विद्रोहिणी के रूप में दिखायी देती है जिसका सारा विद्रोह अपनी गलत समझ के कारण अर्वाछित दिशाओं में ही भटक जाता है।

"नि सन्देह ऐसे प्रसंगो मे न जाने कितने प्रगतिशील पाठकों को उत्तेजित किया होगा और शैल जैसी स्वच्छन्द 'त्यागशील' और ममतामयी अपने प्रेमी के लिए कुछ भी कर सकने वाली लडकी की तलाश मे अपना सिर फोड लिया होगा।"[1] यशपाल की कल्पनाओ का समाज वास्तव मे बहुत ही प्रगतिशील व आधुनिक रहा होगा। जहॉ पुरुष किसी नारी से नग्न होने को कहेगा और नारी उसकी विवशताओ को ध्यान मे रखते हुए उसकी इच्छा की पूर्ति करेगी. "शैल को शरीर से कपडे उतारना अपनी त्वचा उतारने के समान कठिन जान पडा, परन्तु हरीश के निराशा से सिर लटका लेने की बात सोचकर वह स्वयम् अपने ऊपर जबरदस्ती करने के लिए विवश हो गयी। मृत्यु के मुख मे फंसा हुआ, यह लडका जो बात कहता है उसकी उपेक्षा कैसे किया जाय ?"[2] उनके समाज मे ऐसा निरन्तर होगा क्योंकि काम वासना की भावना तो प्राकृतिक है और प्रत्येक मनुष्य भी 'पुरुष' किन्ही न किन्ही विवशताओ मे फॅसा रहता है, फिर प्रेमी की किसी भी इच्छा को कैसे ठुकराया जाये, प्रेम कलकित न हो जायेगा ?

यशपाल ने दादा कामरेड मे शैल के चरित्र के माध्यम से जो चित्र प्रस्तुत किया है वह आज के सन्दर्भ मे नवीन आधुनिकता का बोध कराती है जैसे शैल के अनुसार विवाह स्त्री स्वातत्र्य के मार्ग मे सबसे बडी बाधा है आज की पढी-लिखी शिक्षित नारियॉ भी विवाह जैसे संस्कार को नहीं मान रही है बल्कि स्वच्छन्द रूप से विचरण करना चाहती है और जो इस संस्कार को मान भी रही है वो वैचारिक स्तर पर सामञ्जस्य न बैठने के कारण विवाह विच्छेद भी कर रही हैं घर की चहारदिवारी से बाहर निकलने के कारण सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक क्षेत्रों मे एक से अधिक पर पुरुषो से सम्बन्ध भी स्थापित हो रहा है और सम्बन्ध स्थापित होने के

---

१. हिन्दी उपन्यासों मे नायिका की परिकल्पना – डॉ. सुरेश सिन्हा, पृ. सं. – १४५–१४६
२. दादा कामरेड – यशपाल, पृष्ठ संख्या–८८

कारण पारिवारिक कलह होने के डर से वह विवाह से भयभीत है यही कारण है कि शैल जैसी आधुनिक भारतीय नारी का चित्रण लेखक ने करके शैल के माध्यम से जो आधुनिक नारी का चित्र बहुत पहले ही (सन् १६४३ ई०) अपनी लेखनी द्वारा प्रस्तुत कर दिया था वह आज के सन्दर्भ मे बिल्कुल ठीक उतरता है।

यशोदा

यशोदा 'दादा कामरेड' की दूसरी प्रमुख नारी है शैल के चरित्र की अपेक्षा यशोदा का चरित्र उतना ही अधिक विवश पराधीन दिखाया है। शैल के चरित्र मे विचारो मे जहाँ एक ओर उन्मुक्ता और स्वतत्रता पाते है वही दूसरी ओर यशोदा का चरित्र रुढिग्रस्त मान्यताओ घर की चहारदिवारी के बीच रोता बिलखता दीख पडता है। ऐसा क्यो है कि सामाजिक मान्यताओ, पति की पराधीनता के बीच स्त्री का जीवन इतना विवश है उसमे उसका स्वयम् का व्यक्तित्व ही दब सा जाता है यशोदा के चरित्र के माध्यम से लेखक ने यही दर्शाने का प्रयत्न किया है। यशोदा अमरनाथ की सती साध्वी पत्नी है, जो एक रात हरीश को अपने घर में शरण देकर उसकी प्राण रक्षा करती है। बाद मे शैल के आग्रह से वह भी घर से बाहर निकलती है अमरनाथ की दृष्टि मे "स्त्रियो का स्थान घर के भीतर है। एक मर्यादा के भीतर रहने से काम ठीक चलता है।"[1] यशोदा अपने पति से कहती है .. "यदि आप समझते है कि स्त्रियॉ इस विश्वास के योग्य नही है कि वे घर से बाहर निकल सके तो घर मे ही उनका क्या विश्वास है ? यदि आपको मुझ पर विश्वास नहीं तो कहिए ।"[2]

---

१ दादा कामरेड – यशपाल पृष्ठ सख्या– १२४

२. दादा कामरेड – यशपाल पृष्ठ सख्या – १२५

यशोदा के जीवन मे बदलाव शैल की स्वतत्रतापरक बातो व नारी का अपना भी कुछ वजूद है, नारी अपने-आप मे भी कुछ कर सकती है, समाज मे उसका भी अपना स्थान है आदि बाते सुनकर आता है, इसके पूर्व वह घर के भीतर ही अपनी दुनिया जानती है यदि वह कुछ है तो एक भोग्या दासी अथवा अपने पति की व्यक्तिगत सम्पत्ति मात्र। प्रगतिशील चेतना से वह प्रभावित अवश्य होती है किन्तु पति की प्रताडना से अपने जीवन को स्त्री-स्वातत्र्य की ओर मोड पाने मे वह असमर्थ रहती है। उसका जीवन भीतर ही भीतर घुटता रहता है। परम्परागत मान्यताओ और आदर्शो के बोझ से दबी वह अत्यन्त सयम और शान्ति से भारतीय नारी के आदर्श का बोझ ढोती रहती है। यशोदा एक ऐसी गृहिणी के रूप मे हम सबके सामने आती है, जहॉ स्त्री ने अपना अधिकार अपने पति को सौप दिया है। अविश्वास की डोर जीवन पर्यन्त उनके साथ चलती रहती है। तभी यशोदा हरीश के बारे मे अपने पति को कुछ भी नही बताती जबकि वह उसको रात-भर अपने घर रखती है, उसको सुबह बाहर निकलने मे पूरा सहयोग देती है। उस अजनबी के लिए उसके दिल मे पूरी तरह सहानुभूति है। तभी वह आधी रात मे आये हुए शरणार्थी को न केवल शरण देती है अपितु उसके साथ एक मेहमानो जैसा व्यवहार करती है उसके लिए पानी, खाना, बिस्तर आदि की पूरी तरह व्यवस्था करती है और भीतर ही भीतर इस बात से भी भयभीत है कि कही अगर घर मे उसकी सास या पति को पता चल गया तो वह क्या जवाब देगी ? इस अविश्वास की डोर यही पर समाप्त नही होती बल्कि इतनी बढ जाती है कि पति-पत्नी के बीच का सम्बन्ध ही खत्म हो जाता है। "यशोदा कई दफे खूब रोई थी उसे केवल दु ख था, आठ बरस मे इन्होने मेरा ऐसा कौन काम देखा कि यह मुझ पर सदेह करने लगे।"[१]

---

१ दादा कामरेड – यशपाल पृष्ठ सख्या – ६२

अमरनाथ अपनी पत्नी पर अविश्वास भरी विभिन्न कल्पना करके अपना गृहस्थ जीवन स्वयम् विनष्ट करता है.. "परपुरुष से अपनी स्त्री के शारीरिक सम्बन्ध की बात सोचते ही सिर चकराकर उनकी 'ऑखों' मे खून उतर आता है। इसके बाद केवल एक ही बात दिखायी देती.. मृत्यु . यशोदा की अपनी दोनो की।"[१]

मूलत· अमरनाथ के मन में यह विचार यशोदा के घर से बाहर निकलने के कारण ही मस्तिष्क पर छा जाता है। लेखक ने शैल के चरित्र को जहॉ एक ओर इतना आधुनिक दिखाया है, वहीं दूसरी ओर यशोदा के चरित्र के माध्यम से पुरातन रूढिग्रस्त महिला का चित्र प्रस्तुत करके उसको घर के भीतर ही छटपटाते विलखते आधुनिक विचारो की सीमाकन को छूटे हुए अर्द्धविकसित नवीन समाज की ओर उन्मुख होते दिखाया है।

दादा कामरेड की अन्य नारी पात्रो मे नैनसी और फ्लोरा आती है। ये भी आधुनिक विचारो की पारितोषक है नैनसी राबर्ट की बहन है राबर्ट के मित्र हरीश की ओर उन्मुख होती है। पुरुष मित्रता से उसे कोई परहेज नही है यही कारण है कि वह हरीश को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहा लेकिन हरीश की तरफ से कोई जवाब न पाकर उसका नारी मन पूरी तरह से टूट कर बिखर जाता है।." नैनसी ने कई बार हरीश की ओर देखा परन्तु उसे अपने ध्यान मे मग्न पाया, सब ओर से उपेक्षा की चोट खाकर वह कही दूर भाग जाना चाहती थी"[२] इस तरह नैनसी अपने प्रेम की चाह हरीश में न पाने से दुखी रह जाती है।

इस उपन्यास की अन्य नारियों मे फ्लोरा का स्थान भी मुख्य है। वह राबर्ट की पत्नी है। वह एक धर्म-परायण स्त्री है। जो राबर्ट के धर्मोपदेश के कारण ही उसके

---

१. दादा कामरेड – यशपाल, पृष्ठ संख्या – ६३
२. दादा कामरेड – यशपाल; पृष्ठ संख्या–७०

प्रति आकृष्ट होती है। राबर्ट भी उसका आदर करने लगा। लेकिन जब उसका पति राबर्ट नास्तिकता के मार्ग पर अग्रसर हो गया तो फ्लोरा के लिए स्थिति असहाय हो जाती है और वह उससे अलग रहने लगती है और वह कॉगडा जिले में अछूतो मे ईसाइयत का प्रचार करने वाले मिशन मे चली जाती है। पत्नी होने के अधिकार से जब उसका पति उसको मनीआर्डर से पैसे भेजता है तो फ्लोरा उसका मनीआर्डर इस उत्तर के साथ लौटा देती है "नास्तिको के पैसे पर मुझे श्रद्धा नही"।

इस तरह लेखक ने अपने उपन्यास मे अनेक नारियो को रखकर जैसे शैल के चरित्र के माध्यम से नवीन विचारधारा को धारण करने वाली नारी का चित्र यशोदा के माध्यम से रूढिग्रस्तता को तोडने की चाह मे छटपटाती हुई, नैनसी के माध्यम से अपने विचलित जीवन मे विराम पाने की ललक व फ्लोरा का धर्म के प्रति आस्था के कारण अपने पति तक को छोड देना इत्यादि बाते उपन्यासकार ने नारी चरित्रों के माध्यम से उन्हे अपने उपन्यास में विशिष्ट स्थान प्राप्त कराया।

वस्तुत. उपन्यास मे लेखक ने मूलत. राजनीतिक और सामाजिक समस्याओ को एक यथार्थ के रूप में उभारा है। सामाजिक समस्याओ के प्रति लेखक का रुख पूर्णत विद्रोहात्मक है। रूढिवादी दकियानूसी मान्यताओ एवं परम्परागत आदर्शो तथा मूल्यो का बोझ ढोने वाला आज का समाज किस प्रकार एक स्वस्थ भूमि की ओर अग्रसर हो सकता हैं। उपन्यास के अन्तर्गत विभिन्न नारी चित्रणों के माध्यम से लेखक ने इस ओर संकेत किया है।

चन्दा (देशद्रोही)

यशपाल कृत देशद्रोही (१६४२ ई०) की चन्दा पुरातन रूढिग्रस्त नारी है। उसके चरित्र के माध्यम से लेखक ने भारतीय स्त्री के परम्परागत मान्यताओ को बोझ को ढोते हुए दिखाया है। भारत मे नारी की स्थिति का, उसके नवीन वैचारिक चिन्तन और सस्कारग्रस्त क्रमागत के द्वन्द्व का चित्रण प्रस्तुत किया है। चन्दा शिक्षित है पर उसकी सारी शिक्षा बिल्कुल अर्थहीन है क्योकि वह एक ऐसे पुरुष की अर्द्धागिनी बन जाती है, जो पूँजीवादी सभ्यता का प्रतीक है और जिसके लिए अन्य वस्तुओ की तरह स्त्री भी एक वस्तु है। गृहिणी होने के नाते वह राजाराम की गृहस्थी का सचालन पति के इच्छानुसार करती है। डॉ० खन्ना जो राजदुलारी का पति है। अचानक एक दिन चन्दा पुन जीवित देखकर उसे न केवल सम्भालती है बल्कि उसकी पग-पग मे सहायता करती है। चन्दा मे नैतिकता की भावना सदा जागरूक रहती है। उसमे स्वाभाविक वृत्तियो और सस्कारो के सघर्ष के कारण तनाव उत्पन्न होता है। जिससे वह खन्ना की बाते सुनकर भी सदा एक दूरी, एक सीमा बनाये रखती है। खन्ना के सामीप्य के कारण उसके चरित्र मे बदलाव आता है। ये बदलाव खन्ना और चन्दा के रोमास मे परिवर्तित हो जाता है। चन्दा की दृष्टि मे डॉ० खन्ना केवल भाई है, बच्चे की तरह है। अपनी बेहोशी की स्थिति मे वह ऐसा ही व्यक्त करती है। डॉ० खन्ना के यह पूछने पर की हमे बच्चो मे जगह मिलेगी या नही। चन्दा कहती है "तुम उससे बहुत आगे हो।"[१] खन्ना को लेकर पति की नजरो मे वह शक का कारण बनती है। मिथ्याभिमानी पूँजीवादी पुरुष इतना अहकार विडम्बित है कि चन्दा की उस अगाध ममत्व और विराट वात्सल्य को भी नही पहचान पाता। डा खन्ना चन्दा की गोद मे सिर रखकर सहारा और विश्राम

---

१. देशद्रोही – यशपाल, पृष्ठ संख्या – २६२

चाहता है। नैतिकता और अनैतिकता के प्रश्न का यह विचार सापेक्ष मानकर नारी की स्वतत्रता का गुणगान करता है जबकि चन्दा मे परम्परागत नैतिकता की भावना का प्रहरी सदा जागरूक रहता है। चन्दा एक स्त्री है, अपनी प्रवृत्तियों को सनातन नारी की तरह कुचलकर स्वामी की इच्छा के अनुकूल अपने को ढालने की चेष्टा मे ही विवाहित उसका जीवन व्यतीत होता है। मेरी दृष्टि मे चन्दा का मन खन्ना पर आसक्त है। साथ ही उसे उससे सहानुभूति भी है। आसक्ति और सहानुभूति दोनो भाव लेकर चन्दा, खन्ना के सामने आती है किन्तु मर्यादा उसके पॉव रोक देती है। वह अपने एक पत्र मे अपने हृदय के भावो को, जो रह-रह कर उसके मन मे खन्ना के प्रति उठते हैं, इस प्रकार व्यक्त करती है" .. "उस समय अपने आप मे न थी। कह दिया था तुम जाओ यहॉ मत आना ? इस समय यदि प्राण देकर भी तुम्हें बुला सकूँ तो भी तैयार हूँ यदि तुम आते रहते। मेरा सकट सहय हो जाता है मेरे अत्यन्त 'अपने' मेरे भाई, गुरु, मित्र तुम एक दफे तो आओ अैर नही तो तुम्हारे चरणों में सिर रख क्षमा तो मॉग लूँ।"[१] अपने पति का अपने ऊपर अविश्वास देखकर -चन्दा की अन्तरात्मा को बहुत पीडा पहुँचती है। खन्ना के आलिंगन मे उसको शान्ति मिलती है।

चन्दा और डॉ॰ खन्ना के सम्बन्धों को देखते हुए, चन्दा के पति राजाराम की प्रतिक्रिया कितनी गम्भीर होगी इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है "जिसे पूॅजीवादी परम्परा में राजाराम बढा है। उसे नारी स्वाधीनता विरोधी परम्परा ही कहा जा सकता है जिसमे रोमांटिसिज्म का वह तत्त्व जुड़ा हुआ है, जो सही तौर पर तो नारी स्वतंत्रता की बात करता है, परन्तु गहराई में एक बहाना ही होता है।"[२]

---

१. देशद्रोही – यशपाल पृष्ठ संख्या – ३६६

२. यशपाल के उपन्यासों में सामयिक चेतना – पृष्ठ सख्या–११६

समाज मे स्त्री को पुरुष अपनी सम्पत्ति मात्र समझता है, उसे जीवन मे कर्त्तव्य तो बहुत निभाने पडते है लेकिन अधिकार उसके बहुत सीमित है। चन्दा के अन्दर की नारी रह-रहकर पुरुष के अत्याचारो का विरोध करने को तडपती है। पर अपनी विवशता देखकर उसे हर बार मौन हो जाना पडता है। प्रारम्भ मे चन्दा के जीवन मे जो दृढता दिखायी पडती है वह अन्त तक कायम नही रह पाती। पर उसकी सारी मनुष्यता को निगल जाती है पूँजीवादी पाशविकता। पूँजीवादी समाज मे नारी के आर्थिक परावलम्बन के कारण घर की सकीर्ण दिवारो मे बन्द हो जाने के लिए विवश हो जाती है। अपने पति राजा राम के रगोडा पहुॅचने पर तभी उसे डॉ॰ खन्ना को मरणासन्न अवस्था मे छोडकर अपने पति के साथ जाना होता है। इस तरह उपन्यास मे चन्दा के माध्यम से ऐसी स्त्री का चित्रण प्रस्तुत किया गया है जो भारतीय सामाजिक दृष्टि से नारी की उन पीडाओ और टीस को व्यक्त करता है जो अपने पति के समक्ष पराधीन है और बिना उनकी अनुमति से वे अन्य किसी की दूषित जीवन की सहारा न दे सकने मे असमर्थ है।

चन्दा के चरित्र का विकास आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य मे बिल्कुल धुॅधला सा जान पडता है। चन्दा के चरित्र के माध्यम से लेखक ने शोषित नारी की करुण गाथा को प्रस्तुत किया है, लेखक के निम्नलिखित कथन मे चन्दा की दयनीय पराधीन और घुटनभरी जिन्दगी का स्पष्ट परिचय मिल जाता है "वह घर के बाग की बेल थी और पति माली पति की पसन्द के प्रतिकूल फूट पडने वाले स्वभाव और प्रवृत्ति की कोपलो को काट-छाटकर पति की पसन्द और गृहस्थी की परिस्थितियो के अनुकूल शाखाओ को बढाना ही स्त्री के जीवन का क्रम है कभी उसे अनुभव होता कि स्त्री होना ही अपराध है।" [१]

---

१. देशद्रोही – यशपाल, पृष्ठ सख्या – १२५

आज की पूँजीवादी व्यवस्था मे नारी का यह शोषण अत्यन्त घृणास्पद है इसे चन्दा के चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत कर लेखक ने नारी की स्वतत्रता और उसकी भावनाओ तथा इच्छाओ को कुचलकर तथा उसे मात्र अपनी ही वस्तु के रूप मे घर की चहारदीवारी के अन्दर बन्द करके रखना यह पुरुष का मिथ्याभिमान है। वस्तुत पति की उपेक्षा ही उसे डॉ॰ खन्ना की ओर झुकाती है क्योकि खन्ना के द्वारा ही उसे अपने आत्मसम्मान का अनुभव होता है। अपने पति की दृष्टि मे वह अपना महत्त्व केवल एक भोग्या के रूप मे पाती है। हर स्त्री अपने आत्मसम्मान को पाना चाहती है और ये चाहत जब उसे अपने पति से नही मिल पाती तो उसका अन्यत्र झुकना स्वाभाविक है।

चन्दा का चरित्र मध्यवर्गीय सस्कारो से ग्रस्त एक भारतीय नारी का चित्र है जो पति द्वारा किये जाने वाले शोषण अपमान को सहने के बावजूद भी पूर्णत समर्पित और इच्छानुकूल चलने को बाध्य है। चन्दा अपने घुटन भरे जीवन से निकलकर एक स्वतत्र और आत्मसम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए छटपटाती है किन्तु वह साहस नही कर पाती। आधुनिकता की प्रासंगिकता पर प्रकाश चन्द गुप्त ने कहा कि वह महिला मानो जीवन से परास्त होकर कठोरता को ही अपना श्रृगार बना चुकी है। ऐसे पराजित प्राणी हमे पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत निरन्तर मिलते हैं, लेकिन समाजवाद व्यक्तित्व को इस प्रकारण कुण्ठित नही करता।

राज दुलारी

उपन्यास की दूसरी मुख्य नायिकाओ मे हम राजदुलारी को रख सकते हैं। राज दुलारी का चरित्र नारी जीवन के एक दूसरे ही पहलू पर प्रकाश डालता है। यह खन्ना की पत्नी है और पतिव्रता नारी का प्रतीक है जो पति के मृत्यु का समाचार पाकर आत्महत्या तक करने का प्रयत्न करती है। डॉ॰ खन्ना के अपहरण के पूर्व राज अपने प्रेम को जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध मानती है। पति की मृत्यु का समाचार सुनते ही मानो उसका अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है वह घोर अन्धकार मे डूब जाती है। इसके पूर्व राज खन्ना के परिवार की सुलक्षणा लक्ष्मी और लाडली के रूप मे पूरे परिवार, की चहेती बहु रहती है। जो विधवा हो जाने पर वही परिवार की उपेक्षा और तिरस्कार की वस्तु बन जाती है उसकी यह स्थिति उसे मानसिक यत्रणाओ का शिकार बना देती है। ऐसे नाजुक स्थिति मे बद्री बाबू के माध्यम से उसके चरित्र मे बदलाव आता है बद्री बाबू के सम्पर्क मे आने के बाद उसके विचारों मे भी परिवर्तन आता है जो पति की मृत्यु के पश्चात् अपनी जीवन लीला समाप्त करने को आतुर होती है। जीवन मे यही से उसके बदलाव आता है। "धीरे-धीरे वह समझती है कि गृहस्थ जीवन की सीमित परिधि के बाहर विशाल संसार में बहुत कुछ करने को पडा है। निसन्देह इसके लिए उसे एक साथ की आवश्यकता थी और बद्री बाबू के रूप मे वह उसे प्राप्त भी होता है।"[१]

बद्री बाबू की आत्मीयता उसे एक नवीन जीवन की ओर ले जाती है और ये जीवनधारा विवाह की परिणति मे बदल जाती है। विधवा हो जाने के पश्चात् बद्री बाबू से विवाह तक की राज की मनस्थितियो को लेखक ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। स्त्री अपने भीतर तमाम गुणों को समेटे हुए भी एक साथी की

१. यशपाल का कथा साहित्य – प्रकाश चन्द्र मिश्र, पृष्ठ संख्या – ५४

आवश्यकता के महत्त्व को पाना चाहती है तभी उसकी बहन चन्दा बद्री बाबू से कहती है कि "आप ने राज का बहुत ख्याल किया वरना यह पागल तो मर जाती। देखिए, इसका क्या हाल हो रहा है ? . मैं डर रही हूँ। इसे कुछ हो न जाये।"[1]

इस तरह राज विधवा स्त्री की कठिनाई को झेलते हुए बद्री बाबू से विवाह करने की जो वैचारिक बदलाव आया है वह आधुनिकता की ओर ले जाता है। वह हमारे समाज की नैतिक धारणाओ मे अति विरोध को प्रगट करती है। वह पति के जीवित रहते दूसरी विवाह भी करती है। लेकिन अन्जाने मे और दो बार पतिव्रत धर्म को निभाती है। पहली बार जब पति डॉ॰ खन्ना की मृत्यु का समाचार मिलता है तो वह आत्महत्या तक करने को आतुर होती हैं। वही राज के जीवन मे जब बद्री बाबू पति रूप मे आते हैं तो वह अपने पहले पति डॉ॰ खन्ना को भी अपने घर मे शरण नहीं देती और जब मरणासन्न अवस्था मे चन्दा डॉ॰ खन्ना को राज के घर लेकर पहुँचती है तो राज कहती है . "बहन क्षमा करना मैं क्या कर सकती हूँ मैं बडी पापिन हूँ, अपराधिन हूँ, पर अब कुछ नहीं कर सकती। घर मे नौकर चाकर हैं, मॉजी हैं, मैं क्या कर सकती हूँ ? वे जेल मे हैं। कहों अपने पाप के लिए जान दे दूँ ? पर प्रसाद के लिए कलंक कैसे लगा लूँ ?"[2] इस तरह जो राज पहले पति की मृत्यु में आत्महत्या करने को तत्पर रहती है उसके बिना उसका जीवन सूना हो जाता है वहीं राज डॉ॰ खन्ना के पुन जीवित होने पर उसे अपनाने में अपने आप को असमर्थ पाती है। लेखक ने राज की चरित्र के माध्यम से यह भी व्यंजित किया है कि प्रेम प्राकृतिक आवश्यकता है जिसकी तृप्ति से इन्कारा नहीं जा सकता। राज के प्रेम का बद्री बाबू पर संत्रण इसी आवश्यकता की मॉग का प्रमाण है। वे

---

१. देशद्रोही, यशपाल, पृष्ठ संख्या – ४६

२. देशद्रोही – यशपाल, पृष्ठ संख्या – २२४

नारी को सकीर्ण विचारधाराओ की परिधि से निकालकर विस्तृत धरातल पर स्वतत्र कर देना चाहते है। राज और बद्री बाबू के माध्यम से यशपाल विधवा प्रथा के आधार पर ही प्रहार करती है विधवा प्रथा का आधार पतिव्रत धर्म तथा निरपेक्ष प्रेमतत्व है। यह अपेक्षा भारतीय नारियो से की जाती है कि पति की मृत्यु के पश्चात् भी विधवा पत्नी अपने मृत्यु पति से प्रेम करती रहे तथा पतिव्रत धर्म का पालन करे। यह भुला दिया जाता है कि विधवा नारी भी एक जीवित प्राणी है। . "यह कैसे सम्भव है कि मृत्यु पति के प्रति उसका प्रेमभाव स्थिर तथा अचल रहे। अत विधवा के लिए पतिव्रत धर्म एक खोखला सामाजिक एव नैतिक मूल्य है।"[1]

यही उपन्यासकार यशपाल का दर्शन है जिसका उद्‌गार उन्होने राज चरित्र के माध्यम से प्रक्षेपित करते हुए उसे आज के नवीन नारी दृष्टि की ओर अग्रसर होते दिखाया है।

(दिव्या) दिव्या

दिव्या उपन्यास मे यशपाल ने नारी शोषण की समस्या पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। यह उपन्यास एक समस्या प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसकी गम्भीर समस्या है नारी के महत्त्व की। उसकी शान्ति और उन्नति तथा सुरक्षा की समस्या। दिव्या मे बौद्धकालीन भारतीय नारी का वर्णन है तत्कालीन समाज मे नारी भोग की वस्तु थी उसकी बाह्य स्वाधीनता इस सत्य को छिपा न सकती थी। दिव्या ने इसके विरुद्ध विद्रोह किया।

प्राचीन काल मे नारी आज की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र थी किन्तु स्त्री की

---

१ हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचना – डॉ चण्डी प्रसाद जोशी, पृष्ठ सख्या–३६५

स्वच्छन्दता का चित्रण तो सस्कृत नाटको मे भी नही मिलता। दिव्या का चरित्र चित्रण यशपाल की असाधारण विजय है। इसके पूर्व के यशपाल के उपन्यासों की नारियॉ या तो मध्यवर्गीय है या निम्न मध्यवर्गीय है। निःसन्देह उनका भयानक शोषण उन रचनाओ मे देखने को मिलता है पर हमारे समाज की मात्र निम्न मध्यवर्गीय या मध्यवर्गीय नारी ही शोषित नही रही है अभिजात वंशीय नारीयों को भी शोषण चक्र वैसे ही पीसता रहा है। दिव्या अवश्य ही हिन्दी उपन्यास की नायिकाओ मे प्रमुख स्थान पायेगी। महापण्डित धर्मस्थ देवशर्मा की प्रपौत्री दिव्या का लालन पालन अभिजात्य पूर्ण वातावरण मे हुआ। यौवनावस्था मे ही प्रवेश करते ही उसका परिचय मधुपर्व के आयोजन के अवसर पर सर्वश्रेष्ठ खडकधारी पृथुसेन के वीरत्व पर मोहित होकर हाता है। उसी क्षण वह पृथुसेन को अपना हृदय अर्पित कर देती है। "गतरात्रि मधुपर्व उत्सव मे विलम्ब हो जाने के कारण प्रातः दिव्या अपने, शयनकक्ष से भी विलम्ब से निकली सुखद आलस्य मे कभी काम विलम्बित गति से हो रहे थे। गतिसध्या उसकी शिविका मे कन्धा देने के गौरव के लिए आचार्य पुत्र आर्य रुद्रधीर ने खडग खीच ली थी।"[१]

इसी आकर्षण के फलस्वरूप केन्द्रस्थ के आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए युद्ध स्थल मे जाने से पूर्व पृथुसेन को दिव्या अपना नारीत्व समर्पित कर देती है और विवाह किये बिना ही वह पृथुसेन के अश को अपने गर्भ मे धारण कर लेती है दिव्या का प्रणय व्यापार उसके भावी जीवन के लिए भयकर दुख का कारण बनता है विवाह के विधि से पृथुसेन को पाये बिना अपने शरीर मे उपस्थित पृथुसेन के अंश की रक्षा वह विरोधी दृष्टियो से किस प्रकार करे. "पृथुसेन से उसका विवाह होगा।"[२] इस तरह दिव्या बिना विवाह किये ही गर्भधारण करती है।" गर्भवती दिव्या

१. दिव्या – यशपाल, पृष्ठ सख्या – २२–२३
२. दिव्या – यशपाल, पृष्ठ सख्या – ६०

पृथुसेन के द्वारा तिरस्कृत होने पर समाज में अपने लिए कही स्थान न पाकर एक रात दासी धाता के साथ परिवार समाज और सागल की वैभव सम्पन्न नगरी को छोडना पडता है ये स्त्री के सबसे बडी विडम्बना है कि इन अवसरों पर केवल उसे ही पाप का भागी बनना पडता है लेकिन बदलते परिवेश मे केवल उसे ही दोषी नही माना जाता लेकिन उपन्यासकार ने उपन्यास मे दिव्या का जीवन तमाम यंत्रणाओ से भर दिया है वह दास व्यापारी, प्रतुल के हाथो में पडकर वह वर्ण वस्तु बन जाती है।

दिव्या का अथाह दुख उसकी विषम स्थिति उस क्षण और भी दर्दनाक हो उठती है जब पुरोहित चक्रधर द्वारा उसकी सन्तान शाकुल को छिनकर उसे अन्यत्र बेच देने की योजना बनायी जाती है। मॉ का हृदय दिव्या के चरित्र को हिलाकर रख देता है। वह अपने पुत्र शाकुल को गोद मे छिपाये अन्यत्र शरण पाने के लिए भाग निकलती है। परन्तु "दुखियों को शरण देने का दम भरने वाला अभिधर्म भी उसे आश्रय प्रदान नही कर पाता।"[१] अतः चारों ओर से दुःखी दिव्या यमुना की गोद मे चिरशान्ति पाने का मार्ग खोजती है। पर यहॉ भी उसे शान्ति नही मिलती भविष्य मे और अधिक दु ख सहने के लिए वह बच जाती है।

आत्महनन का यह कदम उसे स्थिविर का कथन कि . "वेश्या स्वतंत्र नारी है देवी। "[२] उसके मस्तिष्क में घुमता रहता है इसीलिए वह पुत्र सहित यमुना मे कूदती है। पुत्र शाकुल तो मृत्यु को प्राप्त हो जाता है लेकिन दिव्या वेश्या रत्नप्रभा द्वारा बचा ली जाती है। यहॉ पर उसे नया नाम मिलता है। अंशुमाला सागल में राजनृत्य की मल्लिका से सीखी हुई नृत्य कला यही उसके काम आती है। लेकिन अशुमाला की मुस्कान केवल कला का कर्त्तव्य मात्र रहती है। स्वमेव उसका जीवन

---

१. मार्क्सवाद और उपन्यासकार, यशपाल – डॉ. पारसनाथ मिश्र पृष्ठ संख्या–१८०

२. दिव्या – यशपाल, पृष्ठ संख्या – १२७

कुछ भी शेष नही बचता समाज से पृथक् होते ही निसग और तटस्थ हो जाती है जैसे जल से बाहर निकल आने पर हस शावक अपने पर झाडकर जल की बूँद से रहित हो जाता है उसका मन दारुण और वीभत्स स्मृतियॉ के दुर्भेद्य आवरण मे लिपटा हुआ था उसके मन मे शाकुल का वियोग अन्दर तक समाया हुआ था। रत्नप्रभा के यहॉ आकर उसकी पूर्व परिचय मारिश से होता है। मारिश कलाकार और साथ ही नास्तिक भी है। मारिश का नास्तिक होना शागलवासियो की दृष्टि मे एक भारी अवगुण बन जाता है। मारिश से महापण्डित धर्मस्थ के निधन का समाचार सुनकर दिव्या सोचती है। "सम्पन्न परिवार अनुरक्तपति सुन्दर संतान ? वह सब पाया और नही रहा और उस सबके.. [१] परिणाम में पाया दुख।[२] अत· दिव्या मे विवाह पूर्व पतिभावना ही दिव्या को हमेशा सालती रही है। पृथुसेन को पति रूप में पाने के लिए वह सीरो के साथ सहपत्नीत्व स्वीकार करने के लिए भी प्रस्तुत है। यह उसकी उदारता है.. "क्या सीरो भी मेरे साथ आर्य की पत्नी नही बन सकती ? एक वृक्ष की छाया में अनेक प्राणी विश्राम पाते हैं। गजराज की अनेक पत्नियाँ होती है। उसी प्रकार आर्य की भुजा के आश्रय में हम दोनो ही रहेगी .। [३] परन्तु दिव्या के भाग्य में यह भी होना नहीं लिखा। भाग्य का चक्र उसे दासी, वेश्या तक बनाने को मजबूर करता है। भाग्य चक्र से दिव्या पुन· सागल लौटती है। मल्लिका की उत्तराधिकारिणी के रूप में पर सागल का अभिजात्य समाज विप्र कन्या को वेश्या के स्थान पर नहीं बैठने देता। क्योंकि वर्णाश्रम की व्यवस्था निकाल सत्य है। दिव्या फिर एक बार निराश्रिता हो गई पर इस बार उसे आश्रय देने वालों की कमी नही। आचार्य रुद्रधीर दिव्या को पत्नी बनाने को उत्सुक है पर दिव्या को यह स्वीकार नही। बौद्ध भिक्षु के रूप में पृथुसेन भी दिव्या को प्रताडित नारी के शरण

---

१ दिव्या – यशपाल, पृष्ठ संख्या – १४६

२. दिव्या – यशपाल, पृष्ठ सं. १४६

३. दिव्या – यशपाल, पृष्ठ संख्या – ६३

देने मे आगे आते है लेकिन दिव्या का स्पष्ट मत है .. "नारी का धर्म निर्वाण नही सृष्टि है।"

मारिश आता है और दिव्या को अपनाने के लिए कहता है कि कुछ और दे या न दे पर सन्तति के रूप मे मानव की अमरता दे सकता है। भूमि पर बैठी दिव्या विचार मे ग्रीवा झुकाए रही फिर उसने सहसा भित्ति का आश्रय छोड दोनो बाहो का फैलाकर उसका स्वर आर्द्र हो गया "आश्रय दो आर्य। "[१]

मारिश के साथ दिव्या का जाना इस बात का प्रतीक है कि मानव की परम्परा और परिवार की अक्षुणता सन्तान प्राप्ति द्वारा सम्भव है। दिव्या के चरित्र के माध्यम से लेखक ने समाज मे व्याप्त वेश्याओ को सामाजिकता के दायरे मे पुन लाकर उसे एक स्वस्थ भाव-भूमि द्वारा फिर से सम्मानित होने का परिचय मारिश के द्वारा दिया है जो आज के सन्दर्भ मे जीवन्त है। दिव्या उस समाज व्यवस्था की सजीव नारी है जो अपने गुणो को लेकर भी उसका कोई मूल्य नही पाती। वस्तुतः यशपाल ने वेश्या के जीवन का अन्त वेश्यावृत्ति मे ही निहित न दिखाकर उन्हे एक गृहस्थ ग्रहिणी के रूप मे पुन अवलोकित दिखाया है।

दिव्या के व्यक्तित्व एव चरित्र की सराहना जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने इन शब्दो मे की है, 'दिव्या व्यक्तिमूलक अहवाद की प्रतीक है। उसने आद्यान्त अपने व्यक्तित्व से प्रेम किया है। विचार-ऊहापोह और दृढ़तापूर्वक जीवन की पिच्छल भूमि पर पैर बढाये है। अपनी साधना मे रस का अनुभव किया है।.. रुद्रधीर का आभिजात्य प्रेम दिव्या के जीवन को पतोन्मुखता बनाने का प्रधान कारण था। कुल-गृह के विच्छेद से ही सूखे पत्ते की भॉति उसे जीवन में इधर-उधर उड़ते रहना पडा था। व्यक्ति

---

१ दिव्या – यशपाल, पृष्ठ संख्या –२१७

स्वातत्र्य को उच्छिन्न कर देने वाला यह अमानवीय पाखण्डवाद पूर्णतया अहवाद का समर्थक था और व्यक्तिमूलक नारी के स्वत्व सम्मान को स्वीकार नही करता था । इस उपन्यास मे स्वत्व और व्यक्ति-स्वातत्र्य की लिप्सा से अभिभूत नारी की प्रतिहिसात्मक भावना का प्रतीक दिव्या है।"[1]

दिव्या अपने स्वत्व को नष्ट नही करना चाहती। वह पुरुष के सम्मुख अपने को दुर्बल नही मानती। वह अभिजात-वश के वैभव और विलास को तुच्छ समझकर ठोकर मार देती है। कोमलागी दिव्या बौद्धिक-रूप से दृढ और सबल है। वह सघर्षशील, आत्मनिर्भर, व्यक्ति मूलक अहवाद की प्रतीक है। वह भिक्षु पुथुसेन की शरण मे भी नही जाती। उसके विचार मे "भिक्षु का धर्म निर्वाण है। नारी प्रवृत्ति का मार्ग है। भिक्षु के धर्म मे नारी व्याज्य है।"[2] इसलिए वह धूल-धूसरित मार्ग के पथिक, 'सन्तति की परम्परा के रूप मे मानव की अमरता देने वाले भौतिकवादी प्रगतिशील पात्र चार्वाक मारिश का आश्रय ग्रहण कर लेती है। दिव्या कर्म मे ही नारी जीवन की सार्थकता मानती है। वह समाज से भयभीत नही होती, न ही समाज के सम्मुख नीची बनती है। वह नारीत्व की सुकुमारता और भावकुता जैसे कोमल गुणो से अभिभूत है, जो बौद्धिकता और तार्किकता के आधार पर समाज को परास्त करने की क्षमता रखती है। शान्तिप्रिय द्विवेदी का कथन है, "सभी पात्र-पात्रियो के ऊपर दिव्या का व्यक्तित्व अनुरागिनी उषा और विषादिनी सध्या की तरह शोभयमान है। उसी की आत्मा अमृतलोकवासिनी जान पडती है।, शेष प्राणी तो इस मर्त्यलोक मे सासारिक जीव है। दैहिक प्रवृत्तियो से परिचालित होकर भी दिव्या की चेतना का पतन नही हुआ।"[3]

---

१ आलोचना, अक्टूबर। १९५७।

२ दिव्या – यशपाल। सं० २१५

३ साकल्य, पृ० २०३

अत यह कहा जा सकता है कि दिव्या आत्म-सम्मान एव आत्म-निर्भरता की भावना से परिपूर्ण सामान्ती युग की वह नारी है, जिसने अत्याचारो को सहन करके शारीरिक शक्ति के बल से नियति की क्रूरता का ध्वस किया। वह क्रूर मानव की नृशसता, उसकी अहवादी प्रवृत्ति एव स्वत्व की भावना को प्रतिहिसा की दाहक ज्वाला मे भस्म करके, आत्म-निर्णय के अधिकार से, सबला नारी का आदर्श प्रस्तुत करती है। अतीत की नारी को भी यशपाल ने आधुनिक दृष्टिकोण से चित्रित किया।

सीरो

सीरो मद्र के परम भट्टारक गणपति की पौत्री गणपरिषद् के सम्वाहक की पुत्र वधु और महापराक्रमी पृथुसेन की अर्द्धांगिनी थी। वह गर्व स मस्तक उठाकर चलती थी। समाज मे सबसे सम्मानित आसन की वह अधिकारिणी थी और उससे अधिक की स्पर्द्धा उसके मन मे थी। वह सबसे अधिक काम मे भोगो को भोगती और सागल के सबसे अधिक सुन्दर युवा पुरुषो से आदर की आशा करती। उसके राग-रजित ओठ केवल मदिरा से घुलते।"[१] इस प्रकार उपन्यासकार ने सीरो को अति उच्श्रृखल नारी के रूप मे चित्रण किया है। उसके चरित्र मे वासना की उच्श्रृखलता और इच्छाओ का उद्दामवेग दिखायी पडता है। सीरो इतनी असहिष्णु नारी है कि पृथुसेन पर अपना एकाधिपत्य स्थापित करने के लिए दिव्या को उसके पास तक नही आने देती। नारी सुलभ ईर्ष्या के गुण उसमें विद्यमान है। सीरो को वासना पृथुसेन से भी तृप्ति न पाकर अन्यत्र सौन्दर्य और परिणय की खोज मे व्याकुल रहती है। वास्तव मे उसके जीवन मे जैसे भोगवादी समाया हुआ है। इस तरह की नारी प्रगतिशील चेतना के विकास मे बोधक प्रतिक्रियावादी व्यक्ति ही सिद्ध होती है।

---

१. दिव्या – यशपाल पृष्ठ सख्या – १७७

सीरो और पृथुसेन के विवाहोपरान्त जीवन के वर्णन के माध्यम से भी यशपाल मे सामाजिक सुविधाओ से परिपूर्ण और भौतिक आकर्षणो से बंधे शक्ति सम्पन्न लोगो के परिवार में पलने वाले खोखलेपन, मूल्यहीनता और चरित्र शून्यता का चित्रण किया है।

समाज में स्त्रियॉ दो तरह की होती है एक वो जो पति की आज्ञा को अपना कर्त्तव्य समझकर पूरा करती है दूसरी वह जो पति की अवहेलना करना उच्श्रृखला मानती है सीरो उन्ही नारियो मे से है। स्वयम् वह कहती है. " मैं तुम्हारी क्रीत-दासी नही हूँ। तुम मेरे आश्रित हो, मैं तुम्हारे आश्रित नही हूँ। मैं तुम्हारे पिजरे मे बन्द सारिका नहीं हूँ। केवल तुम्हारी अग सेवा के लिए दासी नही हूँ मेरे लिए भी ससार मे केवल तुम्ही एक पुरुष नही हो। तुम जैसे अनेक और तुमसे श्रेष्ठ अनेक।"[1]

इस तरह सीरो उन नारियो मे से नही है जो एक ही पुरुष के बन्धन मे अपना जीवन स्वीकार हो। आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे सीरो जैसी ही सर्वत्र नारियॉ दिखायी पडती है जो पति को कुछ भी नही समझती, उनकी बातों की अवहेलना करना ही अपना परम कर्त्तव्य समझती है। सीरो आज की नारी जगत् मे अपना स्थान मुख्य रूप से समाज मे जमाये हुए हैं।

दिव्या उपन्यास के अन्य नारी पात्रो में मल्लिका आती है जो नृतकी रूप में चित्रित हुई है। नारी सुलभ सभी उच्च भावनाएँ विद्यमान है। उसका सागल नगरी मे अत्यधिक प्रभाव है। वह कला की श्रेष्ठ अराधिका थी और अनेक शिष्याओ के रहते हुए भी वह अपनी कला की रक्षा के लिए पर्यटन करती है और योग्य शिष्या दिव्या को अंशुमाला के रूप में सूरसेन प्रदेश मे प्राप्त करती है। अन्त में षड़यंत्र कर बॉहो और दासों का नाशकर मद् में फिर से वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा करती है।

१. दिव्या – यशपाल – पृष्ठ संख्या १७७

गीता (पार्टी कामरेड)

पार्टी कामरेड की 'गीता' साधारण युवती के रूप मे तत्कालीन यूगीन (१९४६ ई०) विशेष की नवयुवती का प्रतिनिधित्व करती है जो पार्टी की स्वयंसेविका एव सदस्या है। उच्च कुलीन परिवार से सम्बन्धित होने पर भी वह पार्टी के लिए समाचार पत्र बेचती है। कालेज के अध्ययन करने पर भी चन्दा इकट्ठा करती है। जुलूस मे भाग लेती है और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समस्त इच्छाएँ और आशाएँ बलिदान कर देती है।

गीता समाजवादी चेतना सम्पन्न कम्यूनिस्ट पात्र है जिसके माध्यम से लेखक ने एक साथ ही राजनीतिक और सामाजिक दोनो समस्याओं पर विचार किया है। गीता कम्यूनिस्ट पार्टी की नीति के अनुसार जनहित को आधार बनाकर काग्रेस का उसके पूँजीवादी राजनीतिक सिद्धान्तो का डटकर विरोध करती है। पर उसकी सबसे बडी लाचारी यह है कि जनकल्याण का कार्य उसे पूँजीवादी संस्कारो वाले समाज में करना पडता है। नारी कार्यकर्त्ता को पार्टी के कार्यो मे अवसर न देने के लिए पूँजीवाद का नारी समर्थको का पार्टी मे कार्य करने के लिए उसके चरित्र पर लांछन लगाना होता है। अधिक-से-अधिक जागरूक नारी भी अपने चरित्र पर लांछन लगाने पर परास्त ही होगी। गीता भी जो शोध छात्रा भी है अत्यन्त जागरूक है पूँजीवादियों के इस वार से लडखडा जाती है। पूँजीवादी समाज में नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व का "कोई अर्थ नही होता। स्त्री का व्यक्तित्व चाहे जितना सशक्त और बलशाली हो। उसे पुरुष की आड़ चाहिए ही भले ही वह पुरुष दुर्बल हो, कमजोर हों"[1] गीता का यह कथन पूँजीवाद के इसी विडम्बनापूर्ण आचरण को

---

१. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ॰ पारसनाथ मिश्र, पृष्ठ संख्या – १८४

अनावृत्त करता है। "भाई की भोली और उत्तेजनापूर्ण बाते गीता के लिए कितने सतोष का कारण थी। उसने एक बॉह का सहारा अनुभव किया। वह बॉह देखने मे कितनी दुबली-पतली और कमजोर है पर है तो मर्द की बॉह। वह अकेली नही है। शामू छोटा है तो क्या ? है तो लडका ... मर्द। उसके सहारे वह खडी हो सकेगी"[1] इसमे गीता अपने प्रेम से भावरिया जैसे बदमाश एव लखपति के जीवन में भी उसके सम्पर्क मे आती है। उसके जीवन में गीता नयी मोड लाती है तथा भावरिया का जीवन सुधारने में अपनी अग्रणीय भूमिका निभाती है। भावरिया के जीवन मे उसके चरित्र की सरलता और स्थिरता से एक ऐसा परिवर्तन आता है जो उसे शहीद की उपाधि प्रदान करके ही छोडता है।

गीता लगनशील और जीवट लडकी है और अनेक बाधाओ का सामना करके भी वह पार्टी का कार्य करती है। उसका परिश्रम सराहनीय है। जब बम्बई में दंगे मे कम्यूनिस्ट पार्टी का दफ्तर तोड-फोड़ दिया जाता है तो उसके लिए फंड की अपील हुई। गीता के पास रूपया न था, उसने गले से लाकेट उतार कर दे दिया और दो सौ रूपया चन्दा मांगकर देने का वचन दिया। . ."गीता चुप रह गई और उसे याद आया ... आग से पार्टी के प्रेम को नुकसान पूरा करने के लिए, उसने दो सौ रूपया इकट्ठा करने का वायदा किया था।"[2] वही गीता के मानसिक परिवर्तन का द्योतक है जो अपनी आयु से अधिक गम्भीरता और अधिकार से बात करती। गीता में उच्श्रृंखलता नहीं बल्कि सयम दिखलायी पडता है। वह कम्यूनिस्ट पार्टी मे कुशलता के साथ कार्य करती हुई। अनेक लोगों के विभिन्न व्यवहारों का उत्तर बडी बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से देने में सक्षम होती है। "भाई के साथ बहन का स्नेह उडेलती है और माँ के साथ पुत्री का व्यवहार।"[3] गीता का चरित्र सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के

---

१. गीता पार्टी कामरेड, पृष्ठ संख्या–७०
२. गीता पार्टी कामरेड – यशपाल, पृष्ठ संख्या – ४४–४५
३. यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य – सुरेन्द्र तिवारी ..... पृष्ठ संख्या १०४

लिए अनुकरणीय है और उसके निर्माण में यशपाल ने 'दादा कामरेड' की शैल से अधिक सफलता पायी है। गीता का चरित्र शैल की अपेक्षा अधिक सयमित और प्रभावित करने वाला है।

गीता के चरित्र के माध्यम से कम्यूनिस्ट दृष्टिकोण पर आक्रमण कर एक ओर जहॉ यशपाल प्रतिबद्धता की परवाह बिना यात्रिक जडता के दोष से बच गये हैं। वही दूसरी ओ़र कलाकार की कलात्मक निस्सगता और तटस्थता का प्रमाण भी प्रस्तुत करने मे अहम भूमिका निभायी है। गीता जनकल्याण के कार्यो मे हाथ बटाती हुई पूँजीवादी सस्कारो से लडती हुई जागरूकता का प्रतीक बनती है जो आधुनिकता का बोध भी कराती है। उपन्यास मे गीता ऐसी नारी है जिसमे पर्याप्त आधुनिक चेतना है, नवीनता है पर इसके बावजूद भी उसमे जीवनगत सम्वेदनाऍ है। यशपाल की सभी नायिकाओ मे एक गीता ही अपवाद स्वरूप जैसी अपना नारीत्व बोझ नही प्रतीत होता है और जो नारी स्वतत्रता की स्वाभाविक रूप से पूर्ण पक्षपाती हुए थी मूल्य मर्यादा रहित नारी जीवन को प्रभावहीन समझती है। उसे दूर से ही प्रणाम करती है। लेखक का कथन इस प्रसग से उद्घाटित नारी के प्रति सम्वेदनात्मक झलक जो गीता नारी समाज की सम्बल बनती हैं। अपने दैनिक जीवन में आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करती है।

हिता

उपन्यास मे हिता बालिका अमिता की दासी व सरक्षिता के रूप मे सामने आती है। उपन्यास में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। दासी होने पर भी अमिता पर उसका अत्यधिक प्रभाव है। वह एक माता की तरह अमिता को हट करने पर बहलाती एव फुसलाती है। अमिता की अभिन्न अन्तरंग होने के कारण उसका महत्त्व उपन्यास में अमिता के समान ही है। हिता का अमिता की विशेष सरक्षिता होने का आदेश महारानी नन्दा के आदेश से विशेष सेवा के लिए किया था। . "हिता और उसकी प्रौढा मॉ वापी को महारानी के आदेश से युगराज्ञी अमिता की विशेष परिचर्या के लिए नियुक्त कर दिया गया था।"[१] हिता को अमिता उपन्यास मे शोषित वर्ग के चरित्र की प्रतिनिधि कहा जा सकता है उसका दासी होने के कारण स्वतंत्र अस्तित्व कुछ भी नहीं रहता और प्रसाद मे जब महाराजा का स्वर्गारोहण हो जाता है तो हिता को आतंक अनुभव होने लगा था कि "... अब उसे दूसरे लोगों की विनोद वासना का पीड़ा जनक भार उठाना पडेगा।"[२]

हिता प्रसाद में चित्रकार और मिट्टी के खिलौने बनाने वाले मोद से प्रेम करती है अमिता को उन मिट्टी के खिलौनों को दिखाकर प्रायः युवराज्ञी के आनन्द और विनोद का साधन बनाती है। इसका मुख्य कारण यह था कि वह इसी बहाने अपने प्रेमी मोद से मिलने का अवसर पा जाती है।..." वह उत्साह से प्राय. नित्य ही मूर्तिकार मोद के समीप पहुँच जाती और उसके साथ हिता भी।"[3] हिता और मोद एक दूसरे से विवाह करना चाहते हैं पर दास होने के कारण उन्हें विवाह करने का कोई अधिकार प्राप्त नही है। वे विवाह तभी कर सकते हैं जब वे दास जीवन से मुक्ति पा जायें। हिता और मोद के माध्यम से लेखक ने शोषण का जो चित्र उकेरा

---

१. अमिता – यशपाल, पृष्ठ संख्या–५२
२. अमिता – यशपाल, पृष्ठ संख्या–५२
३. अमिता – यशपाल, पृष्ठ संख्या – ५३

है वह उपन्यास मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आदमी जानवरो की तरह खरीदा बेचा जाता था दासो का जीवन बिल्कुल नरकीय था, इच्छा नाम की चीज उनके लिए बनी ही न थी। हिता मोद से एकनिष्ठ भावना से प्रेम करती है लेकिन विवाह न करने को मजबूर है। लेकिन हिता स्वामीभक्ति मे अपने-आपको निहित कर प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँचना चाहती है। इस नियति से वह महारानी नन्दा की सेवा से उसे प्रसन्न भी कर लेती है लेकिन महारानी के वाक्य उसे अन्दर तक चोट पहुँचाते हैं.."महारानी ने हिता को सम्बोधन किया. तुझे क्या दें ? हम तेरे ऋणी हैं। तू दासी है। तूझे स्वर्ण दे तो उसे धारण नही कर सकेगी। हम सबसे पहले तुझे ही अदास कर देते परन्तु तू स्त्री है स्त्री का स्वतत्र होना दोष है। वह पत्नी होती है अथवा दासी। कोई नागरिक तेरा वरण करना चाहे अथवा तू स्वतंत्र नारी बनना चाहे तो हम तूझे अदास कर दे। तू जब चाहे हमसे वर का ऋण मॉगना। इस तरह हिता सोचती है... "यदि मोद दास न होता तो वह महारानी से अदास किये जाने की वरदान भाग लेते परन्तु मोद दूसरे का दास था, वह हिता का स्वामी कैसे हो सकता था।

हिता का चरित्र विवशताओ से घिरा होता है वह चाहकर भी कुछ नही कर सकती। इस तरह लेखक ने उसको समाज में हिता जैसी विवशताओ से घिरी नारी का चित्राकन करके तत्कालीन समाज शोषित वर्गीय नारी की स्थिति को बडे ही मार्मिक ढंग से द्रष्टव्य किया है। वस्तुतः हिता के चरित्र में कर्त्तव्यपरायणता, स्वामीभक्ति के उत्तरदायित्व का निर्वहन सम्पूर्ण उपन्यास में करती हैं। जो आज के सन्दर्भ मे प्रासगिक है।

सोमा (मनुष्य के रूप)

सोमा मनुष्य के रूप की नायिका है। वह एक विधवा है। हिन्दू समाज मे विधवाएँ किस प्रकार कठोर और उपेक्षापूर्ण व्यवहार पाती रही है। लेखक ने सोमा के उदाहरण द्वारा इसे भली भाँति स्पष्ट कर दिया है। सोमा एक ऐसी स्त्री है जो पारिवारिक संकटों से ऊबकर घर की उपेक्षा करके युवक धन सिह के साथ भाग जाती है। यहि से उसके चारित्रिक पतन की कहानी प्रारम्भ होती है। यदि वह घर से न भागती तो उसके सास-ससुर उसे दूसरे व्यक्ति के हाथ बेच देते। ऐसे में एक स्त्री क्या करे ? घरवालों की उपेक्षा नवयुवको की वासना उसे कहाँ से कहाँ पहुँचा देती है। सोमा को अनेक पुरुषो की कामवासना की तृप्ति न चाहकर भी करनी पड़ती है। एक भारतीय स्त्री के लिए उसका सतीत्व ही सब कुछ होता है। परिस्थितिवश वह अपने सतीत्व की रक्षा करने का अवसर नही नही पाती। वह पाप भावना से ऐसा नहीं करती। प्रत्युत उसका आदम्य मनोवेग उसे ऐसा करने को विवश करता है। अत· वह पाप की मलीनता से बच जाती है। हृदय एक पुरुष को देते हुए आवश्यकता वश शरीर अनेक पुरुषों को अर्पित करने मे कुण्ठित नहीं होना चाहिए। युगों से हमने जिन मान्यताओ की स्थापना की, वर्तमान परिवेश में भौतिकता प्रधार विचारधाराओं से टकराकर वह टूटती जा रही है। कल का सत्य आज का असत्य बन गया है। नारी के यौन सम्बन्ध के बन्धन ढीले पडते जा रहे है। परिस्थितियों के अनुकूल वह स्वयम् को अपने अनुरूप ढाल ले रही है।

सोमा का चरित्र इतना कलंकित न होता यदि उसे अपने घर (ससुराल) में पूर्ण सुरक्षा मिलती। एक स्त्री का सब कुछ उसका पति ही होता है। यदि साथ निभाने वालो व्यक्ति अधर में छोड जाये तो स्त्री कमजोर पड़ जाती है। यह सत्य है कि

प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की विवशता का लाभ उठाता है यहि विवशता धनसिह पुलिसकर्मी बैरिस्टर जगदीश सलोरा, बरकत आदि पुरुषो के द्वारा दिखाया गया है।

सोमा एक उपयुक्त साथी की तलाश में अनेक की वासना तृप्ति का साधन बनती है। सोमा के पास जीवन के दो ही रास्ते शेष हैं या तो वह निरन्तर परिस्थिति से समझौता कर ले या फिर वह अपना जीवन समाप्त कर ले। यशपाल ने समाज से जूझते हुए उसकी एक विशेष रूप को चित्रित किया है। वह रूप है सिने स्टार, अभिनेत्री, पहाडन जो न जाने कितनो की भोग्या बनकर इस मुकाम तक पहुॅचती है। गॉव की एक सीधी सादी, भोली-भाली स्त्री कहॉ से कहॉ तक पहुॅच गयी। धनसिह से जब उसकी मुलाकात होती है और जब वह दुबारा नहीं मिलता तो सोमा अपने भाग्य को कोसती है।.. "मुसीबत से बचाने के लिए भगवान ने एक भला आदमी भेजा था। उसकी बात मैंने न सुनी, दिन बुरे आते हैं तो ऐसा ही होता है।"[१] इस तरह सोमा धनसिंह को अपने जीवन का सहारा बनाने के लिए व्यग्र होती है। सोमा निरन्तर पुरुषो द्वारा छली जाती है। वह इस आशा से कदापि अपने ससुराल से नही भागती कि उसको अपना सब कुछ दॉव पर लगाना होगा। यदि उसको अपना शरीर ही बेचना होता तो अपने घर में सास-ससुर द्वारा बात सुनकर भयभीत होकर धनसिंह के साथ न भागती। उसका यह कदम उसके चरित्र को उज्ज्वल बनाता है। फिर वह धनसिंह के साथ इसलिए जाती है कि उसको पत्नी का दर्जा देकर इज़्जत की जिन्दगी उसे समाज में दिलायेगा उसे स्वयम् लगता है कि... "औरत ने मजदूरी करके पेट भरा तो क्या जिन्दगी ? औरत तो घर सम्भालती ही भली लगती है।"[२]

---

१. मनुष्य के रूप, यशपाल, पृष्ठ सं. २८

२. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या – ६९

सोमा के इस कथन से आशय यही निकलता है कि औरत की शोभा घर है और पुरुष का दायित्व औरत का खर्च वहन करना है उसको जीवन मे ये खुशियॉ थोडे ही दिन मिलती है कि उसका पति चल बसता है। पति के मृत्यु के उपरान्त भी वह बडे सयम और धीरज से सारे दुखो को सहती हुई अपने ससुराल मे रहती है लेकिन वहॉ पर भी उसकी कोई कद्र नही होती। "सास द्वारा यह कहने पर कि मेरे शेर जैसे लडके को भी खा गयी। बुढिया अपने युवा पुत्र के लिए बहुत रोई थी।"[1] ससुराल की अथह पीडा को सहन न करते हुए वह श्रेष्ठतर जीवन की तलाश मे घर से निकलती है न कि काम तुष्टि के लिए। यदि वह काम-वासना को ही महत्त्व देती तो वह घर से भागती ही क्यो अपने आपको जानते हुए बिक जाने देती। उसको क्या मालूम था कि वह जिस नर्क से भाग रही है, भाग्य मे उसके वही सब कुछ लिखा है। प्रथम बार वह पुलिस के वहशीपन का शिकार होती है। जो रक्षक वही एक अबला स्त्री के स्त्रीत्व का भक्षक बन जाते हैं। ऐसे में सोमा क्या करती ? ये उसकी विवशता ही रहती है। यही से उसके चरित्र मे नया मोड आता है, उसे ज्ञात होता है कि जिस सतीत्व और शरीर की रक्षा के लिए उसने घर छोड़ा था बाहर तो उससे भी अधिक असुरक्षा है। धीरे-धीरे वह उसे अपना भाग्य मान बैठती है। न तो वह आर्थिक रूप से मजबूत है और न ही शिक्षिति रूप से सोमा अपने शैशव काल से ही गरीबी, तगी और अभाव में पलती आयी है। उसके पिता ने भी उसका सौदा चार सौ रूपये में तय करके उसे बेचा था। यह सौदा उसे वैवाहिक परिणति में उसे बांधता है वह पति के साथ संतुष्ट भी रहती है। उसकी खुशी अधिक दिनों तक नही टिकती। पति की मृत्यु के बाद परिवार में उसका रहना सभी को खलता था। इसलिए पुन. उसे बेचकर अपनी रकम ब्याज सहित उसके

---

१. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या–२६

सास-ससुर वसूल करना चाहते हैं स्वयम् सोमा ने कभी नही चाहा कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बने। मनोरमा शोभा को नर्स का काम सीखने का उपदेश देती जरूर है परन्तु सोमा जब घर सम्भालने का ही इरादा व्यक्त करती है तो मनोरमा बात वही पर खत्म कर देती है। घर से भागने के उपरान्त वह बैरिस्टर जगदीश के घर की रखैल बनकर जी रही थी। सोमा ने सदैव शरण का मूल्य चुकाया वह धनसिह के पत्नी के रूप में भी नहीं स्वीकारी जाती। वह बैरिस्टर के घर मे रखैल बनती है और वहीं पर उसके घर वालो द्वारा उसका चार मास का गर्भ गिराया जाता है .. संध्या होते-होते सोमा का चार माह का गर्भ गिर गया। वह मुँह छिपाये हृदय और शरीर की वेदना से रो रही थी।"[१] सोमा जब सिने स्टार बन जाती है तो फिर वह अपना इतिहास पलटकर नहीं देखती। इसका सबसे बडा प्रमाण अन्त मे मिलता है। जब वह धनसिंह तक को पहचानने से इन्कार कर देती है। धनसिंह की याद भी सोमा को कठिनाई से आती है ... "सोमा में शरीर ही शरीर है मन जैसे है नही बरकत के साथ जाते हुए उसके मन में क्या चलता है ? धर्म और छुआछूत का विचार"... निम्न श्रेणी से ऊँची श्रेणी मे और वहॉ से नीचे लुढ़कते हुए सोमा के आत्मक्रन्दन का पता भी नहीं लगता। जीवन की नयी घटना या परिस्थिति के साथ समझौता करते-करते पिछली तमाम जिन्दगी को ऐसे भुला देती है कि लगता है उसका मन इतना स्थूल है।"[२]

सोमा के चरित्र से कहीं भी यह आभास नहीं होता कि उसे अपनी शारीरिक भूख की चाहत है। परिस्थितियों के कारण अपनी वह निष्ठा को कायम नहीं रख पाती नियति ने उसे नित्य नये-नये पुरुषों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने को मजबूर किया। यद्यपि दुःख के आवेग में कई बार जीवन को समाप्त कर देने के

---

१. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या–७८

२. उपन्यास स्थिति और गति – चन्द्रकान्त बान्दी बडेकर, पृष्ठ संख्या–३०२

विचार उसके मन मे उठते है। लेकिन वह इसका अन्त न कर पायी परिस्थितियों की दासी जो ठहरी वेश्या जीवन बिताने के लिए समाज उसे विवश करता है और समाज मे वह एक प्रसिद्ध अभिनेत्री के रूप मे सामने आती है। मनुष्य की बदली हुई परिस्थितियॉ आदर्शो को भी बदल देती है। मनुष्य के सामने सबसे बडी समस्या जीवन रक्षा तथा उसके सुविधापूर्वक निर्वाह की रहती है। यही जीवन का सत्य है। साम्यवादी भूषण सोमा की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहता है.. "तुम उसे छोड़ गये थे तो उसके लिए कोई दूसरा सहारा नही था उन लोगों ने (बैरिस्टर जगदीश सलोरा) उसे बदनाम करके घर से निकाल दिया था। तुम जानते हो जवान औरत का सहारा न हो तो दुनिया उसके पीछे पड जाती है। तुम थे तभी लोग उसे परेशान करते थे। तुम्हारे पीछे क्या हालत हुई होगी। रोटी कपडे की परेशानी रहने की जगह नहीं दर-दर की ठोकरे खाती रहती जन-जन के हाथ बिकती फिरती।"[१] स्वयम् लेखक यह स्वीकार करते हैं कि स्त्रियों की सुरक्षा घर है परन्तु मार्क्सवादी विचारधारा के अन्तर्गत स्त्रियों को घर की चहारदीवारियों के भीतर भी कैद नही करना चाहते यदि वह ऐसा चाहते तो सोमा को अभिनेत्री बनाने के बजाय ड्राइवर धनसिंह की पत्नी बना देते और अन्त में लेखक ने सोमा के माध्यम से परिस्थितियों का दास नही अपितु परिस्थितियों का निर्माता के रूप मे हमारे सामने एक चुनौती के रूप में ला खड़ा किया है। वह जो कुछ करती है उसके लिए वह स्वयम् जिम्मेदार नहीं है बल्कि समाज जिम्मेदार है जो उसकी रक्षा नहीं कर सका। यदि स्त्री इस डर से घर की चहारदीवरियों मे कैद रहे तो उसकी बौद्धिकता घुन खाए अनाज की तरह होगी जो उसको भीतर ही भीतर खोखला कर देगी। सोमा को सिने स्टार अभिनेत्री बनाना और बाद में धनसिंह को न पहचानना अतीत के प्रत्येक

---

१. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या–५०

पहलू से वर्तमान बोझिल होने का डर उसमे समाया हुआ हैं। आज वह एक प्रसिद्ध अभिनेत्री है। वह अपनी पिछली जिन्दगी भूलकर वर्तमान में जीना चाहती है। निम्नवर्गीय सोमा का चरित्र इसी प्रगतिशीलता का सूचक लगता है।

मनुष्य की रूप में सोमा जैसी नारी का चित्रण यशपाल की प्रगतिशीलता विचार धारा का सजग रूप है। सोमा को समाज ने कुचला, भ्रष्ट किया, उसे अमानुषिक अत्याचार सहन करने पडे, तो भी वह विचलित नहीं हुई। सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए वह बलपूर्वक प्रत्येक परिस्थिति का साना करती रही। मध्यवर्ग की स्त्री को तो समाज एक बार सम्मान की दृष्टि से देखता भी है किन्तु सोमा निम्न वर्ग की विधवा है, समाज ने जैसा चाहा उससे व्यवहार किया। 'उसने धनसिंह की मार सही।[1] सास–ससुर के अत्याचार सहे,[2] बैरिस्टर साहब की कृपादृष्टि का फल भुगता[3] बरकत के असहनीय व्यवहार को भी सहा'[4] यह सब सह कर भी सोमाकी आत्मा भटकती ही रहती है। ये लेखक की सूक्ष्म् दृष्टि ही है जो सोमा के अन्तर्मन को जानते हैं। सोमा के सहारे की आवश्यकता है, वह सहारे के लिए भटक रही है। वह स्त्रीत्व के बल पर सिने–अभिनेत्री 'पहाड़न' बन कर भी सोचती है, ..."मेरा प्रेम दुनियां भर के लिए बजारू चीज है। मन में टीस–सी उठी। बैरिस्टर से गुप्त प्रेम की बात स्मरण करके उसने एक गहरी सांस खीची... 'यह भी कितने दिन चलेगा ? उसे क्या मिल रहा है ? ... पैसा ! पर पैसा तो संतोष के लिए होता है, संतोष कहां था ? क्यों न सब कुछ छोड कर किसी के सथ बस जाय ? ... दुनियां मेरे गले में बॉह डाल कर खेलना चाहती है, परन्तु बॉह थाम कर सहारा देने के लिए कोई तैयार नहीं।"[5]

यशपाल सोमा की व्यथा की, वेदना को उसके मर्म को जानते हैं, फिर भी नारी

---

१. मनुष्य के रूप – यशपाल पृ.सं. ८८
२. मनुष्य के रूप – यशपाल पृ.सं. ४१–४२
३ मनुष्य के रूप – यशपाल पृ.सं.१७३
४ मनुष्य के रूप – यशपाल पृ.सं.२२६–२७–२२८
५ मनुष्य के रूप – यशपाल पृ.सं. २४६–४८

के प्रति उनका सशक्त दृष्टिकोण कहता है कि नारी परिस्थितियो से संघर्ष करें, उसका सामना करे, जब तक क्षमता हो, सामर्थ्य हो, तब तक वह सक्रिय होकर समाज से बुझती रहे। समाज के कुत्सित और घिनौने रूप के सम्मुख भी पराजित न होकर उसमे कुछ कर दिखाने का साहस हो। सोमा 'दिल मे रोने परे भी बाहर से मुस्करा सकती थी।"[1]

इस तरह लेखक ने सोमा को परिस्थिति का दास नही, परिस्थितियों का निर्माता भी है। वह जो कुछ करती है, वह अप्रत्याशित भले ही हो परन्तु असम्भव नहीं। सोमा को साधारण स्त्री से पहाडन में परिवर्तित हो जाना उसके चरित्र का सामाजिक विकास ही कहा जायेगा, न कि नैतिक और चारित्रिक पतन। यशपाल नारी का यही असाधारण रूप समाज मे प्रयुक्त करना चाहते हैं। नारी केवल गृहस्थ तक ही सीमित रहे, यह आवश्यक नहीं। निम्नवर्गीय सोमा भी इसी रूप में चित्रित हुई है। साधारण स्त्री यह सब करने में असमर्थ होती है। जो उसने कर दिखाया। सोमा जैसी नारी के उन्नयन का चित्रण लेखक की प्रगतिशीलता या दार्शनिक मान्यताओं का ही नही बल्कि उसकी सामाजिक चेतना का दृढ प्रतीक है।

मनोरमा

'मनुष्य के रूप' की दूसरी मुख्य नारी मनोरमा पढी लिखी व एम. ए. उत्तीर्ण है। वह कम्यूनिस्ट नेता भूषण से प्रेम करती है। पचहत्तर रूपये पाने वाले भूषण के मन में सामाजिक विषमता के प्रति सामुहिक संघर्ष करने के विचार उत्पन्न होते हैं। मनोरमा उससे शादी का प्रस्ताव रखती है लेकिन वह आर्थिक तालमेल न बैठने के कारण इन्कार कर देता है क्योंकि वह एक सम्पन्न घर की एक मात्र लड़की है।

---

१ मनुष्य के रूप – यशपाल पृ.सं. २३२

चार पुत्रो के पश्चात् एक मात्र कन्या होने के कारण वह अत्यन्त लाडली है।

उपन्यासकार ने उसका परिचय इन शब्दो में दिया है. "मनोरमा लाहौर कालेज मे एम.ए मे पढ रही थी और विलायत जाने का अरमान रखती थी, मनोरमा पतलून पहने, नगे सिर, खूब बडे कुत्ते को चमडे की रस्सी से थामे, लाठी लिए, सूनी सडको पर-शैर करती फिरती थी . यह बहुत कुछ वैसे ही था जैसे अग्रेजी राज में दूसरों के पुत्र को देशभक्ति के दण्ड मे जेल जाते या फॉसी चढते देख भारतवासी उसके नाम की जय पुकारते थे और स्वयम् अपनी सन्तान को यह सब करते देख दुःख और व्यथा से सिर पीट लेते थे।"[१]

धनी परिवार से सम्बन्ध रखने पर भी उसके स्वभाव मे तनिक भी घमण्ड नही है। वह निराश्रिता सोमा को अपने घर आश्रय देती है। सोमा के साथ हमेशा समानता का व्यवहार किया उसे अपनी बहन की तरह रखा तभी एक दिन मनोरमा सोमा से कहती है कि ... "मनोरमा ने अपनी तरह साडी पहनने के लिए कहा था।"[२] इसी उदारता, प्रेम और स्नेह द्वारा वह सोमा को सदैव दिलासा दिलाती रहती।

प्रेम के सम्बन्ध में मनोरमा के व्यक्तिगत विचार है। वह सोचती है... "सभी स्त्रियॉ आश्रय का मूल्य, प्रेम का मूल्य अपने शरीर से चुकाती है। आत्म-निर्भर प्रेम तो वही है जो मूल्य में आश्रय न माँगे। प्रेम के मूल्य में जीवन भर का आश्रय पाया या कुछ रूपये। प्रेम करने का अधिकारी वही है जो आश्रय न मॉगे, जो अपने पाँव पर खड़ा हो।"[३] इस तरह मनोरमा अपने प्रेम का स्वरूप अलग तरह से प्रदर्शित करती है। साम्यवादी विचारों से वह पूरी तरह प्रभावित है। यही कारण है कि वह परम्पराओं तथा रुढ़ियो के प्रति उसका रुख विद्रोहात्मक है। आधुनिकता की वह पोषक है किन्तु अतिवादी एवं उच्छृंखल नहीं है। वह अत्यन्त संयत एवं गम्भीर है।

१. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या ८२
२. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या– ८०
३. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या – ३२१

भूषण के प्रति वह आकर्षित ही नही होती, उससे विवाह करने की भी इच्छा रखती है। भूषण की उदासीनता उसे फिल्म एजेण्ट सुतलीवाला से विवाह करने को बाध्य करती है। पुरुष जाति का मिथ्या दम्भ उसे सहन नही। यही कारण है कि सुतलीवाला की दुर्बलताओ का बोध उसे भीतर ही भीतर आन्दोलित करता है। जीवन मे उसने एक ही भूल की और वह थी निराशा और उन्मेष में सुतलीवाला के विवाह कर लेने की। वह पुरुष पुसत्व खोये हुए था, मनोरमा सोचती... "क्वॉरे जीवन मे वह कौन अभाव था जो अब पूरा हो रहा है ?.. दूसरी लडकियॉ विवाह के बाद कैसी हॅसी भरी, गुदगुदाई-सी जान पडती.. ।"[1] इसके बावजूद भी वह पति की नपुंसकता को भी सहना चाहती ... "लज्जा की अनुभूति उसे होती थी वह शिथिल और उदास रहती, घर उसे पिजडा मालूम होता था, जीवन असह्य था, पति के विचारो के साथ उसकी कहीं भी अनुकूलता नही थी।"[2] विवाह को निबाहने को प्रस्तुत थी, पर वह स्वयं घृणा कर जीवित रहना नही चाहती थी। घर के वातावरण से ऊबकर वह पार्टी का काम करना चाहती है। धन लोलुप सुतलीवाला पत्नी मनोरमा को सेठ की अकशायिनी बना रूपया ऐठना चाहता है। मनोरमा ये अन्याय बर्दाश्त नहीं करती परन्तु प्रत्युत्तर में सुनती है... "तुम क्या अब तक परदे मे रहती आई हो ?"[3] मनोरमा के लिए अब एक छत के नीचे जीवन बिताना कठिन जान पडता लेकिन अपने मायके भी नही लौट सकती क्योंकि विवाह उसने स्वयं अपनी इच्छानुसार किया था वह दोष अपने घर वालों को भी नही दे सकती। वह समझ नहीं पाती है कि वह क्या करें ? घर वापस जा नहीं सकती, "पति उसको अपने प्रयोजन का न समझ कर मुझ पर कुलटा होने का लांछन लगा देने का उपाय कर रहा है। वाह रे समाज का कुचक्र! .... मुझसे चाहे जो भी भूल हुई हो, यहॉ से निकलना मेरे लिए मुक्ति ही है। लेकिन जाऊँ भी तो कहॉ ? बहुत सोच विचार के

---

१. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या – १४७

२. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या १५४

३. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या–१६६

बाद उसे तलाक मे ही अपनी मुक्ति का मार्ग नजर आता है।"[1] मनोरमा का चित्रण यौनाक्रान्त रमणी के रूप में नहीं किया गया, न उसके जीवन के समस्या यौन-अतृप्ति के कारण ही उग्र होती है। वह अपनी बेचैनी से मुक्त होना चाहती है। जीने की ललक उसमें विद्यमान है। अपने जीवन मे सतोष प्राप्त करने की भावना से वह कम्युनिस्ट पार्टी का कार्य करने लगती है। सुविधापूर्ण परिवेश को त्याग कर सहर्ष एक संघर्षशील भूमिका में आने वाला मनोरमा के चरित्र का ये पक्ष कम महत्वपूर्ण नहीं है। नारी होने के नाते मनोरमा का दृष्टिकोण आदर्शवादी एव भावुकताजन्य भूमिकाओं का परिचय देता है। वह धनसिह और सोमा को एक-दूसरे से मिलाने के लिए भूषण को उत्प्रेरित करती है और भूषण इसी क्रम मे घायल होकर अपने प्राण दे देता है। उपन्यास के अन्त में उसकी स्थिति मार्मिक और करुण बनकर रह जाती है। उसे जीवन में सब कुछ मिलकर भी कुछ नहीं मिला। अन्त में हम भी लेखक के साथ कह उठते हैं कि "जाने वह कब उठेगी या न ही"[2] मनोरमा फिर अचेत हो गयी,... उसे कब होश आयेगा ? आयेग भी या नहीं ?

इस तरह मनोरमा का चरित्र उस आधुनिकता के धरातल में खडा दिखायी देता है जहॉ नारी पति का चुपचाप शोषण बर्दाश्त नहीं करती। पत्नी पुरुष की सम्पत्ति नहीं जिसे जैसे चाहे खर्च करों, वह एक जीती-जागती प्राणी है अपने ऊपर अन्याय, चारित्रिक दोष वह क्यों बर्दाश्त करे। उसकी यही विचारधारा उसे सम्बन्ध-विच्छेद की ओर कदम उठाने के लिए विवश करती है। इस प्रकार "मनुष्य के रूप" में तलाक की व्यवस्था को वैवाहिक जीवन की विसगति से मुक्ति पाने का सही मार्ग माना है। जो आधुनिक विचारों की ओर नारी को एक नयी दिशा के रूप में ले जाता है।

---

१. मनुष्य से रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या १६७
२. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृष्ठ संख्या–२४०

अमिता (अमिता)

'अमिता' उपन्यास की बालिका अमिता ही उपन्यास की नायिका है। यह उपन्यास के नामकरण से ही स्पष्ट हो जाता है। अमिता हमे अलिंद में क्रीडा करती हुई, उछलती-कूदती अपने प्रिय कुत्ते बभ्रू के पास आती हुई रंगमंच पर स्पष्ट दिखाई देती है।

अमिता महामहिमामय, प्रजापालक, धर्म रक्षक कलिग राज की पुत्री है। अमिता की आयु छ वर्ष की थी कि कलिग राज की मृत्यु अशोक के आक्रमण के विरुद्ध युद्ध में पाए घावो में हुई। महाराज के अन्तिम श्वास लेने के पूर्व ही राजकुमारी अमिता को राज्यसिहासन की उत्तराधिकारिणी घोषित कर दिया था। अमिता की माता महारानी नन्दा ने संसार से विरक्ति ले ली थी। अमिता ने बौद्धधर्मानुयायी अपनी माता नन्दा से प्राप्त होने वाले नित्य के उपदेश-"किसी को मारो, किसी से छीनो मत, किसी को डराओ मत" को अपने व्यक्तित्व का विशेष अंग बना दिया था। उसका सम्पूर्ण चरित्र इसी उपदेश के अनुकूल होता हुआ दिखायी देता है। जहॉ कहीं भी उसे कोई छीनता, डरवाता या मारता हुआ दिखायी देता है उसकी करुणा बाल सुलभ वाणी में गुॅजरित हो उठती है और वह उसको दण्ड देने के लिए तत्पर हो उठती है। अपने कुत्ते बभ्रु को जब कबूतरों पर आक्रमण करती देखती है तो उसे भी दण्ड देती है..." मामा यह बभ्रु बडा दुष्ट है। यह निरीह कपोतो से छीनता है, उन्हें मारता है, उन्हें डराता है।" अम्मा कहती हैं-"किसी से छीनो मत, किसी को डराओ मत, किसी को मारो मत। हम इसे दण्ड देगे। इसे जंजीर से बाँध कर बन्दी बना दो।"[1] इस तरह अमिता जहॉ भी किसी को मारते, छीनते, डराते देखती है उसको दण्ड देने के लिए व्यग्र हो जाती है। यूथय स्कन्द के साथ भी वह ऐसा ही

१. अमिता – यशपाल, पृ. सं. ६६

व्यवहार करती है। इतना ही नही जब कलिग पर पुन आक्रमण होने के भय से सैनिक कर अपनी तैयारी करते हैं तो अमिता भी वहॉ पहुॅच जाती है। यह पूछने पर कि ये लोग क्या कर रहे हैं जवाब मे जब 'उसे ये खेल है' का उत्तर मिलता है तो वह भी कहती है कि मैं भी यह खेल खेलूॅगी और जब कोई उसकी बात नही मानता तो कुण्ठित होकर बोली. "अच्छा, तो हम अपने आप खेलेगे। अमिता ने कोडे को दोनों हाथों से अपनी पीठ पर मारने के लिए उठाया... वह चोट से तिलमिला उठी।"[१] परिणामतः वह चोट से कराह उठती है। इस प्रकार अमिता का चरित्र बाल सुलभ व बौद्ध दर्शन के आधार पर उज्ज्वल हो उठता है। अमिता के चरित्र का दूसरा पहलू है उसकी निर्भयता, स्वभावगत उन्मुक्तता, संकोचहीनता और खुलापन एक बार अशोक पुनः पराजित कलिग पर आक्रमण करने को तैयार है और कलिंग राज्य पर आत्मरक्षा के लिए दुर्ग-निर्माण का प्रयत्न हो रहा। महारानी नन्दा को बौद्ध धर्म में अगाथ निष्ठा है। इसलिए अमिता के बाल सुलभ मन मे भी ये निष्ठा अन्दर तक समायी हुई है। परिस्थितियों ने उसे ऐसे वातावरण मे रखा हैं कि संकोच, भय और दब्बूपन के लिए वहॉ कोई अवसर नहीं है। इसी का परिणाम है कि वह दिग्विजयी सम्राट अशोक तक से भी निस्संकोच, निर्भयता और धडल्ले से बात करती है—उसे बभ्रु की तरह जंजीर में बांध देने तक की बात कह डालती है। इतनी निर्भयता बाल सुलभ मन·स्थिति पर बौद्ध के धर्म के कारण ही अमिता पर दिखायी पडती है। अमिता का चरित्र यशपाल ने प्रायः बडे ही स्वाभाविक रूप में विकसित किया है। अमिता के राजतिलक के अवसर पर अपने विचार से सामाजिक रूढ़ि की आसंगतियों को बालिका की सरल स्वाभाविकता द्वारा स्पष्ट किया है। .... "बालिका महारानी को बहुत देर तक निश्चल राजसिंहासन पर बैठने की अपेक्षा दासी हिता की उंगली पकड़कर आँगन में उछल—कूद करना या बभ्रु के पीछे उद्यान में दौड़ना

---

१. अमिता – यशपाल, पृ. स. २६।

ही अधिक रुचिकर था। उसे न कलिग की राजेश्वरी बनने मे और न सिहासनारूढ़ होने में कोई सुख जान पडता। न उसका कोई लोभ ही था। "महारानी अमिता के राज्याभिषेक के उपचार रीति कर्म किये जा रहे थे तो उसे लग रहा था कि महामात्य, महासेनापति, राजगुरु और दूसरे बडे बुढे उनका खेल बनाकर उसी प्रकार अपना मनोविनोद कर रहे हैं। जैसे वह स्वयम् दूसरी बालिकाओ के साथ पुतली का ब्याह करके खेलती थी। यह उसे अच्छा न लगा उसने हट किया.. हम राजेश्वरी नही बनना चाहती हिता को राजेश्वरी बनाओ।"

इस प्रकार लेखक ने बालिका अमिता के चरित्र मे बाल-सुलभ नारी भावना का रूप विकसित किया है।

वह अशोक से भी निर्भय होकर बात करती है और किसी से छीनो मत, डराओ मत, मारो मत के उपदेश से अशोक का ह्रदय भी परिवर्तित कर देती है जिससे अशोक जैसा विजयी सम्राट द्रवित होकर यह प्रतिज्ञा कर बैठता है कि वह किसी से छिनेगा नहीं, मारेगा नहीं, डरायेगा नहीं। "अब अशोक हिसा और युद्ध से विजय की कामना नही करेगा। वह कलिंग की विजयी महारानी की भॉति निश्छल प्रेम से संसार के ह्रदयों की विजय करेगा।"[१]

इस प्रकार लेखक ने अमिता के चरित्र के माध्यम से विश्वशान्ति एवं विश्वबन्धुत्व की भावना को बालनारी पात्र अमिता द्वारा मुखरित मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सम्राट अशोक जैसे क्रूर, अत्याचारी, निर्दयी व्यक्ति के ह्रदय परिवर्तन को भी बदलने में अपनी अहम् भूमिका निभाती है जो आधुनिक समय में विश्वशान्ति प्रेम, सद्भावना एवं मैत्री का बोध कराती है। कहना न होगा कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अमिता का चरित्र हिन्दी कथा साहित्य में अनूठा और अपूर्व है।

---

१. अमिता – यशपाल, पृ. सं. १६६

अन्य स्त्री पात्र

सुनन्दा

महाराजा करवेल के मृत्यु के पश्चात् उनकी पत्नी महारानी नन्दा संसार से विमुख होकर अभिधर्म मे शान्ति और सतोष पाती हैं। महास्थिविर जीवक की चमत्कारिक सिद्धियो के प्रति उनके मन मे अटूट विश्वास है। महास्थिविर की इच्छा के विरुद्ध वह कोई भी कार्य नही करना चाहती। महास्थिविर के परामर्श से ही वह आचार्य द्वारा प्रसारित नगर में महाबलि यहा को भी बन्द करवा देती है।

महारानी सुनन्दा के चरित्र मे अहिसा करुणा और ममता के रूप देखने को मिलते हैं उसमे बौद्ध और गांधी दर्शन का सम्मिलित रूप मिलता है। उनकी वेशभूषा में सादगी झलकती है... "सोने कलशा लिए दासी के पीछे ड्योढी मे कलिंग की राजेश्वरी सुनन्दा राजहंसिनी के समान मन्द गति से आती दिखायी दी। महारानी का शरीर रूखे काले केशों से कमर तक हिम के समान श्वेत दुशाले से ढका था। कमर से पाँव के नखों तक भी श्वेत रेशमी वस्त्र का अन्तरवासक लिपटा हुआ था। महारानी माथे को तनिक झुकाए हाथ जोडे मंत्र पाठ करती हुई चल रही थी।"[1]

महारानी प्रज्ञा वत्सल हैं, तटस्थ होकर वे प्रजा की प्रत्येक बातें सुनती और अपने विश्वास के विरुद्ध वे महामात्य या अन्य किसी की भी बात न सुनती। अशोक के आक्रमण से पूर्व उत्तर द्वार पर दुर्ग की आवश्यकता होते हुए भी वे प्रजा का कष्ट नहीं देख सकती। वे दुर्ग के लिए भूमि छीनना पाप समझती है। वे अमात्य से

---

१. अमिता – यशपाल, पृ.स. १०

कहती हैं "अशोक जो कल करेगा उसे वे आज ही करना नही चाह रहे हैं। यदि अशोक पाप करेगा तो उसका फल भी वही पायेगा।"[1] उनके विचार मे इहलोक और परलोक दोनो ही लोको का लोभ आसक्ति है। यह कर्मयोग नही, बन्धन है।

महारानी सुनन्दा का चरित्र वस्तुत धर्म के प्रति अन्ध श्रद्धा का प्रतीक है इसीलिए उनमे प्रतिक्रियावादी शक्ति ही कार्यरत दिखायी पडती है। सुनन्दा बौद्धधर्मानुयायी होते हुए आस्था व विश्वास की वह मजबूत कडी हैं जो उपन्यास में अनवरत रूप से प्रक्षेपित करते हुए अपनी पुत्री अमिता के जीवन मे "किसी से छीनो मत, मारो मत, डराओ मत के रूप में पल्लवित होते दिखायी देती है।

तारा (झूठा–सच)

तारा यशपाल की अत्यन्त सजीव और प्रगतिशील चरित्र सृष्टि है। प. रामलुभाया की पुत्री और जयदेवपुरी की बहिन है। तारा के जीवन की सबसे बड़ी समस्या उसका प्रगतिशील होना है। सामाजिक, आर्थिक, विषमताओ और रूढियों से ग्रस्त परिवार में पली बढी होने के कारण उसका मन हीन भावना से ग्रस्त है तारा उपन्यास में एक परम्परावादी सामाजिकता को लेकर उपस्थित होती है। वह मध्यवर्गी य आदर्श चतुर तीव्र बुद्धि और गम्भीर नारी की प्रतीक है जिसका जीवन कंचन अनेक कठिनाइयों की अग्नि में तपकर अन्त में प्रदीप्त हो, सबको प्रकाश दिखाता है, कालेज में तारा एम॰ ए॰ पढने का विचार करती है, उसकी तीव्र इच्छा है कि पढ़ लिखकर विद्वान और योग्य पुरुष से विवाह करे उसके विचार में स्त्री अपने से कम योग्य अथवा हीन व्यक्ति के प्रति कभी भी श्रद्धा या प्रेम नहीं कर

---

१. अमिता – यशपाल, पृ.सं. ४४

सकती.. " विवाह कभी करूगी तो खूब विद्वान प्रतिभावान व्यक्ति से ही . अपनी अपेक्षा हीन आदमी से क्या विवाह ? . स्त्री अपनी शोभा अपने से बढकर पुरुष को पाने में ही समझ लेती है, स्त्री स्वयम् अपने योग्य पुरुष से हीन क्यो रहना चाहती है।"[१]

रूढिवादी परिवार मे जन्म लेने के कारण उसके ये विचार टूटकर बिखर जाते हैं उसको नही आगे पढने का अवसर प्राप्त होता है और न ही उसका विवाह योग्य पुरुष से होता है। जातिगत भेद-भाव उसमे नही दिखायी पडता वह हिन्दू होकर भी मुसलमान युवक असद से न केवल प्रेम करती है बल्कि उससे विवाह भी करना चाहती है। उसका विवाह जब दुराचारी, लम्पट, पुरुष सोमराज से तय होता है तो वह असद से विवाह करने के लिए कहती है, परन्तु परिस्थितिवश वह सोमराज से विवाह करने को बाध्य होना पडता है। यही से तारा के व्यक्तित्व पर बदलाव आता है और उसके दुर्भाग्य की कहानी शुरू होती है। तारा का सहज जीवन विकास उस समय अचानक अवरुद्ध हो जाता है, जब वह चारों ओर रूढ़िवादिता जाती है, वह स्वयम् निर्णय लेने में अपने आपको असमर्थ पाती है। कोई भी उसका समर्थन करने के लिए आगे नही आता। जिस भाई पर उसने भरोसा किया वह भी उसका साथ नहीं देता, विवश प्रेमी भी इस विवाह से उसे बचा नही सकता। जिसकी परिणति एक निकम्में उच्छृंखल व्यक्ति सोमराज से होता है।. तारा के विवाह के सुनहले सपने चूर-चूर हो जाते हैं परन्तु विवाह हो जाने पर वह एक भारतीय पत्नी की भॉति विवाह की प्रथम संध्या में पति से प्रथम परिचय की कल्पना से रोमांचित हो उठती है अनेक मधुर-भावनाओं को लिए वह सोमराज की प्रतिक्षा करती है... "उसके कंधों पर लाल शिफान का झीना दूपट्टा था। सोचा घूँघट कर ले, उस घूँघट में दिखता

---

१. झूठा–सच – यशपाल, पृ. स. ६१

क्या नही है ? सोचा, उनके आने की आहट पाकर घूँघट कर लेगी। कहेंगे तो हटा देगी। यह हटा लेने देगी।". तारा के कान उन शब्दो के लिए आतुर थे जैसे सीप स्वाति नक्षत्र की बूँद पा लेने के लिए अपने पटु खोल देती है।"[1] लेकिन उसके स्वप्न चकनाचूर हो जाते है जब सोमराज उसे प्रेम के बदले गालियॉ देता है, उसे पीटता है इस कारण क्योकि पहले सोमराज को यह मालूम होता है कि तारा उसे अपने योग्य नही समझती, तारा अपने सम्मान की रक्षा के लिए एक ही वाक्य बोलती है... "खबरदार हाथ उठाया तो।"[2]

सोमराज की बलिष्ठ भुजाओ के आगे उसका वश नही चलता और उसकी विवशता, उसकी शिसकियों और ऑसूओ मे बदल जाती है। उसी समय साम्प्रदायिक दंगा होने से घर में आग लग जाती है उसका पति सोमराज तारा को छोडकर भाग जाता है और तारा विवश होकर किसी तरह बाहर निकलती है यही से जीवन की राह कंटिली हो जाती है। वह अन्त तक परिस्थितियो का सामना एक साहसी स्त्री की तरह करती है। उसे जीवन के नये-नये अनुभव होते हैं। वह एक गुण्डे नब्बू के हाथों में पड जाती है नब्बू के हाथों उसे जो यंत्रणा सहनी पड़ती है उसे पढकर हृदय दहल जाता है... " मर्द ने तारा को कोठरी में ले जाकर उसे विवाह के समय पहनायी गई। सोने की चूडिया और गले का हार उतार लिया... मर्द ने सिगरेट समाप्त करके खाट से उठा उसने ऑगन में रखे घडे से पानी पिया। ... जलें सिगरेट को नीचे ईटों के फर्श पर रगडकर बुझा दिया और तारा की ओर करवट लेकर पुकारा। यहॉ आ चारपाई पर।"[3] नब्बू ने तारा का विरोध समाप्त कर देने के लिए उसकी सलवार फाडकर परे फेंक दी। कमर पर सलवार का केवल ऊपर का कुछ भाग ही नाले से बंधा रह गया इस पर भी तारा ने आत्मसमर्पण नहीं किया

---

१. झूठा–सच – यशपाल, पृ. स. ४०१
२. झूठा–सच – यशपाल, पृ. सं. ४०२
३. झूठा–सच – यशपाल, पृ. स. ४०१

उसके इस हट से चिढकर नब्बू ने तारा की बाहे को पीठ के पीछे कधे की ओर इतने जोर से मरोडा कि वह तडपकर और चीखकर बेहोश हो गयी।"[१] इसके पश्चात् इतनी यातनाओ को सहते हुए उसे एक मुस्लिम परिवार मे आश्रय मिलता है। मुस्लिम हाफिज के यहॉ उसे स्नेह और प्यार तो मिलता है लेकिन इस्लाम धर्म न स्वीकार करने के कारण उसको यहॉ भी निराशा मिलती है। शारीरिक यंत्रणा से भी अधिक मानसिक क्लेश होता है नब्बू और सोमराज ने उसे शारीरिक यत्रणा दी परन्तु हाफिज तो उसका हृदय, मस्तिष्क और धर्म तक बदल देना चाहते हैं। मनुष्य के पास यही दो वस्तुऍ उसकी अपनी होती है जिसके कारण वह अपने आप को स्वतंत्र कह सकता है। यह विचार करके वह अपना दृढ निश्चय हाफिज जी को सुनाती है। ... "ताया जी आपकी और काजी के मुझ पर बहुत एहसान है लेकिन अपनी समझ और दिमाग को क्या करुँ अल्लाह, ईश्वर की इच्छा से जैसे-पैदा हुई हूँ वैसे ही मरने दीजिए " आप मेहरबानी करके मुझे हिन्दुओ के कैम्प मे पहुॅचा दीजिए। फिर आगे मेरी किस्मत होगी।"[२]

कैम्प पहुॅचने से पूर्व बन्ती, संतवन इत्यादि की भॉति काल कोठरी में उसकी दुर्दशा का चित्रण अतिरंजितपूर्ण जान पड़ने पर भी असम्भव और अविश्वसनीय नही। पारस्परिक घृणा, द्वेष और सघर्ष की ऑधी में लाखों हिन्दुओं व मुस्लिम नारियों को इस प्रकार के असीम दुःख सहने पडे थे। नारी जाति के प्रति असीम करुणा उसमें भरी पडी है तभी तो वह बंती को उसके घर पहुॅचाने के लिए जाती है और रात वापस न आ सकने के कारण कैम्प की अन्य स्त्रियॉ उसके चरित्र पर दोष लगाने से भी नहीं चूकती...

---

१. झूठा–सच – यशपाल पृ. सं. –४०२

२. झूठा–सच, भाग एक – यशपाल, पृ. सं. ४०६–४१२

"कहॉ गई थी तू ? रात कहॉ रही ? निहाइदेई ने धमकी से प्रश्न किया।"[1] तारा को अपने ऊपर दोषारोपण का कोई दुख नही था। दुख था तो बती के सर पटक-पटक कर मर जाने का उसका तो घर था, पति था, बच्चा था, लेकिन चरित्र के ऊपर लाछन लगाने के कारण उसे पुन. घर मे शरण नही मिलती। वह स्त्री होने के नाते एक स्त्री का पीडा को समझ सकती है। तारा जीवन मे अनेक प्रकार के अनुभव पाती है। वह शिक्षित होने के कारण कैम्प में लिस्ट बनवाने का कार्य करती है। वह मिसेस अग्रवाल के घर खूब काम करती है परन्तु जहॉ उसके चरित्र पर सन्देह किया जाता है वह उस घर को छोड कर किराये का अलग कमरा लेकर रहने लगती है। तारा का हृदय अत्यन्त विशाल होने के कारण तथा अपने कार्य तथा सुशील व्यवहार के कारण वह सबकी आदर्श बनती है तभी तो खुशीराम मेहता ने तारा के सामने हाथ जोडकर प्रार्थना की "हमारी माताजी की आपसे विनती है कि आप ही बच्चीं का नाम रखें।"[2] तारा इतना सम्मान पाने के कारण ऑखें भीग आयी और जब बच्ची का नाम उसी के नाम पर 'तारा' रखा जाता है तो वह मन मे सोचती है... "नही, जो मैंने भोगा है, कोई न भोगे।"[3] तारा ने अपने आपको सम्भाला। कण्ठ रुंध जाने के कारण मुख से केवल इतना कह सकी- "सुखी हो। उसका कल्याण हो।[4]

डॉ॰ प्राण नाथ और तारा का सम्बन्ध धीरे-धीरे घनिष्ठ और आन्तरिक होता जाता है और एक ऐसा अवसर भी आता है जब तारा से उसका विवाह हो जाता है। वैचारिक स्तर पर यह विवाह तारा के लिए अत्यन्त सफल होता है उसने अपने पति के विषय में जैसा सोचा था अन्त में उसी सोच का मिल जाने के कारण तारा अपने जीवन की तमाम यातनाओं को भूल जाती है। इस तरह उपन्यास में तारा के

---

१. झूठा–सच, भाग एक – यशपाल पृ. सं. ४०२
२. झूठा–सच भाग दो – यशपाल, पृ. सं. २६१
३. झूठा–सच भाग दो – यशपाल, पृ. सं. २६१
४. झूठा–सच भाग दो – यशपाल, पृ. सं. २६१।

चरित्र के साथ सहृदय पाठकों का पूर्ण तादात्म्य हो जाता है और वह उसके साथ हॅसता है, रोता है, यही चरित्र-चित्रण की सबसे बडी सफलता होती है जो यशपाल जी ने तारा के माध्यम से उपन्यास मे दिखायी है।

तारा के चरित्र के माध्यम से उन नारियो की विवशता का प्रतिकार ढूँढने का उपक्रम किया गया है जो परम्परा से विच्छिन्न हो प्रगति के मार्ग पर अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। आधुनिक धरातल पर तारा का चरित्र आज की नारी की प्रगति के सन्दर्भ मे एक अनूठा उदाहरण है।

कनक

कनक उपन्यास की दूसरी प्रमुख नारी है जो अपनी विशिष्टताओ के कारण नारी जीवन के दूसरे पहलू पर प्रकाश डालती है। कनक उच्चवर्गीय रूढियुक्त परिवार की नारी है और स्वतत्र आधुनिक नारी के रूप मे प्रस्तुत हुई है जो आत्मनिर्णय तथा आत्म सम्मान के भाव को सदैव बनाए रखती है। कनक जयदेवपुरी को हृदय से चाहती है। पुरी ने जब कनक के सामने अपनी हीन आर्थिक स्थिति स्पष्ट की तो वह उत्तर देती है कि वह पुरी की ओर उसकी महानता के कारण आकर्षित है। धन के कारण नही, कनक ने फिर ऑखों में ऑसू भरकर प्रतिवाद किया।.. "पैसे का क्या है ? मैं पैसे की भूखी हूँ। आप की कला और व्यक्तित्व की महत्ता को कौन नही जानता।"[1]

कनक कल्पना मे पुरी के प्रेमचन्द शरद गोर्की जेसे महान लेखक के स्वप्न देखती है। व्यक्ति के आर्थिक हैसियत के स्थान पर वह मनुष्यत्व को महत्त्व देती है। यही कारण है कि वह गरीब पुरी से प्रतिभा और गुणों के कारण अपने सम्पन्न

१. झूठा–सच – यशपाल पृष्ठ सं. ५३

परिवार घर–बार सब कुछ छोडने को तत्पर है, जयदेव की नौकरी के लिए वह स्वयम् सक्रिय होती है। पारिवारिक विरोधो के बावजूद भी वह पुरी को अपने जीवन मे पाना चाहती है, अनेक बाधाओं को सहते हुए वह पुरी के उपन्यास के दूसरे भाग देश का भविष्य मे एक समाचार पत्र का सम्पादक के रूप मे पाती है। लेकिन पुरी का उर्मिला के साथ सम्बन्ध देखकर उसको फिर से स्वीकार करने के लिए राजी नही कर पाती है। किन्तु पुरी का आकर्षण उसे विवाह के बन्धन मे बांधता है। विवाह के पश्चात् एक पत्नी और एक मित्र दोनो रूपो मे जयदेव के जीवन मे प्रवेश करती है परन्तु जयदेव के विचार जब उसके आत्मसम्मान को तोडते दिखायी देते हैं तो अपने को मात्र भोग्या और दासी के रूप मे ही खडी पाती है। जिस पुरुष के सुसंस्कृत उच्च विचारो के लिए घर के सभी लोगों से विरोध करती है। उसी को अपनी आशाओं के विपरीत पाकर उसके आत्मसम्मान को गहरा धक्का लगता है। पति का दबाव भी उसे साथ रहने के लिए विवश नही कर पाता। स्वतत्र अस्तित्व की चाह से उसके दाम्पत्य जीवन मे बिखराव आता है अत· वह पति से अलग हो जाना चाहती है। . "विवाह किया था तो दासी, रखैल या कीर्तदासी तो नही हूँ मेरा कोई अस्तित्व ही नही।"[1] वह पति का ग्रह त्यागकर पिता के घर आ जाती है पिता कनक के लिए चिंतित है, परन्तु बेटी पर अपने विचार लादना नहीं चाहते।

कनकपुरी से वैचारिक सामञ्जस्य न मिलने के कारण उसे तलाक देती है और गिल से पुनर्विवाह कर लेती है। कनक में आत्महत्या या आत्मपीडन की प्रवृत्ति नही है। क्यों उसमें नारी का स्वतत्र व्यक्तित्व झांकता है। वह जीवन की भूलो पर बलिदान नहीं करना चाहती। उससे ऊपर उठना चाहती है और इस प्रयत्न में वह सफल भी होती है। अपनी पुत्री जया को वह अपने साथ ही रखती है।

---

१. झूठा–सच – यशपाल, पृ.सं. ५७५

यशपाल ने कनक के चरित्र के माध्यम से समाज मे उन नारियों का वर्णन किया है जो अन्याय के विरुद्ध झुकती नही। प्रेम को अपना लक्ष्य नही मानती बल्कि एक सीमित मार्ग तक उसे स्वीकार करती है।

प्रेम जब हदे पार करने लगता है तो वह ये अन्याय बर्दाश्त नही करती। कनक का दाम्पत्य जीवन पुरी के काम सम्बन्धो की अतिशय मार्ग के कारण वह उसके विचारो मे भ्रष्टाचार और दुराचार का बदलाव ही वैचारिक तालमेल न बैठने के कारण सम्बन्ध विच्छेद की स्थिति तक उसे पहुँचाता है। वह आजीवन पुरी की यादो मे अपना जीवन नष्ट भी नही करना चाहती और गिल से विवाह करने के लिए समाज के सामने आती है।

इस तरह कनक के चरित्र के माध्यम से लेखक ने प्रगतिशीलता की जो लहर नारी जीवन मे दौडायी वह आज तक अनवरत गति से चलायमान है।

अन्य नारी पात्र

शीलो

इस उपन्यास मे शीलो तारा की तैयरी बहन के रूप मे चित्रित होती है जो अधिक पढी-लिखी नहीं है। सगाई होने के बाद भी वह रतन से न केवल प्रेम बल्कि शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित करती है। परन्तु माता-पिता की इच्छानुसार उसका विवाह मोहन से हो जाता है। परन्तु शीलो प्रेम और विवाह को अलग-अलग दायरे में रखती है उसका प्रेम का दायरा अत्यधिक विस्तृत है जिसका परिणाम रतन का

बच्चा है। "मोहब्बत का धर्म अपनी जगह है, घर-बार का धर्म, ब्याह अपनी जगह, मोहब्बत की तो रीति ही ऐसी चली आयी है। बडो ने भी वही किया है, कृष्ण जी का गोपियो से राधा जी से प्रेम था तो उनके लिए रुक्मणी जी को छोड दिया था ?"[१]

इस तरह लेखक ने शीलो के चरित्र के माध्यम से भी मुख्य बातो पर दृष्टि डाली है पहली प्रेम विषयक दृष्टिकोण जिसमें शीलो प्रेम की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए पाश्चात्य सस्कृति की द्योतक है जबकि विवाह को भारतीय सस्कृति की परम्पराओं को निभाते हुए मोहन के साथ विवाह करने को अपने दूसरे धर्म का निबाह करती है। इस प्रकार शीलो पाश्चात्य व भारतीय संस्कृति के रूप को स्वीकार करते हुए दोनो का समन्वयित रूप समाज के सामने उपन्यासकार यशपाल ने प्रस्तुत किया है।

उर्मिला

उर्मिला का चरित्र अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। उपन्यास के प्रारम्भ में उसकी उच्श्रृंखलता और काम पीडित भूमिका उसके चरित्र को उद्घाटित करती है। जीवन में तमाम उतार-चढाव आने के कारा कलान्तर मे परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से निरीह और असहाय जीवन पर जीने के लिए उसे विवश होना पडता है।

उर्मिला जयदेव पुरी के पत्नी रूप मे रहती है। लेकिन पारम्परिक विधि से पुरी उससे विवाह नही करता और एक दिन उसके मॉ बनने की खबर सुनकर उसे

---

१. झूठा–सच – यशपाल, पृ. सं. २०८

विधिवत् रूप से पत्नी बनाने के लिए विचार करता ही है कि अचानक पूर्व प्रेमिका कनक के आ जाने पर वह उसे असहाय अवस्था मे छोड देता है। उर्मिला का परिवार बटवारे के कारण छिन्न-भिन्न हो गया था और उर्मिला लाहौर मे विधवा हो गई। बार-बार आत्महत्या का प्रयत्न करने पर भी वह पुरी की मदद से बच तो जाती है लेकिन जीवन भर के लिए पुरी के जीवन मे उसे पनाह नही मिलती।

पुरी के शब्दो मे उर्मिला का यह परिचय कि वह "वचिता, निराश्रय और अकेली नही है।"[1] जीवन की ओर जीने के लिए नयी राह दिलाती है। उर्मिला की स्थिति तब और भी कारुणिक हो जाती है जब जयदेव के प्रति इस विश्वास के साथ कि वह उससे विवाह करेगा, पूर्णत. समर्पित हो जाती है और जयदेव के ठुकरा दिये जाने पर वह विवश और लचार बनकर इस दुर्भाग्य को स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जाती है। यही से उसका चरित्र एक नया मोड लेता है। एक बार गिरकर वह गिरती ही चली जाती, बल्कि परिस्थितियों के सामने साहसपूर्वक आ खडी होती है। यहॉ पर अपनी विषमताओ को सहते हुए उसे यह अहसास हो जाता है कि आत्मनिर्भरता ही नारी की अत्याचारो से मुक्ति दिला सकती है, अत. नर्स बनकर और तत्पश्चात् डॉ मोगिया से विवाह कर वह अपने भाग्य की निर्मात्री स्वयं बन जाती है, और अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करती है। इस तरह उर्मिला के चरित्र के माध्यम से लेखक ने सजीव व आत्मनिर्भर नारी का चित्र समाज में प्रस्तुत किया है। उपन्यास की अन्य नारी पात्रों मे बती का चरित्र भी बड़ा मार्मिक बन पडा है। देश के विभाजन के समय मुसलमानो द्वारा अपमानित भूखी-प्यासी बंती अपने पति व पुत्र की खोज में उन्हें ढूँढती फिरती है और अन्त मे उन्हें प्राप्त कर के भी नही प्राप्त कर पाती। उसका पति उस पर चारित्रिक दोष का आरोप लगाते हुए

---

१. झूठा–सच – यशपाल पृ. सं. ३०५

उसे पुन घर मे प्रवेश करने नही देता और उसके मातृत्व के हक को भी उसके पुत्र छीन कर देता है।

बती अपने पति द्वार पर ही सिर पटक-पटक कर मर जाती है रूढिवादी समाज मे पति को ही परमेश्वर मानने वाली स्त्रियॉ की दशा का वर्णन लेखक ने बती के चरित्र के माध्यम से किया है। बती का चरित्र जहॉ एक ओर पाठक के हृदय पर गहरा प्रभाव डालता है। वही दूसरी ओर पुरुषो की रूढिवादिता स्वार्थी वृत्ति एव शोषण के प्रति एक तीखी प्रतिक्रिया भी उत्पन्न करता है। बती समाज उन नारियो का प्रतिनिधित्व करती है जो दोष रहित होते हुए भी अपने को निर्दोष प्रस्तुत करने मे असमर्थ है।

अन्य पात्रों मे मर्सी और डॉ॰ श्यामा का भी उल्लेख किया जा सकता है, जो प्रेम और विवाह की समस्या तक ही सीमित प्रतिक्रिया करके रह जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नारी पात्र भी सामाजिक जीवन के विभिन्न वर्गो का प्रतिनिधित्व करते है। इन नारी पात्रो में स्वतंत्र विचारो एव आधुनिक विचारो वाली नारियॉ हैं। जो भारतीय समाज मे नारी की स्थिति और समस्याओ पर भी प्रकाश डालते हैं।

विनी (बारह घंटे)

'बारह घटे' उपन्यास की नायिका विधवा विनी है। ग्यारह महीने पूर्व अपने पति रोमी के साथ नैनीताल आयी थी। यही पर उसका पति झील मे डूबकर मर गया था। पति की मृत्यु के बाद विनी को अपना जीवन कठिन जान पडा पति की यादे ही उसको अकेलेपन से छुटकारा दिलाती। लखनऊ से पति की कब्र पर फूल चढाने वह नैनीताल आती है। यही पर उसकी बडी बहन जेनी रहती है। फूल मुरझा न जाय ये सोचकर वह तुरन्त ही समाधि पर जाने के लिए व्यग्र रहती है। " नैनीताल के कब्रिस्तान के फाटक से पति की समाधि की ओर बढते हुए विनी की ऑखें छलछला आयी परन्तु पति की समाधि पहचान लेने मे कोई असुविधा नही हुई। समाधि के सिरहाने की ओर दाये हाथ अन्य कब्रो के लिए स्थान अब भी खाली थे।"[1]

विनी अपने एकाकीपन से उब गयी है। वह स्वयम् ही मरने की सोचती है इस तरह की बातें उसकी बहन जेनी को चिंतित कर देती हैं। विनी अपने गहरे शोक को किसी से नही बांटती थी। ... "शोक मे डूबी वह न दूसरों को देखना चाहती थी और न अपना अभ्यन्तर दूसरों को दिखाना चाहती थी।"[2] यही पर उसकी मुलाकात फेंटम से होती है अपनी पत्नी शैल की समाधि पर फूल चढाने आता है अचानक वर्षा होने के कारण विनी और फेटम दोनो को ही कब्रिस्तान मे रुकना पडता है। फेंटम और विनी दोनों ही अपने दर्द से पीडित हैं। यहि कारण है कि दोनों की सहानुभूति एक दूसरे के साथ है। विनी जो अब तक अपने पति की स्मृतियों में खोई रहती है। वहीं विनी फेंटम के दुःख से द्रवित हो उठती है। फेंटम की व्यथा उसको इस कद्र द्रवीभूत करती है कि वह जेनी के घर न जाकर फेंटम के घर चली जाती

---
१. बारह घंटे – यशपाल पृ. सं. १०

२. बारह घंटे – यशपाल, पृ. सं. १२

है और एक-दूसरे के लिए सहारा बन जाते हैं। विनी मार्क्सवादी यशपाल की ऐसी सर्जना है जिसके माध्यम से लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि प्रेम इतनी प्रबल अनिवार्य पार्थिव आवश्यकता है जिसकी उपेक्षा किसी भी तरह सम्भव नही। प्रत्येक मनुष्य के जीवन मे प्रेम जीवन जीने का सहारा है बिना सहारे के अभाव मे जीवन टिके नही रह सकते। प्राचीन सस्कारो वाली विनी के साथ यह घटना घटित हुई है पहले वह पति की मृत्यु के साथ ही मर जाना चाहती है लेकिन जब फेंटम उसे अपनी पत्नी शैल के वियोग मे तडपता दिखायी देता है तो उसके प्राचीन सस्कार धूमिल पड जाते हैं। वह सोचती है कि यदि वह मर गयी होती तो उसका पति भी इसी तरह दुखी होता। इसी तरह विनी के हृदय में परिवर्तन दिखाकर उसे फेटम की ओर आकर्षित करते हैं। इस प्रकार बारह घण्टे उपन्यास में विनी के माध्यम से आधुनिक परम्पराओ को अपने ऑचल मे समेटती हुई विधवा पुनर्विवाह की ओर उन्मुख करने मे अपनी अहम् भूमिका निभायी है।

जेनी

बारह घंटे की जेनी परम्परावादी रुढिग्रस्त भारतीय समाज की बुर्जूआ को मान्यताओं को ढोती हुई उपन्यास मे चित्रित हुई है। विनी का घर लौटने में देर होना उसे चिन्ता का कारण बनाता है। लेकिन विनी का पत्र पाते ही जेनी का दूसरा रूप देखने को मिलता है यहि नारी का पारम्परिक रूप है। जो चाहता है कि वह वैधव्य भोगें परन्तु दूसरा विवाह न करे पति की मृत्यु के बाद भी सामाजिक बन्धन पत्नी का पीछा नही छोड़ता। सारे कर्त्तव्य उसी के हिस्से आते हैं। इस पत्र से जेनी की मान्यताओं को चोट पहुँचती है। वह कहती है... "मर जाये डाइन, क्या सन्देशा

भेजा है। उफ् इन्सान भी क्या है ? सुबह किस हालत मे गयी थी और बारह घटे मे ही बदल गयी लानत है ऐसे लोगो पर।"[1]

विनी यदि पति की याद मे रोती रहती उदास रहती तो जेनी जैसी स्त्रियों के लिए करुणा का पात्र बनती है। लेकिन विनी का विधुर फेटम के साथ रहना जेनी जैसी परम्परावादी स्त्रियो को कबूल नही। जेनी के आचरण मे दिखायी पडने वाला अन्तर्विरोध भारतीय समाज मे व्याप्त अन्तर्विरोधो का सूचक हैं। आचरण के स्तर पर वह अपने लिए हर तरह की छूट पाती है। पर दूसरे के सन्दर्भ में अत्यन्त कठोर और जड है। अपने पति पामर के रहते हुए भी वह लारेस से प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने मे कोई आपत्ति नही मानती लेकिन नि सहाय बेसहारा विनी जब अपना सहारा ढूँढ लेती है तो उसे औचित्य और निष्ठा का महानाश दिखायी पडने लगता है। जेनी जैसी कई महिलाएँ समाज मे विद्यमान है जो रूढिवादिता को तो स्वीकार करती है लेकिन स्वय उसमे बध कर नही रहना चाहती प्रगतिशीलता अपने मे देखना चाहती है लेकिन दूसरों को आगे बढ़ना नहीं देख सकती। विनी यदि पति के वियोग मे आत्महत्या कर लेती तो जेनी के लिए वह महान बन जाती। विनी ने जब अपना सहारा ढूँढ लिया तो वह 'कुतिया' तक बन जाती है। इस तरह यशपाल जी ने जेनी व विनी के चरित्र के माध्यम से ये दर्शना चाहा है कि समाज मे रूढिवादिता और प्रगतिशीलता दोनों ही है हम जब तक रूढिवादिता को एक सीमा तक छोडेगे नही तब तक प्रगतिशीलता की ओर नहीं जा सकता। विधवा विवाह की ओर उन्होंने समर्थन ही नहीं बल्कि विनी को हृदय में परिवर्तन लाना ही मुख्य उद्देश्य है।

---

१. बारह घटे – यशपाल, पृ. सं. ६७

यशपाल ने जेनी के चरित्र के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि प्रेम आत्मिक सम्बन्ध नही, भौतिक आवश्यकता की पूर्ति का साधन है। जेनी अपने पति पामर से पूर्णत पार्थिव सन्तुष्टि नही पाती, इसीलिए तो वह लारेस के प्रति आकृष्ट है। यदि प्रेम का सम्बन्ध आत्मिक होता तो वह लारेंस के प्रति आकृष्ट ही क्यो होती ? इस तरह जेनी जब पति रहते अन्य पुरुष की ओर आकृष्ट हो सकती है तो विनी को पति की मृत्यु के पश्चात् आकृष्ट होता देख क्यो उसे 'कुतिया' बनाती है।

हमारे समाज की नारी स्थिति की यही सबसे बडी विडम्बना है कि वह स्वयं ही एक-दूसरे के मार्ग की बाधक बनती है। आधुनिक परिवेश में यह आवश्यक नहीं रह गया है कि पत्नी सदैव स्मृतियो को लेकर जिये। विनी का फेटम के साथ रहना तर्क सगत है। जेनी जो विनी की बहन होते हुए भी इस बात को समझकर भी नहीं समझना चाहती। यही उसके चरित्र की सबसे बडी दुर्बलता का सूचक है।

(अप्सरा का श्राप) मेनका

'अप्सरा का श्राप' में मेनका लेखक के विचारो और नवीन दृष्टिकोणो का वहन करने वाली मनुष्य नारी पात्रो में से है। लेखक ने उसे आधुनिक व्यावहारिक मानवीय दृष्टिकोण के आधार पर प्रगतिशील चेतना की प्रतीक दिव्यागना के रूप में चित्रित किया है। वह किसी भी ऐसे धर्म का ... "पतिव्रत धर्म का भी खुलकर विरोध करती है। मेनका की दृष्टि में व्रत अथवा धर्म तभी तक मान्य है जब तक वह व्यक्ति के आत्मोत्थान मे सहायक है। यहि व्रत अथवा धर्म जब आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाएं तो वह त्यागने योग्य हो जाता है इसी की सृष्टि सम्पूर्ण उपन्यास में मेनका द्वारा उत्पन्न पुत्री शकुन्तला को भी देती है। मानवी सतान के रूप में वह

पुत्री शकुन्तला के प्रति दुष्यत की क्रूरतापूर्व व्यवहार सुनकर दुख से विहवल हो जाना और पुत्री के लिए मात्र सत्तात्मक समाज की व्यवस्था करना उसके आधुनिक मानवीय दृष्टिकोण एव प्रगतिशील व्यक्तित्व का द्योतक है।

मेनका अपनी पुत्री शकुन्तला के प्रति मोह ही उसे बॉधे रखता है। इसीलिए मेनका ने मानवीय सतान "शकुन्तला की अवस्था और गतिविधि का ध्यान रखने के लिए अप्सरा सानुमती मृत्युलोक की ओर दृष्टि लगाये रहती थी।"[1] इस तरह मेनका अपनी पुत्री की क्रिया कलापो का समाचार सानुमती द्वारा प्राप्त करती रहती है। माता के कर्त्तव्य मे मेनका का चिन्तित होना स्वाभाविक चरित्र की सृष्टि करता है। दुष्यन्त द्वारा तिरस्कृत शकुन्तला जब पुन आश्रम मे चली जाती है तो उसे बडा दु ख होता है। "मेनका अपनी कथा के प्रति दुष्यंत के दुर्व्यवहार से विरक्ति के कारण राजा के सम्मुख तथा समीप न गई।" वह नही चाहती थी कि पुरुष नारी पर निरंकुश शासन करे या उसे केवल अपने भोग की वस्तु मानकर धन सम्पत्ति की भॉति उसकी रक्षा करें और उस पर एकाधिकार रखे। इसीलिए वह दुष्यन्त के व्यवहार के प्रति आक्रोश कर बैठती है। मेनका में आत्मसम्मान की भावना बलवती है। मानवीय न्याय की भावना से ओतप्रोत मेनका, पति के रूप में पुरुष की अनैतिकता को कदापि स्वीकार नहीं करती और न ही स्वीकार करने वाली नारी को उचित मानती है। इसीलिए जब वह सुनती है कि उसकी पुत्री शकुन्तला पति के पश्चाताप से द्रवित होकर शकुन्तला पति द्वारा ठुकराये जाने पर भी उसकी गल्ती को क्षमा करके हस्तिनापुर लौटने को तैयार है तो उसे गहरा आघात पहुॅचता है और उसी समय वह पृथ्वी पर अवतरित होकर शकुन्तला के इस कृत्य की भर्त्सना करती है। पति का आदेश मानने वाली शकुन्तला से वह पूछती है कि .. "पति ?

---

१. अप्सरा का श्राप – यशपाल, पृ. सं. १७

उसका छल प्रपच पहचानकर उससे पशुवत निरादर पाकर भी उसे पति कहती है। तूझे अपनी वासनापूर्ति तथा सम्पत्ति के लिए औरस उत्तराधिकारी प्राप्त करने का साधन मात्र मानने वाले को पति कहती है। तूने उसकी स्वभाव और प्रकृति नही पहचाने ?[१]

मेनका नारी के उस पतिव्रत धर्म को श्रेष्ठ नही समझती जिसके आधार पर नारी को अपने व्यक्तित्व तथा आत्मा का हनन करना पडता है। वह अन्य मानवीय धर्मो यथा आत्मरक्षा, आत्मनिर्भरता और आत्म सम्मान को नारी के धर्म मानती है। जिसके अनुसार नारी अपना बहिर्मुखी विकास कर सकती है। शकुन्तला के यह कहने पर की .. "पतिव्रता नारी व्यक्ति अथवा मानव नही पतिव्रता मात्र होती है वह आत्मा का नही पति का ध्यान करती है।"[२] तो वह उसके इस धर्म से क्षुब्ध होकर श्राप देकर उसे दण्डित करती है। इस तरह लेखक ने रूढिग्रस्त परम्परावादी और विवेक शून्य अन्धविश्वासो के बीच मेनका का चरित्र प्रगतिशीलता की वाणी देकर गुंजरित कराया है। मेनका को दिव्य नारी का रूप देकर भी उसकी आत्मा को आधुनिक मानवीय भावनाओं से परिपूरित किया है।

शकुन्तला

'अप्सरा के श्राप' की दूसरी नारी पात्रों में हम शकुन्तला को रख सकते हैं। लेखक ने शकुन्तला को एक ऐसी बेबस नारी के रूप में चित्रित किया है जो शास्त्रो में वर्णित पतिव्रत धर्म की महत्ता के बोझ से दबी हुई है, पति को ही अपना सब कुछ मानती है पुरुष की वासना का शिकार होते हुए भी नैतिक मान्यताओ को न तोड़ने के लिए विवश है। पति दुष्यन्त द्वारा न अपनाने पर भी वह कोई विरोध नहीं करती

---

१. अप्सरा का श्राप – यशपाल, पृ. सं. १२७
२. अप्सरा का श्राप – यशपाल, पृ. सं. १२७

और चुपचाप पुन आश्रम में चली जाती है।

अपने वश बेल की रक्षा करने के लिए जब वही पुरुष केवल इसी आशय से उसे अपनाता है तो वह चुपचाप ये कह कर चली जाती है कि - "महाराज पतिव्रता दासी तो सभी प्रकार पति की अनुगत है। वह पति के दोष को देखती नही, सुनना नही चाहती।"[१] इस तरह शकुन्तला धर्मपरायण भारतीय स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है वह पति की निन्दा भी सुनना पसन्द नही करती . "स्वामी, इस अभागी को ऐसे शब्द न सुनाये। यह अभागी बहुत सह चुकी है। पति निन्दा सुनने के पाप का फल जाने क्या पायेगी।"[२]

इस तरह शकुन्तला शास्त्रों में वर्णित उस नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो पति को परमेश्वर मान कर उनकी उचित अनुचित सभी बातो को मानने के लिए विवश है। शकुन्तला के विचार हमें आदर्श की ओर तो ले जाते हैं लेकिन ये आदर्श आज की धरातल मे धुंधला नजर आता है। नारी अपने प्रति अन्याय सहना आप समझती है जिसका प्रतिनिधित्व लेखक ने मेनका के चरित्र के माध्य से किया है।

मोती (क्यों फँसे ?)

क्यों फसे ? उपन्यास मे मोती एक ऐसी स्त्री पात्र है जो अपने जीवन मे खुशी की तलाश में भटकती फिरती है। वह एक मध्यमवर्गीय घर की गृहस्थ गृहिणि के रुप में हमारे सामने आती है। उपन्यास का नायक भास्कर उसकी सुन्दरता को देखकर ही उस पर मोहित होता है। मोती भास्कर के प्रति आकर्षित अपनी प्रशंसा सुनकर ही मोहित होती है। इससे पहले इस तरह की प्रशंसा उसने अपने पति से

---

१. अप्सरा का श्राप – यशपाल, पृ. स. १२४
२. अप्सरा का श्राप – यशपाल, पृ. सं. १२५

भी नही सुनी होती है। हर स्त्री अपनी प्रशसा सुनकर निहाल होती है तो फिर मोती ही क्यो इसका अपवाद बने। वह भी भास्कर की ओर आकर्षित हो जाती है। दोनो का सम्बन्ध शारीरिक स्तर तक पहुँच जाता है लेकिन मोती मे सस्कार गत लज्जा होने के कारण वह भास्कर के समक्ष समर्पित हो कर भी नहीं समर्पित हो जाती। मोती का मन इससे खिन्न हो जाता है। लेकिन फिर भी भास्कर से प्रेम का मोह वह अन्त तक नही छोड पाती।

अन्त मे जब वह भास्कर से पुन· मसूरी मे मिलती है तो उसके जीवन मे फिर से बहार आ जाती है और वह नारी सुलभ सारी लज्जा, मर्यादा को ताक में रखकर भास्कर से कहती है "तुम्हें ऐसी खुद पसर जाने वाली बेहया पसन्द है।"[१]

इस तरह उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से नर–नारी मे बारम्बार आकर्षण को ही तीव्र बनाया है। मोती के चरित्र के माध्यम से ये दर्शाना चाहा है कि स्त्री–पुरुष का आकर्षण ही उसे एक–दूसरे के समीप लाता है। मोती के जीवन मे यह बदलाव भी उन्होंने इसलिए व्यंजित किया है कि वह अपने पति से सन्तुष्ट नही थी। शरीर की चाह से शरीर की भूख ही बढती है। ये उपन्यास में मोती के माध्यम से चित्रित होते दिखाया है। मोती अपने परिवार और बच्चे मे खुश रहती है लेकिन उसकी खुशी मे भास्कर नाम का व्यक्ति आकर उसे नैतिकता को दायरे से निकालकर प्रबल आकर्षण की ओर से जाता है। मोती अन्त मे समर्पण करती है। लेकिन भास्कर उसे छोडकर पुनः दिल्ली आ जाता है। लेखक ने मोती के इस कृत्य को यह कह कर उचित ठहराया है कि 'नियत राशन से पेट भर सकता है, मन नहीं; अर्थात स्त्री पुरुषों की यह इच्छा स्वाभाविक है कि वह एक से ही बंधे रहने में एकरसता या मानसिक क्रान्ति का अनुभव करें।

---

१. क्यो फंसे ? – यशपाल। पृ॰ सं॰ १००

इस तरह मोती की माध्यम से उन्होने आधुनिक युग की उन नारियो का दृश्य प्रस्तुत किया है जो अपने जीवन मे स्त्री–पुरुष के प्रबल आकर्षण को ही सब कुछ मानती है। मोती के अकन मे यशपाल ने सामयिक चेतना के जितने पहलू उद्घाटित किए हैं उतने अन्य किसी प्रसंग मे नही। शायद मोती की सामाजिक परिस्थितियाँ अधिक सश्लिष्ट है। परिणामत. उसकी दुविधा अधिक गहरी है और चेतना का सघर्ष अधिक गहरा गया है। विवाहिता और अविवाहित पुरुष का सम्बन्ध ा सामाजिकता के सन्दर्भ में निश्चित रुप से अवैध, अनैतिक है। इसलिए मोती और भास्कर के सम्बन्ध की समस्या सामाजिक मान्यताओ को अधिक पीड़ा देती है।"

"मोती सात वर्षो से दाम्पत्य जीवन मे थी। नियत, राशन से पेट भर सकता है, मन नहीं ... उन्नीस वर्ष से पूर्व लडकियो के मन–मस्तिष्क आकर्षण और चाह के संवेदन से शून्य नही रहते नवी–दसवीं श्रेणी में पढते समय ही लड़के आकर्षण और अनाकर्षण लगने लगे थे और अपनी ओर उनकी नजरों की परख और चाह... पिता के सामर्थ्य, स्थिति, अपनी आकर्षकता के विश्वास से समय पर विवाह का पूरा भरोसा था। विवाह के पश्चात्–आकृति रुप और सौन्दर्य की पारखी और प्यासी उसकी ऑखे और मन यह कैसे मान लेते कि पति रुप में पाये नरपुंगव से अधिक आकर्षण अन्य पुरुषों का अस्तित्व नहीं है। परन्तु अपने वचन और कर्म से ऐसे आकर्षण का सन्देह न होने देने के लिए सतर्क थी।"[१]

वैयक्तिक और सामाजिक चेतना के स्तर पर यशपाल यहॉ मोती के चरित्र मे निम्न बातें उठाते हैं। मोती के सस्कार, मोती की परम्परा का मान, सामाजिक नीति की कायल मोती के मन के विरुद्ध मस्तिष्क की दुविधा मे फंसी मोती तथा

---

१. क्यों फसे ? – यशपाल, पृ. स. ५१–५२

वैयक्तिक स्तर पर लडकियो की सवेदनशीलता और मनोविज्ञान। मोती के सस्कार ही है जो उसे बार–बार भास्कर के पास लाकर दूर कर देते हैं। मोती का भास्कर के प्रति आकर्षित होने का कारण भी स्पष्ट दीख पडता है। स्वय भास्कर मोती के पति को देखकर सोचता है . "पति जैसे शरीर से छोटा है वैसे ही मन से भी ओछा, बेचारी के परिवार द्वारा बेटी के लिए मर्द की व्यवस्था कर देने का परिणाम। ऐसे मर्द से क्या सन्तोष पाती होगी ? पति का किशोरो जैसा अपूर्ण शरीर, पसलियॉ झलकाता निर्लोभ सीना मोती की कल्पना का सुपुरुष नही हो सकता। (मोती अच्छी चित्रकार है) ऐसी संगति से क्या स्फूर्ति और तुष्टि पाती होगी। बेचारी के साथ कितना अन्याय।"[१]

स्त्री के मन से विपरीत उसे पति मिलने की बात यहॉ है, जिसे मोती की अपने पिता की आर्थिक तंगी के कारण स्वीकार करती है। परिस्थितियो की चक्की में पिसना मोती की नियति है। एक ओर पति और परिवार तथा दूसरी ओर नौकरी पेशा–स्त्री की कठिनाइयॉ। परिवार चलाने के लिए उसे विद्यालय मे अध्यापिका की नौकरी करनी पडती है। मोती को नौकरी के निमित्त घर से बाहर निकलना पडता है इसलिए भास्कर से बेखटके से मिलने में वह संकोच नहीं करती। संकोच करती है तो भास्कर के समीप्य मे पहल करने में। उसमें भारतीय स्त्री के कुछ सस्कार है जी उसे ऐसा करने को रोकते है। लेकिन उपन्यास के अन्त में मोती के चरित्र में परिवर्तन दिखलायी देता है। वह सारी लज्जा त्याग कर भास्कर के समक्ष स्वयं आत्म–समर्पण कर देती है।

मोती के चरित्र में भारतीय स्त्री के परम्परागत संस्कार व नर–नारी के परस्पर

---

१. क्यों फसे ? – यशपाल, पृ. सं. ५६

आकर्षण के द्वारा तुष्टि की चाह मे भटकती स्त्री का रूप यशपाल ने क्यो फसे ? उपन्यास की नायिका मोती के माध्यम से दर्शाया है।

ऊषा (मेरी तेरी उसकी बात)

'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास मे ऊषा मुख्य नारी पात्र है। सम्पूर्ण उपन्यास की धूरी ऊषा ही है जिसके इर्द-गिर्द उपन्यास चक्कर काटता है। इस उपन्यास मे ऊषा की सामाजिकता एव राष्ट्रीयता की झलक प्रस्फूटित होती है जो पूरे परिवेश को संघर्ष बनाए चलती है। ऊषा प्रगतिशीलता और आधुनिक विचारो की पोषक है। ऊषा में नारी द्वारा सामाजिक-जर्जर रुढियों का अंजन, धर्म और जाति की संकीर्णताओ को लाघना, परिवार ओर पति के बन्धनो से मुक्त होकर राजनैतिक कार्यो में भी हाथ बटाती है। "साइमन कमीशन के विरोध में दूसरे दिन स्टेशन पर प्रदर्शन। पिछली संध्या जुलूस, विरोध प्रदर्शन की तैयारी भर थी, अब वास्तविक विरोध।" इसी प्रकार ऊषा नारी के पारम्परिक भावनाओं को उद्वेलित करती है। ऊषा नारी की वास्तविक आजादी के लिए वह हर प्रकार के कठिनाइयों को उठाने के लिए तैयार रहती है। निर्मल पंत से सगाई टूटने का एक गहरा सदमा जहॉ समाज की जर्जर रुढ़ियों के प्रति उसे विद्रोही बनाता है, वही आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा भी देता है। ऊषा आत्मसम्मान के लिए पुरुष के एकाधिकार और अहंकार के विरुद्ध विद्रोह करती है। नारी की वास्तविक आजादी के लिये समय-समय पर संघर्ष करती है। ऊषा मे स्वदेश प्रेम की भावना भी जागृत होती है जबकि सम्भ्रान्त मध्यवर्गीय एंग्लो इंडियन परिवार (ईसाई) से सम्बन्धित है फिर उसके रगों-रगों मे देश-प्रेम की भावना उजागर होती है... "ऊँचे बास कांग्रेस के तिरंगे के नीचे ऊषा

ने 'भारत छोडो सग्राम' मे योगदान के लिए आह्वन किया ऊषा के बाद भोजपूरी मे बिरजू की ललकार। जवानो के ऊँचे समवेत स्वर मे 'सरफरोशी की तमन्ना' की गजल।"[1] इस प्रकार राजनीतिक भूमिका मे ऊषा का चरित्र विशेष रूप से निखर आया है। वह स्वतत्रता सग्राम की एक जीती-जागती प्रेरणा के रूप मे सामने आती है।

ऊषा के व्यक्तित्व मे स्वतंत्रता की मॉग है। अपने स्वतत्र अस्तित्व के लिए ऊषा, जितनी तेजी से घर-परिवार, माता-पिता, धर्म-जाति, समाज का विरोध करके पति का चुनाव करती है। ... "ऊषा ने दोनो बॉहे पति के गले मे डाल उसका सिर अपने सीने पर दबा लिया.. "ऑखें पोछी। स्वप्न के भूत को मन से निकाल दो। मैं तुम्हारी हूँ, तुम मेरे हो। मन से संदेह निकाल दो। तुम्हारे लिये सब कुछ न्योछावर कर सकती हूँ।[2] इसके बावजूद भी परी द्वारा ऊषा के स्वतंत्र व्यक्तित्व पर आक्षेप एव बन्धन लगाए जाते हैं तो उतनी ही तेजी से वह पति, विवाह सस्था को तोडने के लिये तत्पर हो जाती है। ऊषा का नरेन्द्र से मेलजोल उनके दाम्पत्य जीवन मे दरार ला देता है।.. "अमर कहता है, "तुम माया की तरह पति और मित्र दोनो चाहती हों।[3]" अमर के निवेदन पर ऊषा के सामने जब पुन. एक बार चुनाव का प्रश्न आता है, तो वह दृढ निश्चय से कहती है, "इट इज नाट यू" इसी तरह मानसिक तनाव में ऊषा घर छोड जाती है, और अन्तर्द्वन्द्व में छटपटाता अमर दुर्घटनाग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। तदुपरान्त ऊषा पुन. परिवार और बच्चे से जुडती है। अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के लिए वह समाज मे द्वन्द्वरत रही है।

पति विवाह एवं परिवार संस्था की परम्परागत मान्यताओं को विच्छिन्न कर वह अपना व्यक्तित्व राष्ट्र के प्रति अर्पित कर देती है।

---

१. मेरी तेरी उसकी बात – यशपाल, पृ. सं. ४५७
२. मेरी तेरी उसकी बात – यशपाल, पृ. सं. ३७६
३. मेरी तेरी उसकी बात – यशपाल, पृ. सं. ४१०

इस प्रकार लेखक ने ऊषा को अनेक रूपों मे उभारा है और हर रूप एक महत आदर्श को लेकर प्रत्यक्ष हुआ है। श्री विवेकीराय के शब्दो मे-

"परम्परा और प्रगति के छाया प्रकाश मे ऊषा यशपाल की एक अनूठी सृष्टिपालक है। वह नारी के बन्धन और मुक्ति की दारुण व्यथा-कथा है। समाज धर्म और परम्पराओ से परे उसमें शुद्ध मानवीय स्तर का राष्ट्रीय नारी व्यक्तित्व है। उसमे विप्लवकारिणी युवा आग की ध्वसोन्मुखता है तो सृजनशील नारी का अपार वात्सल्य भी है। राष्ट्र को देखते वह क्रान्तिकारिणी है, समाज के लिए विद्रोही, सहयोगियो के लिए प्रेरकशक्ति, पति के लिए पहेली और पुत्र के लिए शुद्ध माता है।

उपन्यास मे ऊषा का चरित्र विकासशील है, अपनी सघर्षशील जीवन यात्रा में वह नारी की सम्पूर्ण तेजस्विता के साथ निरन्तर बढती जाती है और वह उपन्यास के अन्त मे कहती है कि ... "निरर्थक मान्यताओं और सस्कारों को स्वीकार नही कर रही हूँ परन्तु समाज को एक झटके से नहीं बदल दे सकती.. क्रान्ति लोगों को तोडना नही मोडना है।"[१]

अन्य नारी पात्रों मे माया, घोष चित्रा और गौरी है जिसके माध्यम से लेखक ने नारी की किसी न किसी समस्या को उबारा है।

---

१. मेरी तेरी उसकी बात – यशपाल, पृ. सं. ५७६

माया घोष

माया घोष के माध्यम से प्रेम और विवाह की समस्या को उठाया गया है। माया घोष रूढिवादी सस्कारो एव सकीर्णताओं से मुक्त एव स्वछन्द प्रकृति एव आधुनिक विचारो की नारी है। परम्परागत सामाजिक मान्यताओ एव आदर्शो की उसे कोई चिन्ता नही और न ही पुरुष के एकाधिकार मे ही रहना उसे स्वीकार है। पति के होते हुए भी वह पाठक से अपने प्रेम सम्बन्ध को पूरी घनिष्ठता के साथ बनाये रखती है यहॉ तक कि पाठक के समक्ष अपने आपको समर्पित कर देने मे उसे कोई हिचक नहीं क्योंकि इसे वह अपनी व्यक्तिगत सन्तोष और इच्छा की पूर्ति समझती है।

इस प्रकार माया घोष का चरित्र सम्पूर्ण उपन्यास में सामाजिक नैतिक परम्पराओ के आदर्शो पर प्रहार करने वाला एक विद्रोही और स्वछन्द नारी का चरित्र है।

चित्रा

चित्रा के चरित्र मे सहिष्णुता का अभाव और परम्परा के विचारों को प्रेम सम्बन्ध ी दृष्टिकोण को लेकर सम्पूर्ण उपन्यास मे सम्पुष्टि तब किया गया है। चित्रा का पति तेज नरायण 'टिक्कु' एक दूसरी महिला सलूजा से प्रेम सम्बन्ध बनाये हुए है। माया घोष के प्रेम को सम्बन्ध में उसका पति घोष जिस प्रकार की सहिष्णुता का परिचय देता है उस प्रकार की सहिष्णुता का चित्रा के चरित्र में अभाव है। यही कारण है कि वह अपने पति के प्रेम सम्बन्ध की सहन नही कर पाती और उसका जीवन कटुता एवं घुटन से भर जाता है।

गौरी

'गौरी' रूढिवादी सस्कारिक और धर्मभीरू नारी के रूप में चित्रित की गयी है, उसमे शिक्षा के अभाव मे रुढियो एव सस्कारो से मुक्त होने की हिम्मत तक एकत्र नही कर पायी और विधवा रूपी अपनी जीवन को पूरी निष्ठा के साथ निभाते हुए ही उसे अपना एक निष्ठ धर्म मानती है, पुनर्विवाह की विरोधी है, पुरानी मान्यताओं, परम्पराओं एव रुढिवादिताओ को अपने नारी जीवन मे समवेत करती है।

"मेरी तेरी उसकी बात" उपन्यास मे गौरी का चरित्र मानवीय समस्याओ, जीवन की नैसर्गिक उमगो, आवश्यकताओ और सस्कारो के छन्दो के बीच उलझी हुई दिखायी पडता है।

❐

चौथा अध्याय

यशपाल के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध:

मानव जीवन मे स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है, जो एक दूसरे के बिना अधूरा है। स्त्री-पुरुष की घनिष्ठता उतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव जीवन। "स्त्री समाज की उत्पत्ति का स्त्रोत है, परन्तु इसके साथ ही वह कई तरह से शारीरिक रूप मे पुरुष से कमजोर भी है।"

यशपाल ने अपने उपन्यासो मे जिस समस्या को ज्वलंत और गम्भीर रूप मे देखा वह स्त्री-पुरुष सम्बन्ध तथा नारी पराधीनता से सम्बन्धित है। "स्त्री-पुरुष सम्बन्धों मे यशपाल के उपन्यास नारी शोषण करने वाली प्रवृत्तियों का विरोधकर उसे सामाजिक सकीर्णता से इतर एक ऐसे स्थल पर प्रतिष्ठित करते हैं जहॉ यौन-सम्बन्ध, भौतिक आवश्यकता से भिन्न नहीं है तथा उनमें पूर्ण स्वतत्रता एवं आत्म निर्णय की प्रवृत्ति का समावेश है।"[१]

यशपाल मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है और मार्क्सवाद के अनुसार "स्त्री पुरुष के सम्बन्ध को पुरुष की सम्पत्ति और धर्म के भय से जकड देने के पक्ष में नहीं। वहॉ स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को स्त्री-पुरुष की प्राकृतिक आवश्यकता और कर्त्तव्य का सम्बन्ध मानता है। इसके लिए वह दोनों में से किसी का एक दूसरे का दास बन जाना आवश्यक नहीं समझता, इसके साथ ही वह स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में उच्श्रृंखलता भी उचित नही समझता। किसी स्त्री या पुरुष का दूसरों के शारीरिक भोग के लिए अपने शरीर को कियायें पर देना वह अपराध समझता है।

---

१. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मे मानव मूल्य और उपलब्धियॉ डॉ॰ भगीरथ बड़ोले पृ॰ ५५–५६

जीविका के लिए समाजवादी समाज मे अपनी योग्यता के अनुसार सभी को साधन प्राप्त होगे इसलिए जीविकोपार्जन के लिए उस समाज मे स्त्री को व्यभिचार से जीविका कमाने की आवश्यकता न होगी। जो लोग पूँजीवादी समाज के सस्कारों के कारण ऐसा करेगे, वे अपराधी समझे जायेगे।"[1]

स्त्री-पुरुष और विवाह के सम्बन्ध मे मार्क्सवाद समाज के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के विचार से पूर्ण स्वतत्रता देता है। परन्तु उच्श्रृंखलता और गडबड या योग को पेशा बना लेने और इसके साथ अपनी वासना के लिए दूसरे व्यक्तियों और समाज की जीवन व्यवस्था मे अडचन डालने को वह भयकर अपराध समझता है।

उपरोक्त मत से स्पष्ट है कि मार्क्स वैश्यावृत्ति को प्रोत्साहन नही देता वह नारी को वेश्या बना देने के पक्ष मे भी नही क्योकि भोग को पेशा बना लेने को वह भयंकर अपराध मानते हैं।

लेनिन भी स्त्री-पुरुष के शारीरिक सम्बन्ध को भूख-प्यास, नींद की तरह आवश्यक मानता है और इसमें मनुष्य को पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। किन्तु साथ ही लेनिन यह भी कहता है कि "प्यास लगने पर शहर की 'गन्दी नाली' में मुँह डालकर पानी पीना उचित नहीं है। 'गन्दी नाली' का आशय वेश्यावृत्ति से है जिसे लेनिन के भयंकर अपराध मानते हैं और ऐसा करने वाले को अपराधी।"[2]

फ्रायड ने भी स्त्री-पुरुष के सम्बन्धो की घनिष्ठता उतनी ही प्राचीन मानी है, जितना कि मानव जीवन। आदिम काल से नर-नारी परस्पर आकर्षित होते रहे, इसके साथ ही, दाम्पत्य सम्बन्धो की समस्या और व्यवस्था पर विचार किया जा रहा

---

१. मार्क्सवाद, यशपाल। पृ० सं० ८५

२. मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त के मूल तत्व, प्रगति प्रकाशन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्राईवेट लि., ५ ई० झांसी रोड नई दिल्ली–पृ.स० २६०–६१

है। मनोविश्लेषणवादियों ने मनोविक्षिप्तता का मूल कारण ही नर-नारी सम्बन्धो की आसम्बद्धता माना है। डॉ॰ फ्रायड का विचार है कि "नारी मे पुरुषो की अपेक्षा अधिक आत्मप्रेम होता है। उनमे सांस्कृतिक कार्यो को करने के प्रति उत्साह कम होता है उनके उदात्तीकरण मे वे असमर्थ रहती है। वह परिवार में लैंगिक जीवन से सम्बन्धित हितों का प्रतिनिधित्व करती है। सभ्यता के विकास का उत्तरदायित्व पुरुषो पर ही होता है। वह नारी की अधिकार सीमा से बाहर होता है। इसमें अनेक कठिनाइयॉ उत्पन्न होती है तथा नैसर्गिक प्रवृत्तियो के उदान्तीकरण की नितान्त आवश्यकता होती है। जिसे कार्यान्वित करने में नारियॉ असमर्थ होती हैं और पुरुषों के प्रयास द्वारा उसे सम्भव बना दिया जाता है, सभ्यता के विकास का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है और इसीलिए पुरुष उसे सम्पादित करता है क्योंकि उसमे प्रखर चेतना शक्ति होती है और सारे महत्त्वपूर्ण कार्य वहीं करता है, नारियॉ उसे नहीं कर सकती है। अत. सभ्यता के विकास मे पुरुषों की अपेक्षा अपने को अपेक्षणीय पाकर उसके प्रति उसमें ईर्ष्या और द्वेष की भावना व्युत्पन्न हो जाती है।"[1]

स्पष्ट है कि फ्रायड स्त्री को शारीरिक एवं मानसिक स्तर से कमजोर बताकर उसे पुरुषों के आधीन बता रहे हैं और विवाह को ही एक मात्र कार्य मानते है। यशपाल के उपन्यासों में मार्क्सवाद, फ्रायड और लेनिन के विचारो का मिला-जुला स्वरूप हमें प्राप्त होता है। वास्तविकता यह है कि प्रगतिवादी होते हुए भी वह यथार्थ से विमुख नहीं है। यशपाल अच्छी तरह जानते हैं कि भारतवर्ष में स्त्रियों की यथेष्ट प्रगति हुई है। किन्तु आज भी वह पतिव्रता दासी होने का मोह औ गौरव नहीं छोड़ सकी। अतः उनके उपन्यासों मे अधिकांश स्त्रियाँ अपने लक्ष्य के लिए भटकती हैं। साथ ही यशपाल ने स्त्री मुक्ति और स्त्री–पुरुष समानता को मानसिक स्तर पर

---

१. हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण, बिन्दु अग्रवाल। पृ. सं॰ १८०

नही उठाया बल्कि राजनैतिक, सामाजिक परिवर्तन मे अपेक्षित बुद्वि विवेक तर्क और विज्ञान के स्तर पर उठाया। यशपाल का विचार भी सम्भवनीय परिवर्तन का सकेत करने का है। इसलिए कि इस समस्या से यशपाल व्यथित है।" मनुष्य की यह वृत्ति उसे वासना से क्लेषित करती रहे। इसका क्या कोई उपाय मनुष्य नही कर सकता।"[१]

स्त्री-पुरुष मानसिक स्तर पर सहयोग और विज्ञान की सहायता से शारीरिक सहयोग के परिणामो से सरक्षण के स्तरो पर यशपाल सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। जिसे समाज बौद्धिक स्तर पर लाख स्वीकार करे परन्तु आचरण के स्तर पर स्वीकार नही कर पाता, इसलिए कि नैतिकता का प्रभाव कार्यरत रहता है। यशपाल, बुद्धिनिष्ठा और वैज्ञानिकता को नैतिकता से तरजीह देते हैं उसी तरह क्रान्ति कार्य के क्षेत्र में थी।

स्त्री का समाज मे स्थान, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, स्त्री शिक्षा, प्रेम बिषयक दृष्टिकोण आदि विषयों पर यशपाल का मत आरम्भ से अंत तक एक जैसा है।" वे सामान्य रूप से तर्क और दलीलें उपस्थित करते है। व्यक्ति स्वाधीनता बुद्धिनिष्ठा, वैज्ञानिक निकर्ष और प्राप्त परिस्थितियों के सन्दर्भ मे यशपाल ने स्त्री सम्बन्धी विचारो को उपस्थित किया।"[२]

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की समस्या व्यक्तिगत समस्या होने से इसमे बाह्य सघर्ष की अपेक्षा मानसिक संघर्ष अधिक महत्त्व का होता है। इसी कारण स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की समस्या दोहरी-दोमुखी हो जाती है। समाज के कानून की दृष्टि से और समाज की नैतिकता की दृष्टि से भी विशिष्ट होती है।

---

१. दादा कामरेड, यशपाल। पृ. सं.७

२. यशपाल के उपन्यासों में सामयिक चेतना, डॉ. ह. श्री साने पृ. सं. १६१–६२ सरस्वती प्रकाशन, १२८/१०६ जी, किदवई नगर, कानपुर–११

"समाज व्यक्तियो और परिवारों का समूह है। समाज की व्यवस्था मे आने वाला कोई भी परिवर्तन व्यक्तियो और परिवारो के गठन पर प्रभाव डाले बिना नही रह सकता। परिवार-स्त्री पुरुष का सम्बन्ध समाज का केन्द्र है।"[1]

सामाजिकता के स्तर पर नर-नारी सम्बन्ध

सामाजिक जीवन मे नर-नारी दोनों की अहम् भूमिकाएँ हैं और जीवन के विकास मे दोनों का महत्त्व समान है। फिर प्रश्न यह उठता है कि समाज में नारी इतनी पीडित, विवश, असहाय और अपमानित क्यों है ? हमारा समाज आज भी नारी को हेय दृष्टि से देखता आ रहा है। विवाहपूर्ण यही वो मातृत्व का बोझ उठाती है तो उसे ही अकेले क्यो दोष दिया जाता है, क्या इसमें पुरुष वर्ग का कोई दोष नही ? वस्तुतः हमारा समाज पुरुष शासित हैं और पुरुष वर्ग का स्वार्थ नारी को मात्र दासी के रूप में ही देखना चाहता है। नारी शदियो से शोषित रही हैं अत. आज भी पुरुष वर्ग इसी रूप मे देखना चाहता है पुरुष वर्ग हमेशां यही चाहता है कि स्त्री उसके पॉव की जूती है इसलिए उसे नारी स्वतत्रता और समानाधिकार उसे असहनीय है। पुरुष वर्ग भयभीत है कि यदि ये एकाधिकार समाज हो गये तो उसका प्रभुत्व समाप्त हो जायेगा। पुरुषो के एकाधिकार की भावना ही नारी की स्वतंत्रता में सबसे बड़ी बाधा है। "सबसे बडी समस्या यह है कि पुरुष कभी भी स्त्री के दृष्टिकोण से समस्या को नहीं देखता। जिसका कारण उसका अहम् होता है, वह अपना अधिकार स्त्री पर रखना चाहता है और स्त्री की सबसे बड़ी मुसीबत यह है कि उसे संतान पैदा करनी है। इसलिए पुरुष-जमीन के टुकडे की तरह उस पर मिल्कियत जमाने के लिए व्याकुल रहता है।"[2]

---

१. माक्सर्ववाद–यशपाल, पृ. सं. ७८–७६, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, पाँचवाँ संस्करण १६७१

२. दादा कामरेड, यशपाल। पृ. सं. २२

नारी की इच्छाओ तथा उसके आत्मसम्मान को कुचलने वाले पुरुष वर्ग के अहम भाव को यशपाल एक सामाजिक अपराध मानते हैं इसलिए वे नारी की स्वतत्रता के पूर्ण समर्थक रहे हैं। उनका मानना है कि . "स्त्री को किसी न किसी की बनकर रहना ही है तो उसकी स्वतत्रता का अर्थ ही क्या हुआ ?"[१] समाजवाद मे झूठी नैतिकता को न मानकर यशपाल ने नारी की सामाजिक एव आर्थिक समानता को महत्त्व दिया। इसके लिए यह आवश्यक भी नही कि नारी एक पुरुष से बधकर रहे। "जब स्त्री को एक आदमी से बध जाना है और सामाजिक अवस्थाओ के अनुसार उसके अधीन रहना है उस पर निर्भर करना है उस सम्बन्ध को चाहे जो नाम दिया जाय वह है स्त्री की गुलामी ही।"[२]

स्त्री-पुरुष सम्बन्धो मे यशपाल के उपन्यास नारी-शोषण करने वाली प्रवृत्तियों का विरोधकर उसे सामाजिक संकीर्णता निकालकर युगीन चेतना के अनुरूप एक स्वस्थ भावभूमि पर लाना चाहते हैं जहॉ स्त्रियों का अपना स्वतत्र व्यक्तित्व हो और पुरानी मान्यताऍ नयी आदर्शो पर प्रगति के विकास एक नयी बात अपने शरीर और मस्तिष्क में अनुभव कर रहा था। एक बार क्रान्तिकारी जीवन ग्रहण करने के बाद स्त्री को उसने अपने मार्ग से परे की वस्तु समझा था। इधर अनेक बार शैल के समीप आने पर भी उसे युवती न समझ केवल पार्टी का सहायक सदस्य ही समझा था जो केवल रूप–वेष में उसके दूसरे साथियों से भिन्न था। परन्तु आज बार–बार उसका मन उसे सचेत कर रहा था। वह युवती है जीवन की मृदुलता सहृदयता और तुष्टी का स्त्रोत लिये। तू क्या उसे नहीं पहचानता उसका मन कह रहा था. .. तू केवल क्रांति की मशीन ही नहीं मनुष्य है, पुरुष है।"[3] और अपने इन्हीं विचारों के परिवर्तन से वह शैल के समीप ही नहीं आता बल्कि शारीरिक सम्बन्ध भी

---

१. दादा कामरेड, यशपाल। पृ. सं. २१
२. दादा कामरेड, यशपाल। पृ. सं. २२
३. दादा कामरेड – यशपाल, पृ. २३

स्थापित करता है और शैल भी अन्त मे अपने आपको पूर्ण रूप से हरीश को समर्पित कर देती है।

स्त्री–पुरुष सम्बन्ध का महत्त्वपूर्ण आयाम हार्दिकता को स्पर्श करता है वह पारस्परिक प्रेम का यशपाल सह–जीवन मे विचारो का मेल आवश्यक समझते है "व्यक्ति की न्याय बुद्धि को समस्त सामाजिक व्यवधाओ की अपेक्षा की ओर अग्रसर रहे। इन्ही विचारो की पुष्टि यशपाल ने बारह घण्टे की विधवा विनी द्वारा विधुर फेन्टम की ओर आकर्षित होना नयी मूल्य मर्यादा की सूचक है। लारेंस इस सम्बन्ध को प्राकृतिक आवश्यकता मानता हुआ समर्थन देता है तथा कहता है ."हमारी औचित्य और अनौचित्य सम्बन्धी, धारणाएँ ही नैतिकता होती है।. परस्पर सहारा बनना ही प्रेम होता है, उसे स्वार्थ या धोखा नहीं कहा जा सकता। जहॉ स्वार्थ और धोखा नहीं, उसे अनैतिकता नहीं कह सकते।"[1] इस प्रकार प्रेम सम्बन्धी नर-नारी के सम्बन्ध को परम्परागत स्वरूप से निकालकर नई-नैतिकता के धरातल पर प्रतिष्ठित किया।

यशपाल ने विवाह को अनिवार्य नही माना लेकिन स्त्री-पुरुष को एक दूसरे का पूरक आवश्य माना। 'दादा कामरेड' मे यशपाल ने उपन्यास के नायक 'हरीश' जो एक क्रान्तिकारी है उसकी मान्यता है कि क्रान्तिकारियों के लिए नारी परे की वस्तु है किन्तु जब वह शैल के सम्पर्क में आता है तो उसे यह अनुभव होने लगता है कि नारी के अभाव में पुरुष अपूर्ण है। नारी पुरुष के मार्ग में बाधक ही नहीं साधक भी है और स्त्री-पुरुष बिना एक दूसरे के अधूरे हैं। लेखक ने अत्यन्त सुन्दर शब्दों में इस प्रतिक्रिया को व्यक्त किया है। .... "हरीश एक नयी बात अपने शरीर और मस्तिष्क में अनुभव कर रहा था। एक बार क्रान्तिकारी जीवन ग्रहण करने के बाद

---

१. बारह घण्टे, यशपाल। पृ. स॰ ११२

स्त्री को उसने अपने मार्ग से परे की वस्तु समझा था। इधर अनेक बार शैल के समीप आने पर भी उसे युवती न समझ केवल पार्टी का सहायक सदस्य ही समझा था, जो केवल रूप-वेष मे उसके दूसरे साथियो से भिन्न था। परन्तु आज बार-बार उसका मन उसे सचेत कर रहा था वह युवती है जीवन की मृदुलता, सहृदयता और तुष्टी का स्रोत लिए। तू क्या उसे नही पहचानता उसका मन कह रहा था. तू केवल क्रान्ति की मशीन ही नही मनुष्य है, पुरुष है।" और अपने इन्हीं विचारो के परिवर्तन से वह शैल के समीप ही नही आता बल्कि शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित करता है और शैल भी अन्त मे अपने आपको पूर्ण रूप से हरीश को समर्पित कर देती है।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध का महत्त्वपूर्ण आयाम हार्दिकता को स्पर्श करता है वह पारस्परिक प्रेम का। यशपाल सह-जीवन मे विचारों का मेल आवश्यक समझते हैं। "व्यक्ति की न्याय बुद्धि को समस्त सामाजिक व्यवधाओं की अपेक्षा वे श्रेष्ठ समझते हैं।"[1] परन्तु स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को स्थिर बनाने वाली सामाजिक अनुज्ञा हर एक सम्बन्ध को हितकारी नही समझती। इस स्थिति में व्यक्तिगत और समाजगत मान्यताओं में खाई-निर्माण हाती है। सुखी जीवन के साधनो पर समाज के उच्च वर्गो और श्रेणियो के लोगो का अधिकार होता है जिनके स्वार्थ के अनुकूल विशिष्ट स्त्री-पुरुष सम्बन्ध न होने पर स्त्री और पुरुष दोनों के लिए जीवन-कष्टमय हो जाता है। इसी को लक्ष्य करके यशपाल समाज के कुचक्र की बात कहते हैं। मनोरमा के जीवन की यही दर्दनाक कहानी है और सोमा के जीवन की थी। सोमा का जीवन एक समस्या है, सामाजिक समस्या का उदाहरण है, मनुष्य के रूप की सोमा वैवाहिक जीवन की सार्थकता मे स्त्रीं जीवन की सफलता स्वीकार करती है।

---

१. मनुष्य के रूप, यशपाल, पृ. सं. २००

सोमा उन स्त्रियो का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने जीवन मे पुरुष का सरक्षक प्राप्त करना चाहती है और कहती है कि "औरत ने मजदूरी करके पेट भरा तो क्या जिन्दगी औरत तो घर सभालती ही भली लगती है।"[1]

सोमा के इस कथन से आशय यही निकलता है कि औरत की शोभा घर है और पुरुष का दायित्व औरत का खर्च सम्भालना। सोमा के जीवन मे प्रेम मे एक निष्ठा का महत्त्व अनन्य रहा। परिस्थितियो के फेर मे फॅसकर पुरुष प्रवृत्ति की स्वार्थता से परिचित होने के बाद भी वह बार-बार नये-नये पुरुषो पर विश्वास करती चलती है। मात्र स्त्री होने के नाते जिन अत्याचारो का उसे सामना करना पडता है उन्हे भुलाकर जीवन को सुखमय बनाने की कामना लिए वह जीवित है।

स्त्री का क्वारापन और युवा विधवापन दोनो समाज मे निन्दा के विषय रहे हैं। मनोरमा (मनुष्य के रूप) का क्वांरापन उसकी भाभियो को अखरता है और उस पर पर-पुरुष सम्बन्धी विभिन्न लाछन वे लगाती हैं। मनोरमा को वैवाहिक जीवन से तृप्ति और संतोष नहीं है, इससे अच्छा तो क्वारापन था फिर भी श्रीमती सुतलीवाला (मनुष्य के रूप) होने का वैज्ञानिक और सामाजिक पिंजरा बांधे था। फिल्म उद्योग के साथ अवैध सम्बन्ध रखने के लिए मनोरमा को जाल में फँसाने की कोशिश भी सुतलीवाला करता है परन्तु भाग्य से मनोरमा मुक्ति पाती है।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की स्थापना जितनी वैज्ञानिक और सामाजिक समाज वैज्ञानिक घटना है उतनी स्त्री-पुरुष सम्बन्ध विच्छेद थी। इसलिए मनोरमा को सुतलीवाला से अलग करने के लिए अदालत का आश्रय लिया जाता है और पार्टी कार्यकर्त्ता, कार्यकर्तीयों के आपसी सम्बन्धों को पार्टी परखती रहती है।

---

१. मनुष्य के रुप, यशपाल। पृ. सं॰ २००

मनोरमा सुतलीवाला को तलाक देने मे जल्दबाजी न करे। इस तरह की सलाह भूषण इसलिए देता है कि "मै नही चाहता, अखबारो मे मोटे अक्षरो में खबर छपे कि कम्यूनिस्ट युवती द्वारा नपुसक पति की तलाश।"[1]

इस तरह यशपाल ने सम्बन्ध विच्छेद के माध्यम से स्त्री–पुरुष के वैमन्वस्य को भी दर्शाया है। स्त्री मन के विपरीत उसे पति मिलने की बात भाग्यवाद के सहारे छोडकर उसी निर्दयता को न बर्दाश्त करना स्त्री स्वातत्र्य की पोषक है।

मार्क्सवादी विचार दर्शन के अनुसार यशपाल भाग्यवाद जैसी किसी शक्ति को नही मानते। उन्हे न तो ईश्वर की विधायक शक्ति मे विश्वास है और न ही वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि जीवन और जगत् का प्रत्येक कार्य उसी परम सत्ता के संकेत पर होता है। भाग्यवाद के सम्बन्ध में उनका मत आदर्श के शब्दो मे इस प्रकार व्यक्त हुआ है। 'भाग्य का अर्थ है विवशता ! भाग्य का अर्थ है असामर्थ्य ! असामर्थ्य का अर्थ है प्रयत्न और चेष्टा न करना ! ... प्रयत्न और चेष्टा जीवन का स्वभाव और गुण है, जब तक जीवन है, प्रयत्न और चेष्टा का रहना स्वाभाविक है, ... असामर्थ्य स्वीकार करने का अर्थ है जीवन में प्रयत्नशील हो जाना जीवन से उपराम हो जाना।"[2] आशय यह कि भाग्य मे विश्वास करने वाला व्यक्ति प्रयत्नशील हो अपने और समाज को अदृश्य पर छोड़ देता है। लाहौर से आये हुए शरणार्थियो के स्वावलम्बी बनने के प्रयास को देखकर यशपाल ने भाग्य पर व्यंग्य किया है-"वे भाग्य को ॲगूठा दिखाकर हॅस रहे थे। भाग्य उन्हें कुचल नही सका, वे चिन्ता करके थक गये थे अब उन्हें किसी बात की चिन्ता न थी।"[3]

इस प्रकार उपन्यासकार यशपाल प्रत्यक्ष जीवन और जगत में विश्वास करते हैं तथा किसी परलोक अथवा स्वर्ग की कल्पना रंचमात्र नहीं करते। यशपाल जिस

१. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृ सं॰ २१०
२. दिव्या, यशपाल। पृ. सं॰ १५३–१५४
३. झूठा–सच (देश का भविष्य), यशपाल। पृ. सं॰ १२२

चेतना को जगाना चाहते हैं वह भविष्यलक्ष्मी अधिक है, वर्तमान सम्बद्ध कम है। परन्तु वह भूतगामी भी है। अभिप्राय यह है कि यशपाल अपने इतिहास बोध और ऐतिहासिक कल्पना के कारण वर्तमान की हर चीज को भूतकाल का नतीजा मानकर या भविष्य के लिए निरुपयोगी कहकर नकारते है।

नर–नारी के पारस्परिक आकर्षण

नर-नारी के पारस्पर आकर्षण की मूल प्रेरणा सेक्स को मानते हुए भी यशपाल इस बात को मानने के लिए आवश्यक नही मानते कि स्त्री के सह-जीवन मे पुरुष का पूर्ण योगदान है। स्त्री का जन्म केवल पुरुषो की आधीनता के लिए ही हुआ है 'इस बात से यशपाल पूरी तरह से सहमत नही है। 'दिव्या' उपन्यास की नायिका दिव्या सामाजिक बन्धनो को तोडकर नर्तकी बन जाती है और अत में निश्चय करती है कि वैश्या ही स्वतत्र नारी है। यशपाल का विचार है कि नर-नारी दोनो ही वासना के कारण एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। वासना की प्रबलता केवल नारी में ही नही होती। पुरुष मे ही होती है उपन्यास "क्यो फॅसे में " पुनैया नर-नारी की आकर्षण की व्याख्या करते हुए कहता है .... "सुनो नर-नारी में परस्पर आकर्षण प्यार होता क्या है ? तुष्टी की चाह मे तुष्टी की सम्भावना और आशा से एक दूसरे की चाह उसके लिए प्रयत्न या कुछ और.. सुनो ! नारी को देखती है तुम्हारी ऑखें, उसका स्वर सुनते हैं कान। तभी तो उसकी बातो से मन-मस्तिष्क रिझेंगे, अवसर होता तो उसके बोल सुनने से सामीप्य" से उसके केशो या शरीरों के गन्ध और उसे छू सकने से रीझ बढेगी जो कुछ देखोगे सुनोगे, सुघोगे या छुओगे सब उसका शरीर है। उसके शरीर के सम्पर्क में आने वाली तुम्हारी ज्ञानेन्द्रियों की प्रक्रियाएं भी शारीरिक है। शरीरों के मेल की इच्छा प्रेम है और

उनका मेल तुष्टी है।"[1]

'क्यो फॅसे' उपन्यास मे यशपाल मुख्यत प्रेम और आकर्षण के सन्दर्भ मे स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को लेकर स्थापित चेतना को अकित करते हैं तथा चेतना का स्वरूप कैसा होना चाहिए इसे भी बताते हैं। प्रेम और आकर्षण के सम्बन्ध में यशपाल समस्त आयामों को उद्घाटित करते हैं-पहला प्रेम और आकर्षण के सम्बन्ध में वैयक्तिकता बनाम समाजिकता, दूसरा मार्क्सवादी समाज में नारी बनाम पूँजीवादी समाज मे नारी। तीसरा प्रेम और आकर्षण की सच्चाई उसके स्वत. और स्वतंत्र होने में है। चौथा नारी की स्वाधीनता खासकर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नारी। पॉचवॉ-प्रेम और आकर्षण के सम्बन्ध मे मानसिक शारीरिक मिलन या मात्र मानसिक या मात्र शारीरिक छठॉ नौकरी पेशा युवतियो की इस सन्दर्भ मे विवशताऍ। सातवॉ लडकियो के मन की संवेदनशीलता परम्परागत विवाह पद्धति, लडकी दिखाना आदि। आठवॉ विवाहित स्त्री से अविवाहित पुरुष का स्नेह आदि विभिन्न विचार यशपाल ने नर-नारी के पारस्परिक सम्बन्ध मे रखे है।

कलाकार यशपाल की यही खूबी है कि वे ऐसे ही परिवेश और पात्रों को गढते हैं। अवैध-वैध, नैतिक–अनैतिक सम्बन्धों के मामलों में समाज मन जितनी रोचकता दिखाता है, उतनी शायद अन्य किसी सम्बन्ध के बारे मे नहीं। .. "अब नारी के प्रति उसका भाव उतना अमूर्त रोमाटिक कल्पना लोक की प्रेम प्रतिमा, आराध्यदेवी के प्रति निष्काम स्मरण और समर्पण का नहीं रहा था ऐसे वातावरण और संगति के प्रभाव से उसका दृष्टिकोण व्यावहारिक, मांसल, पारस्परिक, मानसिक, शारीरिक सामीप्य से तुष्टी की इच्छा का हो गया था।"[2] अपने ही कार्यालय में काम करने वाली बदरुन्निसा के सम्बन्ध में उपन्यास के नायक भास्कर के मन में उठने वाले

---

१. क्यों फँसे, यशपाल। पृ. सं. ५६–६०

२. क्यों फँसे ? – यशपाल, पृ. सं. ४६

ये विचार हैं।

यही बदरुन्निसा है कि अपने अधिकारियो के साथ संगति रखना उसकी विशेषता है तथा इस सम्बन्ध को वह निजी मामला मानती है। बदरुन्निसा पार्टी मेम्बर थी और पार्टी के किसी अधिकारी के साथ उसका सम्बन्ध था, पार्टी मेम्बरर्स के अनुसार पार्टी पर उसकी उच्श्रृखलता से ऑच आती है, परन्तु बदरुन्निसा है कि उसके अपने व्यक्तित्व का दमन सहाय नहीं था। मामला उसकी रुचि भावना और संतोष का था। यह रूढिगत असहिण्णुता है। .. "प्रम या आकर्षण की सच्चाई उसके स्वत और स्वतत्र होने मे है।"[१]

यही नर-नारी का परस्पर आकर्षण 'झूठा-सच' शीलों और रतन के सम्बन्ध मे दिखलाई पडता है, शीलो विवाह सुनिश्चित होने जाने के बाद भी रतन से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है। .. "रतन शीलो को दोनो बाहो मे लिये था।"[२] ये मात्र आकर्षण ही है जिसे स्त्री-पुरुष बीच दिखाकर यशपाल ने विवाह जैसी सामाजिक मान्यता को अस्वीकारा है। परस्पर आकर्षण से अगर सगति हो जाती है तो विवाह के बन्धन में फॅसने की आवश्यकता न मानते हुए यशपाल एक प्रकार मुक्त सगति का समर्थन ही करना चाहते हैं।

'क्यो फंसे' उपन्यास मे भास्कर की विवाह की इच्छा नहीं परन्तु नारी के प्रति नर के प्राकृतिक झुकाव से भी वह मुक्त या विरक्त नही।.. "राजधानी मे सफल पत्रकारों की युवतियों के दर्शन या बातचीत की संगति के अवसर के लिए तरसना नहीं पडता ... चार-पॉच युवतियॉ है जो भास्कर के साथ उठने-बैठने बातचीत के अवसर की प्रतीक्षा करती हैं। .... पत्र के दफ्तर में दो नव युवतियॉ है, युवक-पत्रकारों को 'रेस्तारॉ' या सिनेमा में संगति देने में उदार।"[३]

---

१. क्यों फंसे ? यशपाल, पृ. स. २२–२३
२. झूठा–सच, वतन और देश। पृ. सं. १३
३. क्यों फसे ? यशपाल, पृ. सं. ४८–४६

इस प्रकार नर-नारी के पारस्परिक आकर्षण को मानव जीवन मे व्याप्त प्रेम की प्राकृतिक आवश्यकता को लेखक (यशपाल) ने स्वीकार किया हैं। प्राकृतिक आकर्षण जन प्रेम मे यशपाल के पात्र तृप्ति आवश्यक मानते हैं प्रेम के प्राकृतिक स्वरूप के सम्बन्ध मे लारेसे ने कहा है "नर-मादा का आकर्षण प्राकृतिक बात है मैं तो कहूँगा पशुओं का प्रेम अधिक निश्छल केवल प्रकृति की पुकार का परिणाम होता है। किसी अन्य प्रलोभन का विचार उनके आकर्षण को प्रभावित नही करता।"[१]

इसी तरह का विचार उपन्यास 'देशद्रोही' मे डॉ खन्ना कहते हैं "शरीर तो केवल साधन मात्र है, उससे तो अच्छे बुरे सभी स्पर्श होते हैं।"[२] उपन्यास दादा कामरेड में शैलवाला भी अपने व्यक्तित्व और संतोष प्राप्ति के नाम पर ही एक के बाद दूसरे पुरुष के सम्पर्क में अपने शरीर को प्राकृतिक आकर्षण के रूप मे प्रयुक्त करती है। यशपाल प्रेम के आकर्षण को जीवन मे सहायक वस्तु के रूप मे स्वीकार करते हैं, मनुष्य के रूप मे भूषण मनोरमा से कहता है ... "प्रेम तो ज़ीवन में सहायक वस्तु है, जीवन में अडचन बनकर प्रेम चल नहीं सकता .. जब प्रेम नित्य जीवन मे असहाय स्थिति पैदा करने लगता है तो वह जीवन का बाधक होकर स्वय समाप्त हो जाता है। उसकी जगह घृणा पैदा हो जाती है।"[३] और सब चीजो की तरह यशपाल जीवन में प्रेम में आकर्षण की गति को भी द्वन्द्वात्मक मानते हैं। उनका स्पष्ट मत है ... "प्रेम जीवन की सफलता और सहायता के लिए है यदि प्रेम बिल्कुल छिछला या थिथला रहे तो वह असंयत वासना मात्र बन जाता है, और यदि जीवन में प्रेम या आकर्षण का विवेक से संयम न हो तो वह जीवन के लिए घातक हो सकता है।"[४]

---

१. बारह घण्टे ? यशपाल, पृ. स. ६७
२. देशद्रोही – यशपाल पृ. सं. २०७–२०८
३. मनुष्य के रूप – यशपाल, पृ. सं. ८६–८७
४. मनुष्य के रूप – यशपाल, सं. ८६

यशपाल जीवन मे रोमाश को स्वाभाविक मानते है, उनकी नायक-नायिकाए इस आकर्षण से ही नर-नारी के प्रति आकर्षित होते हैं।

यशपाल नर-नारियों के व्यवहार की व्याख्या करने के लिए आधुनिक परिस्थिति बोध से उत्पन्न चिन्तन की कसौटी लेकर आरम्भ करते है। परन्तु बीच-बीच में ऐसे कथन देते हैं कि पाठक भ्रमित हो जाता है। प्रेम और आकर्षण की शारीरिक एव भौतिक स्तर पर व्याख्या का दावा करते समय भावात्मक या विश्वासमय कथन चितन की दुविधा उलझन और अस्पष्टता को ही बताते हैं। प्रेम के हमेशा के त्रिकोणात्मक सदर्भ को भी यहॉ ध्यान मे रखा जा सकता है परन्तु हर चीज का बाजार बनाने वालो को इसकी चिन्ता उतनी नही जितनी तात्कालिक उपयोगिता की है। जिससे मनुष्य का मानसिक जीवन नष्ट होकर मात्र कल-पूर्जे जैसा यांत्रिक जीवन जीने के लिए वह बाध्य हो जाता। "भगवान तो नर नारियो के जीवन को सार्थक और सफल बनाने के लिए प्रेम की शक्ति उत्पन्न कर देता है और प्रेम की शक्ति चरितार्थ होने के लिए अपनी आवश्यकता पूर्ति का यत्न करती रहती है।"[1]

यशपाल ने प्राचीन मान्यताओं का खण्डन ही नही किया है अपितु नवीन मान्यताओं के अनुरूप अपने स्त्री पात्रों का निर्माण भी किया है। पार्टी कामरेड की गीता, मनुष्य के रूप की सोमा प्रतिकूल परिस्थितियों को विजित करते हुए जीवन संघर्ष में सफलता प्राप्त करती है। झूठा-सच में कनक इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि ... "हम लोगों की रुचि और प्रकृति एक दूसरे के अनुकूल नहीं है। लोक लाज के लिए जितना निभा सकती थी निभा दिया अब नही निभा सकती।"[2] यशपाल की नारी में अब इतना साहस आ गया है कि वह खुले आम पुरुष के अत्याचारो का विरोध कर सकें और जीवन संघर्ष में अपने पैरों पर खडी हो सकें। यशपाल ने

---

१. बारह घटे – यशपाल, पृ. सं• १२२

२. झूठा–सच, (वतन और देश), यशपाल। सं• ५४८

अत्याचारो के विरुद्ध विद्रोह न करने के लिए और अपनी दयनीय स्थिति के लिए नारी को भी कुछ हद तक उत्तरदायी ठहराया है। . "स्वय स्त्रियॉ ही इस सामाजिक व्यवस्था को जिसमे स्त्री की गुलामी और उसका पुरुष पर निर्भर रहना अनिवार्य है मजबूत बनाये रखने की चेष्ठा करती है।"[१]

यशपाल स्त्री को समाज मे भोग्या नहीं अपितु सहकर्मिणी का स्थान देते हैं। समाजवादी समाज मे "समाजवादी विचारधारा के अनुसार स्त्री को सम्पत्ति नही समझा जा सकता उसका दान नही किया जा सकता, वह किसी भी प्रकार की सम्पत्ति नही स्वतंत्र आत्मनिर्भर व्यक्ति है।"[२] पुरुष को स्त्री का सम्मान करना चाहिए और उसे उचित स्थान देना चाहिए। स्त्री शोषण के कतिपय तरीको के रहते हुए यशपाल ने सिर्फ एक ही स्त्री-पुरुष सम्बन्ध तरीके को अपना लक्ष्य बनाया।

"यशपाल समाज के विकास के लिए नारी की स्वतत्रता और सामाजिक समता को आवश्यक मानते हैं। परम्परागत सामाजिक नैतिकताये और रूढियॉ आज की परिस्थितियों में विशेष महत्त्व नही रखती है, और उनमे युगानुकूल परिवर्तन अनिवार्य है।"[३]

स्त्री का उत्कर्ष स्त्री होने में ही है, यशपाल स्त्री को जैविक गुलामी से बाहर निकालना चाहते हैं। स्त्री यह मानकर चलना चाहती है कि कुछ शारीरिक भेदों को छोड दिया। जाय तो उसमें और पुरुष मे कोई फर्क नहीं है।.. "आधुनिक स्त्री सबसे पहले अपने स्त्रीत्व को भूल जाना चाहती है। .. वह स्त्रीत्व से परे जाना चाहती है।"[४]

सम्बन्ध अधिक महत्त्वपूर्ण मानते है और चाहते हैं व्यक्ति प्रयत्न करके समाज को प्रेरित कर अपने साथ चलने के लिए शक्ति प्रदान करने वाले हो। यशपाल ने अपने उपन्यासो मे विभिन्न जाति, श्रेणी, वर्ग और धर्म के पात्रो के माध्यम से स्त्री–पुरुष सम्बन्धो की व्याख्या की।

समाज मे सामाजिक मान्यताएँ क्रमश धीरे-धीरे प्रवर्तित होती है। मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन की गति आचरण, गति परिवर्तन की तुलना में अधिक होती है। जब तक आचरण मे परिवर्तन नही होता तब तक वैचारिक प्रवृत्ति परिवर्तन के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस तरह के प्रयत्न यशपाल ने अपने कृतियो के माध्यम से प्रस्तुत किये हैं। स्त्री-पुरुष समानता, नारी मुक्ति, स्त्री-पुरुष सम्बन्धो मे आये परिवर्तन और कुल मिलाकर वर्तमान समाज में स्त्री की स्थिति को देखते हुए इसे स्वीकार किया जा सकता है और यशपाल अपने प्रयत्न मे सफल हुए।

यशपाल ने 'मेरी तेरी उसकी बात' मे स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की चेतना को पात्रो के व्यक्तिगत स्तर पर उतना नहीं उठाया जितना सामूहिक स्तर पर या सैद्धान्तिक स्तर पर "यौवन के आरम्भिक उन्मेष में विद्रोही विचारो का सम्मोहन। अल्हड उम्र का उन्मादक आकर्षण। सभी दुर्दम ऐसे वैचारिक विद्रोह की समस्या किस देश मे नही"... "यह विज्ञान की शिक्षा को उच्श्रृखल दृष्टिकोण से देखने का परिणाम इसका उपाय दमन नही विश्वास परक तर्क की प्रेरणा ही कर सकती है।"[१] कवि इस उन्मादक आकर्षक को धर्म और रूढ़ियों के विचार से नियंत्रित रखा जैसे सेठ इंशा सम्बन्ध मे कभी तटस्थ विवेक ने जैसे उषा–पाठक सम्बन्ध में। इस चेतना का सैद्धान्तिक आयाम इस कथन से स्पष्ट होता है। "इंशा की संगति से सेठ जी को विश्वास हो गया... औलाद और गृहिणी को सम्भालने के लिए व्याहता औरत चाहिए

---

१. मेरी तेरी उसकी बात – यशपाल, पृ. ३०५

पर मोहब्बत और दिलजमाई का हुनर घरेलू औरतो के बस का नही।"[1] व्यक्ति स्तर पर अपने पात्रो के माध्यम से यशपाल ने स्त्री की दुर्दशा का काफी अकन किया - "भारतीय नारी का अर्थ रूढिग्रस्त ब्राह्मण, क्षत्रिय बनना कायस्थ विधवा। हिन्दू विधवा का केवल एक तक धर्म-निष्ठा मे रडापा निभाना, विधवा के मृत्यु पति के साथ जल मरने के धर्म से इस देश का माथा ऊँचा। यहॉ पुरुषो की लम्पटता से देश का माथा झुकता नही। हिन्दू वह नहीं तो भारतीय नारी नही। सब सित्तो और मन्नी नही है कि मुट्ठी मे लेकर मिट्टी के ढेले की तरह भीचकर फेक दे।"[2]

रजा और गेती के प्रसग पर यशपाल ने रसैल की "मैरेज एण्ड मारल्स" किताब का प्रसंग देकर कहा है कि "नर-नारी में सम्यक् परिचय के लिए विवाह से पूर्व काम सम्बन्ध हो। दम्पत्ति से असमजस्य की निरन्तर यातना से युक्त नैतिकता की अपेक्षा रसैल के सुझाव पर अपराध भावना के बिना सदाशय से विचार किया जाना चाहिए।"[3]

'मेरी तेरी उसकी बात' मे यशपाल मे स्त्री पुरुष सम्बन्ध की चेतना के उन्ही मापदण्डो का अंकन किया है जिनका वे अपने पूर्ववर्त्ती उपन्यासो मे अकन कर चुके हैं। नर-नारी के प्रेम का दृश्य स्वरूप शारीरिक है तथापि उससे प्राप्ति तुष्टी में मन-मस्तिष्क के सहयोग, पर परस्पर आदर और स्थायित्व के बिना कोई रस नहीं। इसका प्रतिवाद 'क्यो फंसे , उपन्यास में पुन्नैया के मुख से करते हुए यशपाल शारीरिक आवश्यकता के स्तर पर नर-नारी के आकर्षण को प्रेम के रूप में ले जाते हैं। ... "उत्तराधिकारी या शादी का स्वप्न नही है तो आदर और स्थायित्व की बात बेकार है जो औरत कभी–कभार रुपये मांग ले उसकी बिरादर उम्र भर निचोडती रहें उसक आदर अजीब समझ है। नर-नारी के रति सम्बन्ध में स्थायित्व का अर्थ

---

१. मेरी तेरी उसकी बात, यशपाल पृ. २३
२. मेरी तेरी उसकी बात – यशपाल, पृ. स॰ ६२६
३. मेरी तेरी उसकी बात, यशपाल। पृ. सं॰ ४५५

है विवाह बन्धन या अन्यत्र इच्छापूर्ति के निषेध के नियम के अतिरिक्त और क्या है ? इस बन्धन या नियम का प्रयोजन है नारी और सतान की सुरक्षा। अब तक नारी सुरक्षा चाहती थी आर्थिक आवश्यकता और गर्भ की आशका से ऐसी स्थिति मे नारी को पूर्ण आरक्षण दिये बिना उससे इच्छापूर्ति अन्याय और अनैतिकता था। अब परिस्थितियॉ बदली हैं। अब नारी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं।"[१]

नर-नारी सम्बन्ध विशेष सामाजिक, नैतिक मान्यता, नारी के पतिव्रत धर्म की होती है। उपन्यास 'अप्सरा के श्राप' मे यशपाल ने इसी प्रसंग को उठाया है, उपन्यास के अंत में मेनका की उपस्थिति मे जो वार्तालाप प्रस्तुत किया है उसका व्यग्यार्थ ही महत्त्व का है। शकुन्तला नारी के जिस पतिव्रत धर्म का समर्थन करती है वह यशपाल को जरा भी मान्य नही है। फिर भी भारतवर्ष मे नारी के ही पतिव्रत धर्म की दुहाई कायम है। .. "वह नारी के शरीर के धर्म की प्रेरणा भी अनुभव करेगी उसी से उसका नारी जीवन सार्थक होगा। देवताओ की कृपा से वह अपने जीवन-धर्म को चरितार्थ करे।"[२] दूसरी और प्रजापति कश्यप के मुर्ख से यशपाल ने यह कहलवाया है - " 'आयुष्मान' पति-पत्नी का सम्बन्ध तथा तत्सम्बन्धी अधिकार स्वत्व से नहीं, पारस्परिक प्रेम से तथा अनुरागजन्य अनुमति होते हैं। नर-नारी के प्रेम मे प्राकृतिक न्याय यही है। पति-अनुराग से रक्षा तथा आश्रय देकर अधिकार प्राप्त करता है, स्वत्व से नहीं। निरादर, निर्दयता तथा स्वत्व का अहकार प्रेम के नही, विरोध के भाव हैं। ऐसे भाव और व्यवहार प्रेमभावना तथा पति-पत्नी सम्बन्ध को समाप्त कर देते हैं। पुरुष–पत्नी के प्रति निर्दयता से स्वत्व का व्यवहार करने पर प्रेमी और पति नहीं रहता बल्कि शत्रु और अपराधी बन जाता है।"[३]

नारी-धर्म की प्रेरणा क्या है? शकुंतला के अनुसार "पतिव्रता नारी व्यक्ति अथवा

---

१. क्यों फंसे – यशपाल, पृ० सं० ७४–७५

२. अप्सरा का श्राप – यशपाल, सं० १२६

३. अप्सरा का श्राप – यशपाल, पृ सं० १२६

मानव नही, पतिव्रता मात्र होती है।"[1] शकुतला के लिए अप्सरा धर्म अर्थात आत्मनिर्भरता का धर्म मजूर नही है भारतवर्ष मे नारी इसी मान्यता पर चलती है कि पति ही सर्वस्व है यशपाल इस मान्यता का खण्डन करते हैं तभी मानो वह अप्सरा मेनका, के द्वारा नारी जाति को श्राप देते हैं। परन्तु तब भी शकुन्तला का निश्चय है अपने व्रत और धर्म को निभाने का। भले उसके लिए आत्म हनन भी उसे क्यो न करना पडे। उपन्यास के अतिम वाक्य को पढकर भ्रम होता है कि यशपाल ने समस्या का समाधान न देकर सामाजिक कठोर यथार्थ का निर्वाह किया है, परन्तु उपन्यास की नायिका का आत्महनन के लिए उद्यत है लेकिन धर्म का त्याग करने के लिए नही तब वही अधिक प्रभावशाली लगती और यशपाल का यह कहना कि व्रत तथा धर्म का प्रयोजन आत्मोत्थान : कोई मतलब ही नही रखता, निरर्थक हो जाता है। नारी समर्पण में ही अपने जीवन की सार्थकता समझे तो यशपाल भी क्या कर सकते हैं परन्तु अपवादात्मक रूप से दिखायी देने वाले नारी पात्रो को जब यशपाल ही स्वय चित्रित करते हैं तब कोई क्या कर सकता है। परन्तु इसका परिणाम शायद यशपाल को बाधित नही है। "परम्परा ही सदा श्रेय नही होती।" यशपाल की कतिपय मान्यताओ में से एक यह भी है। बुद्धिवाद या बुद्धिनिष्ठा का बढता प्रभाव ही इस विचारधारा का कारण है। आर्थिक समस्याए, सामाजिक सुधार, स्त्री-पुरुष, समानता, राजनीतिक स्वाधीनता आन्दोलन, व्यक्ति स्वातंत्र्य, कानून का राज्य आदि कई बातों के साथ नई बाते जुडी थी।.. नीति या अनीति, पाप-पुण्य, श्लील-अश्लील आदि जिन्हे जीवन मे विशेष महत्त्व प्राप्त था अत. परम्परा ही सदा श्रेय नहीं होती। कहकर बुद्धि विकासवाद उत्क्रान्तिवाद परिस्थिति के सहारे प्राचीन मूल्यों के विरुद्ध साहित्य के स्तर पर आन्दोलन उपस्थित किया गया। परिवर्तित

---

१. अप्सरा का श्राप – यशपाल। पृ. सं॰ १२८

चुनौतियो की परिस्थिति मे सामाजिक मान्यताओ का श्रेय परम्परागत सस्कारो के प्रभाव को हटाकर वैयक्तिक स्तर पर सामाजिक समस्या का नवीन दृष्टिकोण से विवेचना करना ही यशपाल का मुख्य उद्देश्य माना जा सकता है।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध मे यशपाल के सामने सबसे बडी कठिनाई मानसिक दुराचार की अपेक्षा शारीरिक दुराचार को मुख्य मानने पर है। मानसिक दुराचार स्वीकार और शारीरिक दुराचार अस्वीकार क्यो ? इसी बात पर यशपाल को आपत्ति है। शारीरिक सम्बन्धो के कारण जो सामाजिक अथवा समाज मे अस्वीकृति परिणाम होते है उनका निराकरण यशपाल विज्ञान की सहायता से करना चाहते है, इसी समस्या पर यशपाल जनता को अधिक उदार और विज्ञान निष्ठ बनाने का पाठ सिखातें रहें। समाज को अमान्य स्त्री–पुरुष सम्बन्ध के कारण स्त्री और पुरुष दोनों को बेइज्जत होना पडता है इसी बेइज्जती को सहने की साहस व्यक्ति मे नहीं होता, विज्ञान की सहायता के बावजूद व्यक्ति निर्भय नही बनता। स्त्री-पुरुष की संगति के लिए परस्पर स्वीकृति मात्र काफी नही मानसिकता मे भी परिवर्तन आवश्यक है।

निष्कर्षत. हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द के समक्ष मे नारी के प्रेम को आदर्शवाद के कवच से ढांक दिया गया था त्याग समर्पण और सेवा के विशेषणों से विभूषित कर नारी के स्वाभाविक प्रेम यथार्थ स्वतत्र से दूर रखने की चेष्टा की गयी थी। परन्तु प्रेमचन्दोत्तर काल मे नारी के प्रेम पर कोई ऐसा आरोप नही मिलता। अब यह माना जाने लगा कि स्त्री और पुरुष की वृत्तियाँ समान है। दोनो ही अपनी प्रेरणा से एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं नारी भी अपनी काम-भावनाओ से प्रेरित होकर उसी प्रकार आकर्षित होती है जिस प्रकार पुरुष.... नर और नारी का

चिस्तर सम्बन्ध है सदैव से स्त्री-पुरुष को प्यार करती है और पुरुष-स्त्री को देखकर रीझता है।" [१] डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी भी नर-नारी के सम्बन्ध मे कहते हैं कि "पुरुष निसग है, स्त्री आसक्त पुरुष निद्वन्द्व है, स्त्री द्वन्द्वोमुखी, पुरुष मुक्त है स्त्रीबद्ध।"[२] इस आशय का खण्डन यशपाल जी ने भी अपने उपन्यासो मे किया है। जबकि यशपाल ने स्त्री-पुरुष दोनो की स्वतत्र विचारो को आमुख बनाकर परिवर्तनशीलता एवं गतिशीलता का रूप दिया है।

आधुनिकतावादी समाज में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध के बिना नवो-मेष समाज का निर्माण नहीं हो सकता। "स्त्री और पुरुष एक ही डाल के दो फूल हैं दोनो के स्वतत्र प्रस्फूटन से न केवल उनकी अपनी शोभा बढती है। बल्कि डाल की भी।"[३]

---

१. चढती धूप – रामचन्द्र शुक्ल अचल, पृ. सं. १६०

२. वाणभट्ट की आत्मकथा, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी। पृ. सं॰ ११०

३. स्त्री–पुरुष कुछ पुनर्विचार, राज किशोर, पृ. ४६

पाँचवाँ अध्याय

यशपाल का व्यक्तित्व और कृतित्व :– :

जीवन यात्रा :–यशपाल प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य के एक अत्यन्त समर्थ रचनाकार हैं, एक योग्य उत्तराधिकारी के रूप मे उन्होने प्रेमचन्द परम्परा में ऐसा बहुत कुछ मौलिक विचार जोडा जिससे उनकी प्रगतिशील भावशैली का पता लगता है। युग के सामाजिक यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टि से प्रस्तुत करने वालों में उनका स्थान अप्रतिम है। यशपाल के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह रहा है कि सघर्षि एवं अभावों के बावजूद उन्होंने पलायनवादी भावना का परिचय न देकर दृढ–आस्था का परिचय दिया। कालान्तर में उन्होंनें सक्रिय राजनीति के क्षेत्र में भी प्रवेश किया और आतंकवादी क्रांतिकारी दल के सदस्य के रूप मे भारतीय स्वतंत्रता सग्राम में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। यशपाल ने साहित्य को एक सामाजिक वस्तु स्वीकार किया । कलावादी दृष्किोण तथा व्यक्तिवादी साहित्य की कटु आलोचना करते हुए यशपाल ने कला जीवन के लिए सिद्धान्त का पोषण किया। इनके उपन्यासों में जर्जर भारतीय नर–नारी समाज का जीवन मुखरित हो उठा है। कहानी साहित्य में वस्तु तत्त्व उनमें निहित समस्याएँ उनकी विचारधारा एवं उनके मर्म को अपने अध्ययन का मुख्य केन्द्र बिन्दु बनाया। "प्रगतिवादी कथाकार होने के नाते

शोषित मनुष्यता के प्रति गहरी आत्मीयता यूँ तो उनके समूचे कथा साहित्य मे विद्यमान है किन्तु उनकी कहानियो मे विशिष्ट रचनातंत्र के कारण उनकी यह विशेषता अत्यन्त प्रभावशील और मार्मिक बनकर सामने आई है। जिसके माध्यम से मानव जीवन को इतनी समग्रता से देखने परखने तथा विश्लेषित करने वाला कहानीकार प्रेमचन्द के पश्चात हिन्दी में यदि कोई है तो यशपाल ही हैं।"[१]

यशपाल का पुश्तैनी निवास स्थान कागडे का मनोहर पहाडी इलाका था। यशपाल के जन्म से पूर्व इनके माता–पिता अपने कुछ सम्बन्धियों के साथ पंजाब आये यहिं फिरोजपुर छावनी मे ३ दिसम्बर १६०३ को यशपाल का जन्म हुआ। यशपाल के पिता हीरालाल ब्याज का धन्धा करते है वे एक स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे, जिसके कारण वे स्थायी व्यापार या बँधीं–बधॉई नौकरी करना उन्हें रुचिकर नही था। यशपाल की माता श्रीमती प्रेमदेवी एक सम्भ्रांत परिवार की महिला थी। पिता की स्वतंत्र प्रवृत्ति के कारण जब परिवार बिगडता हुआ दिखायी दिया तब मॉ ने यशपाल के भरण–पोषण का भार अपने ऊपर ले लिया।

इसके लिए यशपाल की मॉ को उनके कठिनाइयो का सामना करना पडा परन्तु इन कठिनाइयो से तनिक भी विचलित न होकर सर्वप्रथम उन्होंने अक्षर ज्ञान की प्राप्ति की और जीविकोपार्जन हेतु फिरोजपुर छावनी के एक

---

[१] यशपाल का कथा साहित्य–प्रकाश चन्द्र मिश्र, पृ० सं० ६–१०

अनाथालय मे एक अध्यापिका का कार्य किया। श्रीमती प्रेमदेवी की आर्थिक स्थिति यद्यपि बहुत अच्छी नही थी फिर भी एक सामान्य स्तर का जीवन बिताने के साथ ही उन्होने यशपाल के जीवन को एक समुन्नत दिशा देने का हर सम्भव प्रयास किया। यशपाल की मॉ ने आर्य समाज का तेजस्वी प्रचारक बनाने की दृष्टि से शिक्षार्थ गुरुकुल कागडी डी०ए०वी० कॉलेज, लाहौर भेज दिया। गुरुकुल के राष्ट्रीय वातावरण मे बालक यशपाल के मन में विदेशी शासन के प्रति विद्रोह की भावना भर गयी। लाहौर के नेशनल कालेज में भर्ती हो जाने पर उनका परिचय भगत सिंह और सुखदेव से हो गया वे भी क्रान्तिकारी आन्दोलन की ओर आकर्षित हुए। उनमें जहॉ एक ओर भारतीय संस्कृति के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ वहॉ दूसरी ओर अंग्रेजी शासन के प्रति विकर्षण जिसका सक्रिय रूप आगे चलकर उनके क्रान्तिकारी जीवन में स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ा।

"सन् १६२१ ई० के बाद तो ये सशस्त्र क्रन्ति के आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने लगे। सन् १६२६ ई० में वाइसराय की गाडी के नीचे बम रखने के लिए घटना स्थल पर उनको भी जाना पडा।"

वहॉ घटना स्थल पर यशपाल गोली का शिकार होते बाल–बाल बच गये। तत्पश्चात चन्द्रशेखर आज़ाद के शहीद हो जाने पर वह हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र के कमांडर नियुक्त हुए। इसी समय दिल्ली और लाहौर में

षडयन्त्र के मुकदमे में प्रधान अभियुक्तो मे से थे। १९३२ ई० मे पुलिस मुठभेड हो जाने पर इनको गिरफ्तार कर लिया गया। तत्पश्चात १९३८ ई० मे उत्तर प्रदेश मे जब काग्रेस मंत्री मण्डल बना तो अन्य राजनीतिक बन्दियों के साथ उनको भी मुक्त कर दिया गया। जेल से मुक्त हो जाने पर विप्लव मासिक पत्रिका लखनऊ से निकाला। "विपल्व पत्रिका की तैयारी में यशपाल जी तन–मन से जुट गये। पत्रिका का मैटर तैयार किया .. विपल्व पत्रिका का पहला अंक नवम्बर सन् १९३८ ई० मे प्रकाशित हो गया पत्रिका के अधिकतर लेख यशपाल जी ने अलग नामों से लिखे। चक्कर क्लब, सेक्रेटरी चक्कर क्लब, चाय की चुस्कियॉ दुर्मुख नाम से तथा मार्क्सवाद की पाठशाला विचक्षण के नाम से लिखते थे।"[1]

विप्लव प्रकाशन थोडे ही दिनों मे काफी प्रसिद्ध हो .गया। विप्लव प्रकाशन की लोकप्रियता के बाद सन् १९४१ ई० में उनको गिरफ्तार हो जाने पर विप्लव प्रकाशन बन्द हो गया। किन्तु अपनी विचारधारा के प्रचार में उन्होंने विप्लव का खासा अच्छा उपयोग किया विभिन्न जेलों मे पढने लिखने का जो अवकाश मिला था उसमें उन्होंने देश–विदेश के बहुत से लेखकों का मनोयोग पूर्ण अध्ययन किया। 'पिजड़े की उडान' कहानी संग्रह व 'वो दुरियाँ' की कहानीयॉ जेल मे लिखी गयी विप्लव के प्रकाशन के साथ ही बागी पत्रिका का भी सम्पादक यशपाल ने किया। ये पत्रिका उर्दू संस्करण पर आधारित थी।

---

१. लाहौर से लखनऊ तक–प्रकाशवतीपाल, पृ० ९७

आर्थिक तंगी के कारण विप्लव और बागी का प्रकाशन बन्द हो गया। विप्लव का प्रकाशन १६४७ मे फिर आरम्भ हुआ। " इसी बीच काग्रेस सरकार ने यशपाल जी का लखनऊ रहना असम्भव कर दिया। शासन को यशपाल जी के विचारो एव गतिविधियो पर सदेह हो गया—यशपाल जी किसी भी पार्टी के बकायदा मेम्बर नही थे और प्रगतिशील विचारों से उनकी सहमति थी।"[१]

यशपाल का विवाह ६ अगस्त १६३६ ई० मे बरेली जेल में प्रकाशवती पाल से हुयी । यशपाल जी कोर्ट मे आने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह बेड हथकड़ी पहनकर जेल में विवाह नहीं करना चाहते थे लेकिन फिर बाद में डिप्टीकमिश्नर पैडले ने जेल के कार्यालय में शादी करा दी। काफी कठिनाईयो व शारीरिक अस्वस्थता के कारण २ मार्च, १६३८ ई० मे जेल से रिहा कर दिये गये। जेल से छुटते समय यशपाल जी को सरकारी खर्च पर गर्म सूट और नये जूतें भी पहनाये गयें। इसके बाद उन्होंने अपनी जीवन यात्रा लखनऊ मे ही व्यतीत की।

१६ जुलाई, १६४१ में पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम उन्होंने किरण रखा और २७ जुलाई, १६४४ में पुत्र आनन्द का जन्म हुआ। इस तरह सम्पूर्ण जीवन साहित्य सृजन व प्रकाशन में व्यतीत करते हुए २६ दिसम्बर, १६७६ ई० की मनहूस घडी के अंतिम समय मे यशपाल सदा सर्वदा के लिए इस ससार से विदा हो गये।

---

१. लाहौर से लखनऊ तक — प्रकाशवती पाल पृ०—११७

इस समय वह सिहावलोकन के चौथे भाग के कुल चालीस पृष्ठ ही लिख पाये थे। न जाने कितना कुछ अभी उन्हे कहना था। उनकी ख्याति हमारे स्मृति पटलपर, प्राणो मे सदा–सदा के लिए बनी है वह अमिट रहेगी। यशपाल भले ही अतीत के सहगामी हो गये परन्तु भविष्य के प्रेरणा स्रोत के रूप मे वे सदैव स्मरण किए जाते है। "यशपाल का निधन होने पर एक तूफान सा आ गया। देश विदेशों से संदेशो की बाढ आ गयी। शायद ही कोई दैनिक साप्ताहिक समाचार पत्र या मासिक पत्रिका हो जिसने हमारे दुख मे साथ न दिया हों। पूरा वर्ष दुखद सदेशो को सम्भालने और यशपाल की चर्चा मे व्यतीत हो गया।"[1]

साहित्य यात्रा :–

साहित्य मूलतः जीवन की व्याख्या है। साहित्य यात्रा के विकास मे यशपाल ने साहित्य जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हुए जीवन के विविध पक्षो एवं परिस्थितियों का उद्घाटन और विवेचन अपने साहित्य सृजन के माध्यम से समाज में प्रस्तुत किया है।

यशपाल आधुनिक युग के श्रेष्ठ लेखक हैं। उन पर कम्यूनिष्ट विचारधारा का प्रभाव दिखलायी पड़ता है। इन्होने साहित्य लेखन के क्षेत्र में जैसे कहानी संग्रह–अभिशप्त, वो दुनिया, तर्क का तूफान, पिजरे की उड़ान, भस्मावृत्त

---

१. लाहौर से लखनऊ तक–प्रकाशवती पाल, पृ॰ सं॰ १६६

चिन्गारी, फूलो का कुर्ता एवं धर्मयुद्ध आदि है तथा हास्य निबन्धो जैसे चक्कर क्लब, बात–बात मे बात, न्याय का सघर्ष तथा जग का मुजरा एव कथात्मक निबन्धो मे देखा सोचा, समझा, बीबी जी कहती है, एव मेरा चेहरा रोबीला है तथा सस्करणो में सिहावलोकन भाग १ से भाग ३ तक, लोहे की दीवार के दोनो ओर एवं राहबीती आदि है। इन्होने अपनी साहित्य लेख मे सूक्ष्म से सूक्ष्म सवेदनाओं को बडी सजीवता और चित्रमयता से उभारा है।

साहित्य का उद्देश्य भावो का उदात्तीकरण होता है और यह तभी सम्भव है जब हम सद्‌गुणों का विकास करें इसके विपरीत कम्यूनिस्ट साहित्य भावों के उदात्तीकरण पर विश्वास नहीं करता है। परिणाम यह होता है कि साम्यवादी लेखक सही अर्थों में यथार्थवादी लेखक नहीं हो पाते है। इस दृष्टि से विश्लेषण करने पर यशपाल जी मे दोहरा व्यक्तित्व दिखाई पडता है।

"प्रकृति से तो वह कलाकार और यथार्थवदी है लेकिन व्यावहारिक रूप में साम्यवादी है।"[1] साम्यवाद का पहला सिद्धान्त यह है कि रूढिवादी विचारों को पूर्णतया नष्ट कर दो तभी नयें विचार पनप सकेगे । गॉधीवाद और समाजवाद में प्रमुख अन्तर यह था कि गॉधीवाद व्यक्ति को लेकर चला और जबकि समाजवाद समाज को लेकर चला। एक ,व्यक्ति प्रधान था तो दूसरा समाज प्रधान था।

---

१. यशपाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व–एक सर्वेक्षण–डॉ॰ मधुजैन, पृ॰ ३६५

यशपाल मे लेखन की प्रवृत्ति विद्यार्थी जीवन से ही थी पर उनके क्रान्तिकारी जीवन मे उन्हें अनुभव प्राप्त कराते हुए अनेकानेक सघर्षो से जूझने पर बल दिया। सामाजिक, राजनैतिक एव सास्कृतिक क्षेत्रों मे वे क्रान्तिकारी विचारो को लेकर साहित्य सृजन मे चले है। उनके लिए राजनीति,समाज तथा साहित्य ये तीनों साधन है और एक ही लक्ष्य की पूर्ति मे सहायक है। साहित्य के माध्यम से वैज्ञानिक क्रान्ति की भूमिका तैयार करने का प्रयास किया है। विचारो से यशपाल काफी दूर मार्क्सवादी है। पर कट्टरता से मुक्त होने के कारण इससे उनकी साहित्यकता को प्राय. क्षति नही पहुँची है। बल्कि लाभान्वित ही हुए हैं।

यशपाल जी पहले कहानीकार के रूप मे हिन्दी साहित्य जगत् में आये अब तक उनकी लगभग सोलह कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके है। यशपाल मुख्यतः मध्यवर्गीय जीवन के कलाकार है और इस वर्ग से सम्बद्ध उनकी कहानियाँ बहुत ही मार्मिक बन पडी है। मध्यवर्ग की असंगतियों, कमजोरियों विरोधाभासो, रूढियों आदि पर इतना प्रबल कराघात करने वाला कोई दूसरा कहानीकार नहीं है। दो विरोधी परिस्थितियो का वैसम्य प्रदर्शित कर व्यंग की सर्जना उनकी प्रमुख विशेषता है। यर्थार्थ जीवन की नवीन प्रसंगोद्रभावना द्वारा वे अपनी कहानियो को और भी प्रभावशाली बना देते है। मध्यवर्ग अपनी रूढ़ियों में जकडा हुआ कितना दयनीय, ववश हो जाता है इसका अच्छा खासा

उदाहरण कहानी 'चार आने' है। झूठी और कृत्रिम प्रतिष्ठा के बोझ को ढोते–ढोते मध्यमवर्ग अपने दैन्य और विवशता में उजागर हो उठा है। 'ग्वाही' और 'सोमा का साहस' मे समाज के ग्लीच, नकाम और कृत्रिमता की तस्वीरे खीची गयी हैं। इस वर्ग के वैषम्य में निम्नवर्ग को रखकर उसके अहंकार और अमानवीय व्यवहार को बहुत ही मार्मिक ढग से अभिव्यक्त करने मे यशपाल की लेखनी खूब कुशल है। एक राज मे मालकिन और नौकर की मनोवृत्तियो की विषमताओ को इस तरह उभारा गया है कि पाठक नौकर की सहानुभूति में तिलमिला उठता है।

हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला में सन् १९७८ ई० में यशपाल के जन्म–दिवस पर हिमाचली लेखकों द्वारा विचार गोष्ठी में यशपाल के लेख पढे गये और... "शिमला पर ही संध्या समय 'रिज' पर स्थित बडे हाल में हिमाचल के कलाकारो द्वारा यशपाल कृत नाटक नशे–नशे की बात में', 'गुडबाई दरदे दिल' का मंचन हुआ।"[१] इस नाटक मे रिक्शे वाले के प्रति की गयी अमानुषिकता के मन में गहरी कचोट पैदा करती है। इस प्रकार की विषमता को अंकित करने के लिए यशपाल ने प्राय उच्च्व मध्यवर्गीय व्यक्तियों को सामने रखा है, क्योकि सामान्य मध्यवर्गीय व्यक्ति अपनी उलझनों से ही खाली नही हो पाता।

---

१. लाहौर से लखनऊ तक–प्रकाशवती पाल। पृ॰ सं॰ २००

यशपाल की कहानी साहित्य मे वस्तु तत्त्व उनमें नीहित समस्याये, उनकी विचारधारा एव उनके मर्म को अपने अध्ययन का मुख्य केन्द्र बिन्दु बनाया। प्रगतिवादी कथाकार होने के नाते शोषित मनुष्यता के प्रति गहरी आत्मीयता यूॅ तो उनके समूचे कथा साहित्य मे विद्यमान है किन्तु उनकी कहानियो में विशिष्ट रचना तत्र के कारण उनकी यह विशेषता अत्यन्त प्रभावशील और मार्मिक बनकर सामने आयी है। जिसके माध्यम से मानव जीवन को इतनी समग्रता से देखने–परखने तथा विश्लेषित करने वाला कहानीकार प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी साहित्य में यदि कोई है तो यशपाल ही है।

यशपाल के व्यग का तीखा रूप "ज्ञान दान" कहानी संग्रह मे दृष्टिगोचर होता है। सामान्यत· कहा जाता है कि यशपाल अपनी कथा के लिए रोटी और सेक्स की समस्यायें चुनी है। यशपाल की कहानियों में कोई न कोई जीवन्त समस्या है पर वे पूर्णतया कलात्मक आवरण मे व्यक्त हुयी है जहॉ उनकी समस्या को कलात्मक, आछनदन नही मिल सका वहॉ कहानी का कहानीपन संदिग्ध हो गया।

यशपाल के कथात्मक निबन्ध संग्रह में 'बीबी जी कहती है मेरा चेहरा रोबीला है' मे सम्मिलित सात रचनाये बीबी जी कहती है, मेरा चेहरा रोबीला है, व्यक्तिगत स्वतत्रा और सामूहिक स्वतत्रा, फूलो की बैंहगी, ताशकन्द लेखक मेला, अंगूरी की बोतल के मोल, अदृश्य बेडी, पचपनवी वर्षगाठ में व्यंग, व्यजना

और अत्यन्त मार्मिक तथा रोचक वर्णनो के कारण कहानी की श्रेणी मे भी गिनी जा सकती है। ये कहानियॉ या निबन्ध लेखक के व्यक्तित्व उसके राजनैतिक विचारो को समझाने और पहचानने मे बहुत सहायक सिद्ध होती है।

यशपाल की कहानियो विकासात्मक की दृष्टि से कहानी कला स्थान महत्त्वपूर्ण है जिन्होने भारतीय समाज जीवन का यथार्थ चित्र खींचकर, अनगिनत समस्याओ, रूढियो, अन्यायों से समाज को मुक्त करने की कोशिश की है। यशपाल ने कुल १६ सग्रहो मे १०० कहानीयॉ प्रकाशित की है। समय–समय पर प्रकाशित और असंग्रहीत कहानियो को मिलाकर वे २२५ से अधिक होती है। यशपाल की प्रथम कहानी सग्रह १६३६ ई० मे पिंजरे की उडान है। इनकी अनेक कहानियो का निर्माण जेल में हुआ है।

यशपाल जी देश की राजनीतिक तथा प्रगतिशील गतिविधियो से सदा ही जुडे रहे। प्रगतिशील विचारो और कम्यूनिस्ट पार्टी के कई कार्यक्रमों में उन्होंने अपनी सहमति दी यशपाल साहित्य के प्रशसक बूढे जवान भारत के कोने–कोने से अपनी समस्याएँ लेकर आते थे। पत्रो के माध्यम से यशपाल जी उनकी समस्याओ का समाधान बताते और उत्तर देते।

यशपाल उपन्यास के रूप में :–

"उपन्यास एक ऐसा कल्पित विशालकाय तथा गद्यमय अध्ययन है जिसमे एक ही कथानक के अन्तर्गत यथार्थ जीवन के निरूपण का प्रयास करने वाले पात्रो का चित्रण है।"[१] वेब्स्टर की उपन्यास की इस परिभाषा मे उपन्यास का जो आधुनिक स्वरूप बताया है वह भले ही न हो फिर भी प्राचीन भारतीय साहित्य में उपन्यास विधि का उद्भव हुआ ही नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। प्राचीन कथा साहित्य, हितोपदेश, पंचतत्र, सरिप्तसागर, बैताल, पच विशति, वासवदजा आदि मे उपन्यास के कई तत्व विद्यमान थे।

आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य का प्रादुर्भाव भारतेन्दु के आगमन से माना जाता है। बीसवीं सदी की दूसरी शताब्दी मे उपन्यास–साहित्य में प्रेमचन्द के पद चिन्हों ने उपन्यास क्षेत्र के अन्तर्गत नया मार्ग प्रशस्त किया। इतना ही नहीं उपन्यास के लिए इन्होने भारतीय जीवन और भारतीय परिवेश प्रदान किया। प्रेमचन्द ने किन्ही उपन्यास को स्वतंत्र चेतना दी। सेवासदन, कर्मभूमि, गोदान, गबन, निर्मला प्रेमाश्रम, कायाकल्प जैसे उपन्यासों की रचना कर प्रेम, रोमांस, कल्पना में फंसे हिन्दी उपन्यास को ऊँचा उठाकर मानव जीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब बना दिया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का कथन द्रष्टव्य

---

१. A fictitious prose tole if considerable length in which characters and coutions, professing to represent those of real life one portroyed in plot-(Webster) New International Dictionery of English Language (1945) P. 1670

है कि "प्रेमचन्द शताब्दियो से पद दलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे, पर्दे में कैद पद–पद लांक्षित और असहाय नारी जाति की महिमा के प्रवाहक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकाक्षा, दुख–सुख और सूझ–बूझ जानना चाहते है, तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नही मिल सकता। झोंपडियो से लेकर महलो, खुनचे वालो से लेकर बैको, गॉव से लेकर धारा–सभाओं तक आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नही ले जा सकता।"[1] प्रेमचन्द ने उपन्यास को सोद्देश्य बनाकर उसकी उपयोगितावादी दृष्टिकोण से निर्मित की।

जयशंकर प्रसाद, शिवपूजन सहाय, चतुरसेन शास्त्री, विश्वम्भर नाथ कौशिक, बेचन शर्मा 'उग्र' प्रताप नारायण मिश्रा, वृन्दावन लाल वर्मा इसी युग के जाने माने उपन्यासकार हैं जिनकी रचनाओ में हिन्दी उपन्यास में कथा–वस्तु पात्रों में सन्तुलन का निर्माण किया, कथा मे स्वाभाविकता लायी। इस युग की सबसे बडी उपलब्धि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद है। फिर भी प्रेमचन्द उपन्यासयुग में तटस्थता की कमी, घटना बहुलता, स्वानुभूति दर्शन का आभाव, बौद्धिकता की कमी जैसी त्रुटियों को पूर्ण करने की क्षमता लेकर प्रेमचन्दोत्तर युग की उद्भावना हुयी।

---

१. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ –डॉ॰ शिव कुमार शर्मा, पृ. सं॰ ६१६

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास देश–काल सीमित दायरे से उपर उठे। परिणामस्वरूप प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास, जिसे आधुनिक उपन्यास भी कहा जाता है, मनोवैज्ञानिक, फ्रायडियन, राजनीतिक तथा मार्क्सवादी विचारधाराओ को लेकर प्रकट हुआ। हिन्दी उपन्यास की इस पृष्ठभूमि पर यशपाल मार्क्सवादी चिन्तन को लेकर उतरे।"अपने स्वानुभूति दर्शन, बौद्धिकता, सामाजिकता, प्रतिबद्धता के कारण युगीन उपन्यास धारा से हटकर उन्होने सर्वथा अलग विचारधारा का हिन्दी उपन्यास में निर्माण किया"।[१] यशपाल ने जो मौलिकता के दर्शन कराये अपने आप मे स्वतत्र–चेतना कलाकार का परिचय दे जाते है। हिन्दी उपन्यासो में यशपाल एक सशक्त एव मजबूत कडी के रूप मे स्वीकार किये जाते है। यशपाल ने अपने उपन्यास साहित्य में विभिन्न पात्रों का निर्माण कर समाज का प्रतिरूप ही साकार किया है। इस सन्दर्भ में यह कथन तो अपने आप में प्रमाण बनकर उपस्थित है कि–"यशपाल एक मात्र हिन्दी उपन्यासकार है जिन्होंने आतकवादी–क्रन्तिकारी युग से स्वतांत्र्य युगीन काल तक देश के राजनीतिक जीवन के वैचारिक मंथन को औपन्यासिक यथार्थ का रूप दिया है।"[२] स्वतत्रता आन्दोलन, क्रान्तिकारी पार्टी की गतिविधियॉ, साम्यवादी दल के आन्दोलन, मजदूर सगठन, कांग्रेस दल का गठन एवं विघटन ऐसी ही विषय है जो हिन्दी

---

१. यशपाल – एक समग्र मूल्यांकन, सुनील कुमार लवटे, पृ॰ सं॰ १५१

२. हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव–डॉ॰ भारत भूषण अग्रवाल, पृ॰ स॰ ३१८

उपन्यास के लिए सर्वथा नवीन थे। यशपाल ने युग को देखा था। स्वय वे इससे अनुभूत भी थे, यही कारण है कि इन विषयो मे जो सजीवता प्राप्त हुयी वे देखते ही बनती है। यशपाल प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढा ले चलने वाले यथार्थवादी कलाकार है, जिनके उपन्यासो में आज का जर्जर भारतीय समाज और भारतीय जीवन मुखरित हो उठा है। किन्तु प्रेमचन्द के उपन्यासो मे जहॉ यथार्थ पर आदर्श की गहरी चादर है, वहॉ यशपाल के उपन्यासों मे रोमान्स की गहरी धारा देखने को मिलती है। यशपाल के उपन्यास मे इनके कथानकों के बीच प्रेम सम्बन्धो की भी जमकर चर्चा हुयी है। प्रेम सम्बन्धो के पीछे प्रमुख कारण यशपाल का यह था कि वे आर्थिक असामनता की खाई को पाटना चाहते थे।

हिन्दी उपन्यास को यशपाल की देन है कि उन्होंने सामाजिक समस्याओं के आध्यात्मिक समाधान की जगह वास्तविक समाधान करने वाले मार्ग अपनाये और उपन्यास को विशुद्ध यथार्थ रूप दे दिया। प्रेमचन्द पश्चात् यशपाल ही दूसरे क्रान्तिकारी उपन्यासकार हैं। जिन्होंने "सतीत्व" जैसे प्राचीन संस्कारों से मुक्त करने की सामाजिक बुराईयों आदि के प्रति अपनी असहमति प्रकट की है। मार्क्सवादी उपन्यासकार होने के नाते यशपाल ने जीवन के हर पक्ष को नयी दृष्टि दी। यशपाल ने विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि कोण से विषमता, शोषण,

अत्याचार, चारित्रिक पतन, उत्थान आदि की व्याख्या की जो हिन्दी उपन्यास मे अपना विशेष स्थान रखती है। यशपाल ने गॉधीवाद को कालवाद्य मानकर उसके विरोध मे मार्क्सवाद की स्थापना की जो आधुनिक जीवन दर्शन से निश्चित रूप से हिन्दी उपन्यास को प्रभावित किया।

विकास क्रम की दृष्टि से ''दादा कामरेड'' यशपाल जी का सर्वप्रथम उपन्यास है यह उपन्यास मई सन् १६४१ मे प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास मे पहली बार राजनीतिक सिद्धान्तो तथा रोमांस का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। इस उपन्यास मे यशपाल ने हिसात्मक विप्लव तथा सशस्त्र डैकतियो का स्पष्ट विरोध किया। दादा और हरीश आदि की राजनीतिक और क्रान्तिकारी कहानी के साथ–साथ सामाजिक क्रान्तिकारी शैली की कहानी भी चलती है। इस उपन्यास के माध्यम से उन्होने स्त्री और पुरूष के पारस्परिक सम्बन्ध मे स्वतंत्रता की मांग प्रस्तुत की।

सन् १६४३ ई० मे दूसरा उपन्यास देशद्रोही प्रस्तुत हुआ। इसमे भी रोमांस ही प्राधान्य है। इस कथानक का आधार है एक अभागा जीवन और उसकी दुख दर्द भरी कहानी जो विधि के हाथ की कठपुतली है। वह उसे कई नाच नचाता है वह उपर उठने का प्रयत्न करता है, परन्तु अन्त मे धुर्त बदमाश देशद्रोही की उपाधियों से विभूषित किया जाता है जो उसे प्राणो का काल ग्रास लेती है। "देशद्रोही" की आलोचना करते हुए डॉ० राम विलास शर्मा ने कहा है

कि–''क्या देशद्रोही की कहानी जनयोद्धो के पेचीदा सवाल पर काफी रोशनी डालती है ? हम डॉ० साहब इस वर्ग–संघर्ष और जन–युद्ध पर आधारित आलोचना को सत्य नही मान सकते क्योकि साहित्य की सरिता को जन–युद्ध के खूटे से बाधने की चेष्टा करना हास्यास्पद ही तो है। लेकिन इसमे कोई सन्देह नही कि उनके उपन्यासो में रोमास की गहरी धारा है। देश–द्रोही का नायक डॉ० खन्ना, नरगिस से प्रेम करता है। उसे छोडकर चल देने पर फिर खातून से प्रेम व्यापार चलता है और तब गुलसन तथा चदा के प्रेमपास मे भी उसे फॅसना पडता है। उस पर भी सबसे बडी विशेषता तो यह है कि नजदीक आने पर वह भाग चलता है। किन्तु दूर होने पर प्रेम में घुलता भी है।''[१]

महा पंडित राहुल सास्कृत्यायन ने कहा था ''यशपाल की परतूलिका उतावलेपन के लिए नही, स्थायी मूल्य की चीजो के लिए है इस उपन्यास को संसार की किसी भी उन्नत भाषा के उपन्यासों की श्रेणी में तुलना के लिए रखा जा सकता है।''

प्रसिद्ध इतिहास भगवत शरण उपाध्याय ने देशद्रोही को टाल्सटाय और शोलोखोव के उपन्यासो की तुलना मे रखा है। यह उपन्यास भारतीय स्वतत्रता प्रगतिशील यशपाल की अनवरत साधना है।

अभागे देशद्रोही का अन्त हुआ परन्तु यशपाल ने सन् १६४५ ई० मे अपनी अमूल्य निधि दिव्या हिन्दी साहित्य को प्रदान की। यह उपन्यास

१.विशाल भारतीय– लेख उपन्यास का यशपाल–रामनदंन सिंह पृ० सं० १२६

ऐतिहासिक कल्पना से परीपुष्ट एक ऐसी कलाकृति है जो युग–युग तक एक दिव्य आलोक से पाठक तथा समाज ही ऑखो को परितृप्त करती रहेगी। दिव्या उपन्यास मे दिव्या त्रस्त नारी की करुण कथा है जो नारी के अन्तर्मन चेतना को उद्घाटित करती है। "दिव्या इतिहास की नयी सम्भावनाओ का सकेत देने वाला उपन्यास है। सन् १९४५ ई० मे दिव्या का प्रकाशन हुआ हिन्दी में प्रगतिवादी आन्दोलन तेज हो रहा था। "यशपाल दिव्या मे नारी की दलितावस्था को सामाजिक सरचना से जोडकर देखते है। सारी विपरीत परिस्थितियो मे भी वे उसकी प्रेमानुभूति को जड होने से बचाने पर बल देते है क्योकि वही सृष्टि की नियामिका शक्ति है जो संतति के रूप मे मनुष्य की अमरता का आश्वासन देती है।"[१]

"दिव्या" इतिहास नही ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति का चित्र है। इतिहास के मन्थन से प्राप्त अनुभव के अनेक रत्नों में सबसे प्रकाशमान तथ्य हैं–मनुष्य भोक्ता नही कर्त्ता है। "मनुष्य से बडा है केवल अपना विश्वास और स्वयं उसका ही रच हुआ उसका विधान। अपने विश्वास और विधान के सम्मुख ही मनुष्य विवशता अनुभव करता है और स्वयं ही उसे बदल भी देता है। इसी सत्य को अपने चित्रमय अतीत की भूमि पर कल्पना से देखने का प्रयत्न दिव्या है।"[२] प्रस्तुत

१. दिव्या का महत्व–मधुरेश, पृ॰ स॰ १३६–१३७
२.दिव्या यशपाल (भूमिका से) पृ० ६

कृति बौद्वकालीन कथानक के आधार पर सर्वदेशीय और सर्वकालीन मान्यताओ तथा उनके कुप्रभाओं का दर्शन कराती है।

उपन्यास क्रम की दृष्टि से पार्टी कामरेड सन् १६४७ ई० का राजनैतिक उपन्यासो की अपेक्षा अधिक प्रौढ है, तथा इस कोटि की अन्तिम रचना है। किस प्रकार एक कम्युनिष्ट लडकी गीता के सम्पर्क में आकर पद्म लाल भावरिया एक लखपति लफंगा धीरे–धीरे अपनी दशा का सुधार करते हुए अन्त मे अपने को बलिदान कर देता है। यही उपन्यास का मूल कथ्य है। जो उपन्यास की कथा को रोचक एव प्रभावपूर्ण बनाती है।

मनुष्य के रूप १६४६ ई० राजनीतिक उग्रता बहस और विवाद से दूर रहकर लेखक नें यहॉ यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि एक ही मनुष्य परिस्थितियों से प्रताडित हो कितने ही रूप धारण करता है। एक़ ही समाज मे, एक ही घर में मनुष्य के अनेकों रूप दृष्टिगत होते हैं। मनुष्य के रूप मे सोमा को प्रेम की धारा में घुमाया गया है और अन्त में एक सिने स्टार अभिनेत्री पहाडन के रूप समाज में प्रस्तुत किया।

बालमुकुन्द गुप्त के शब्दों में "यशपाल के पहले उपन्यासों में मूलाधार कल्पना का वैचित्र रहा है और विकास धरातल के इस छोर पर आकर

उपन्यासकार मनुष्य के रूप मे यह आधार प्रकट यथार्थ की अन्तरग परीक्षा बन गया है।"[१]

समस्त उपन्यास का वातावरण बौद्धिक है अत आदि से अन्त तक यह यथार्थवादी है। डॉ॰ सत्येन्द्र का कथन "मनुष्य की यथार्थ मनोवृत्ति का चित्राकन करने की यशपाल ने सजग चेष्टा की है। यह उपन्यास लेखक के इस विश्वास को सिद्ध करता है कि परिस्थितियो से विवश होकर मनुष्य के रूप बदल जाते है।

'मनुष्य के रू' में मनुष्य की हीनता और महानता के यथार्थ चित्रण एक विशद प्रयत्न किया है।

'दिव्या' के कथानक की भाँति "अमिता" (१६५६ ई०) भी इतिहास नही, ऐतिहासिक कल्पना है। अमिता की पृष्ठभूमि में तत्कालीन विश्वराजनीति मे दिखायी पडने वाली कुछ महत्त्वपूर्ण घटनायें है। अमिता में हिंसा पर अहिसा की विजय परिलक्षित होती है जिसमे अमिता की सरलता, निश्छलता, प्रेम से प्रभावित होकर अशोक जैसा पराक्रमी योद्धा भी नतमस्तक हो जाता है। 'अमिता' मे यशपाल मार्क्सवादी सिद्धांतो से हटकर विश्वशान्ति के उपायों पर चिन्तन करता दिखलायी पडता है। इस उपन्यास में यशपाल ने बौद्ध दर्शन को प्रतिपाद विषय बनाया है।

---

१. यशपाल अभिनन्दन ग्रथ, पृ॰ स॰ ८५

'झूठा–सच' (१६५८ ई०–१६६० ई०) झूठा–सच के प्रकाशन मे सिद्ध कर दिया कि बहुत विशाल फलक पर जीवन के विविध रूपो, आयामो, समस्याओ, जटिलताओ को अपने ढग से प्रभावशाली रूप मे प्रस्तुत कर सकते है इतनी विशालता, इतनी वैविध्य, इतने प्रश्न, इतनी समस्याये हिन्दी के किसी एक उपन्यास मे नहीं उठायी गयी है। इसे अपने युग का औपन्यासिक महाकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है, यद्यपि इसमे जितनी व्याप्ति है उतनी गहरायी नही है।

उपन्यास दो भागों 'वतन और देश' और 'देश का भविष्य' में प्रकाशित हुआ है। प्रथम भाग में देश के सामयिक और राजनैतिक वातावरण को यथा सम्भव ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया गया है। यशपाल जैसी ऐतिहासिक दृष्टि हिन्दी उपन्यासकारो मे कम ही लोगो को प्राप्त है। इसलिए देश विभाजन की भूमिका पर इतनी बडी कृति की परिकल्पना यशपाल ही कर सकते है।

विभाजन के बाद देश के लाखो निरपराध आदमियों को मौत के घाट उतार दिया गया मानवीय यातनाओ के इतिहास में यह विश्व की क्रूरतम घटनाओं मे से एक घटना मानी जायेगी। "वतन और देश" मे जो वतन था वह देश नही रह गया और जो देश था वह वतन नहीं रह गया। वतन और देश के बीच विभाजक रेखा खीचने की जिम्मेदारी किसकी है ? अग्रेजो की या

स्वार्थपरता से घिरे देशभक्तो की ?"[1] यशपाल ने ध्वस्त मूल्यो के साथ–साथ नये मूल्यो का भी चित्रण उपन्यास मे किया है।

दूसरे भाग देश का भविष्य में दगे से बचे कुछ पात्रो द्वारा देश के भविष्य के सन्दर्भ मे बनते बिगडते

मूल्यो को उजागर किया गया है। इस तरह यह उपन्यास देश के एक दशक का प्रामाणिक दस्तावेज बन जाता है। एक प्रबुद्ध पाठक ने इस उपन्यास को हिन्दी साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि स्वीकार की है– 'झूठा–सच' मे जैसे व्यापक चित्र फलक पर देश के इतिहास की अत्यन्त भीषण घटना का चित्र यशपाल ने उकेर है, वह सचमुच उन्ही जैसे कलाकार का काम था, उनका प्रयत्न विराट एव प्रशंसनीय है। हिन्दी साहित्य मे इस ऐतिहासिक घटना की एकान्त उपेक्षा सचमुच एक खेद जनक तथ्य है। यशपाल ने इस घटना के दर्द को अपनी आत्मा में अनुभव किया और अपनी कलात्मक सिद्वि के रूप में उसे हमारी व्यथा बना दिया है। 'झूठा–सच' प्रस्तुत दशक की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसमे सन्देह नही।"[2]

प्रसिद्व समीक्षक प्रकाश चन्द्र गुप्त की यह समीक्षा 'झूठा–सच' यशपाल का अब तक लिखा सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है और निश्चय ही हिन्दी की अमर

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ॰ बच्चन सिंह, पृ॰ स॰ ३७३–३७४
२. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण–महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ॰ सं॰ १४६

कलाकृतियो मे इसकी गणना होगी। आधुनिक भारतीय जीवन की अभूतपूर्व झाकी यह उपन्यास प्रस्तुत करता है। इसका कैनवस विशाल है और स्वर्गीय प्रेमचन्द की कृति रगभूमि का स्मरण दिलाता है। जीवन की अटल गहराईयो मे कथाकार उतर सका है और इस प्रकार आज के भारतीय जीवन के व्यापक प्रसार और संश्लिष्ट सूक्ष्मता दोनो की ही झांकी हम इस उपन्यास मे पाते है। लगभग बारह सौ पचास पृष्ठो मे फैली यह कथा युग के प्रतिनिधि जीवन से हमे परिचय कराती है।"[१]

सन् १९६२ ई० मे प्रकाशित अपने लघु उपन्यास 'बारह घंटे' में यशपाल ने मनुष्य के जीवन मे प्रेम को प्राकृतिक अनिवार्य आवश्यकताओ के रूप में स्वीकार किया है। 'बारह घटे' भी उपन्यास की नायिका विनी को केवल संस्कारगत नैतिकता से ही नही आधुनिक परिस्थिति बोध से प्राप्ति चिन्तन से भी देखने का यत्न किया है। बारह घंटे उपन्यास के फ्लेप पर छपे श्री मधुरेश का यह विचार भी द्रष्टव्य है। इस रचना से यशपाल के संकीर्ण मना आलोचको के अश्लीलता सम्बन्धी आरोपों का निराकरण ही नही होता बल्कि नर–नारी के पारस्परिक आकर्षण के सम्बन्ध में नये परिस्थिति बोध के अनुसार आध्यात्मिक–नैतिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण भी प्राप्त होता है।

---

१. हिन्दी वार्षिकी, १९६०, पृ० ८०।

'अप्सरा का श्राप' सन् (१६६५ई०) मे भी नारी समस्या प्रधान है, शकुन्तला और दुष्यन्त की कथा का सारतत्त्व यही है कि जिसके माध्यम से नारी के पतिव्रत धर्म की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास दुष्यन्त तथा शकुन्तला की परम्परा से चली आती कथा के प्रति हमारे मोह को तोड देती है। उपन्यास मे यही यशपाल का प्रतिपाद्य विषय है। क्योकि परम्परा से चले आते नारी शोषण को एक केन्द्रीय समस्या के रूप में अपने पाठकों के सम्मुख रखा है, उपन्यास मे मेनका लेखक के दृष्टिकोण की प्रवक्ता है, जिसके द्वारा यशपाल ने परम्परागत धार्मिक, सामाजिक एव नैतिक मान्यताओं पर कई प्रहार किया है। स्वय लेखक के शब्दों मे पुरातन अध्ययन को आधुनिक दृष्टि से प्रस्तुत करने का अभिप्राय–" पुरुष द्वारा युग–युग से निरंकुश स्वार्थ के प्रमाद में धर्म और व्यवस्था के नाम पर नारी के निर्दय शोषण के प्रति ग्लानि और आधुनिक नारी की व्यक्तित्व तथा आत्मनिर्भरता की भावना के प्रति सहानुभूति व्यक्त की जा सकी।"[1]

मेनका व्यक्ति के सहज विकास की प्रतिगामी है और इसी नाते किसी भी प्रकार के शोषण तथा अदिवाद के खिलाफ अपनी आवाज उठाती है।

उपन्यास क्रम की दृष्टि से क्यों फॅसे उपन्यास में लेखक ने उनमुक्त प्रेम का सर्मथन किया है। उपन्यास का नायक भास्कर की वासना उन्मुक्त प्रेम की ओर उन्मुख हो जाती है। एक चित्र प्रदर्शनी में मोती नाम की प्राध्यापिका के

---

१. अप्सरा का श्राप – यशपाल – भूमिका से

सम्पर्क मे आता है, वह उसके प्रति स्वाभाविक स्वच्छ आकर्षण की अनुभूति करता है। यही आकर्षण उसे वासना तृप्ति के लिए प्रेरित करता है। मोती और भास्कर दोनों समय निकालकर परस्पर मिलते है। मोती सद्गृहस्थ नारी है उसका पति एक अच्छा वकील है, एक पुत्र की मॉ है।"उपन्यासकार यशपाल ने मोती की घटना क्रम द्वारा भारतीय परम्परागत दाम्पत्य जीवन पर प्रश्नचिन्ह उपस्थित किया है। परम्परागत दाम्पत्य जीवन के मूल्य अब परिवर्तित हो रहे हैं मोती की घटना द्वारा यह तथ्य समाज के समक्ष लेखक ने उपस्थित किया है।"[१]

'क्यो फॅसे' उपन्यास मे हमारे नये समाज की पाश्चात्य की नई धारणाऍ भारतीय समाज मे भी अपनी अप्रत्यक्ष जडे जमा रही हैं 'क्यो फॅसे' उपन्यास इसका अच्छा उदाहरण है। इसका प्रत्येक पात्र नये विचारों व धारणाओ मे विश्वास रखता है। विवाहिता नारी भी उन्मुक्त प्रेम व अविवाहित युवक भी स्वतत्र प्रेम के पुजारी है।

अतिम उपन्यास की कडी में यशपाल कृत "मेरी तेरी उसकी बात" सन् १६४०–४२ की राजनीतिक गतिविधियों और भारत छोडो आन्दोलन का विस्फोटक है। इस उपन्यास में समकालीन इतिहास के मानव अनुभवों का एक ऐसा दस्तावेज हैं। जिसमें सिर्फ व्यक्ति की अनुभूतियों और संवेदनाओं की लीला ही नही है बल्कि उन सब सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक ताकतों

---

१. हिन्दी उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य चित्रण–डॉ. उर्मिला भटनागर, पृ. स. १२५–२६

का भी खेल है जो इस मानवीय अनुभवो को रूपायित और निर्देशित कर रहा है। इसमे दो पीढियो से क्रान्ति की वेदना को अदम्य बनाते व्यैक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक और साम्प्रदायिक विषमताओं का स्पष्टीकरण भी है।

यह उपन्यास 'मेरी आपकी सबकी जिन्दगी की किसी भी स्थिति, त्रास्दी और घटनाओ, परिवर्तनो, उद्वेलनो की अन्तरक्रिया और मेरे आपके सबके आचरण, चरित्र, आपसी रिश्तों और व्यक्तित्व को कितना जोडती–तोडती है यहि 'मेरी–तेरी उसकी बात' की पहचान है।"[1]

लेखक ने समकालीन इतिहास के मानवीय प्रभाव की विविधता को अनुभव बिम्ब बनाकर वक्त की नैतिक और राजनीतिक जिन्दगी से जोडकर चरित्रों में मूर्त किया है तथा रचनाशीलता मे तथ्यों और घटनाओं के वस्तुपरक यथार्थ को स्वीकार कर वास्तविकता के अपने सहज, स्वाभाविक अर्थ को पूर्त करता है। पूरा उपन्यास आदि से अन्त तक रोचकतापूर्ण है जो आगामी पचास वर्षो तक भारतीय कथाकारो का मार्गदर्शक रहेगा।

यशपाल के उपन्यासों पर दृष्टि डालने के पश्चात् हम यह कह सकते है कि यशपाल में कथा कहने की अद्भुत क्षमता है पर एक पूर्व निर्मित विचारधारा को रूपायित करने की उत्कट प्रेरणा उनके उपन्यासों की स्थितियो, पात्रों,

---

१. लाहौर से लखनऊ तक–प्रकाशवती पाल, पृ० सं० १८४–१८५

विकास और परिणतियों को भी पूर्वनिर्मित बना देती है। जीवन की समस्याओं को यशपाल ने अपने साहित्य में रोचकता एवं कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। यशपाल ने बहुत से विदेशी साहित्यकारो की रचनाओं का अध्ययन अवश्य किया है जिसके कारण कही–कही उनके उपन्यासों पर विदेशी प्रभाव का भ्रम हो जाता है, किन्तु उन पर विदेशी साहित्यकार की सचेतन छाप नही पडी है, वह पूर्वतः भारतीय कलाकार है।

यशपाल के उपन्यासों पर आंकलन करने के पश्चात् हम कह सकते है कि हमारी नई पीढी आधुनिक युग के विचारो और मान्यताओ से प्रभावित होने के कारण जीवन में क्रन्तिकारी परिवर्तन करना चाहती है, जबकि पुरानी पीढी लीक पकडे चल रही है परिणामस्वरूप समायोजन की समस्या नई पीढ़ी के लिए जटिलतम बनती जा रही है। ऐसी स्थिति मे उनके समक्ष दो ही रास्ते रह जाते हैं या तो वह अपनी मान्यताओं को तिलांजलि देकर परिस्थितियों से समझौता कर ले या समाज से विद्रोह करे। समस्या तब और भी जटिल हो जाती है जब मनुष्य टूटना स्वीकार कर लेता है किन्तु झुकना नहीं। और संगठित समाज से अकेले ही लोहा लेने को तैयार हो जाता है। यह सत्य है कि दृढता को विजय अवश्य मिलती है और प्रायः ऐसे युवक–युवती अपने आदर्शो के लिए विवश कर देते हैं। उनका विद्रोह सफल भी होता है किन्तु

अपने इस विजय के लिए उन्हे बडी भारी कीमत चुकानी पडती है। वह एकाकी बनकर समाज की संवेदना और सहानुभूति और स्नेह खो देते है।

आधुनिक युग के समस्त बुद्धिजीवी सवेदनशील मनुष्य सामाजिक अस्वीकृती के शिकार हो चुके हैं उनकी बौद्धिकता उन्हे परम्परा के अन्धानुकरण से रोकती है और समाज के विरोध करने के लिए उत्प्रेरित करती है। किन्तु समाज उन्हें परम्परा से अलग रूप में स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं है। फलस्वरूप ईमानदार बुद्विजीवी व्यक्ति निरंतर घुटन और उत्पीडन से टूटते जा रहे है। यशपाल ने उपन्यासो में आर्थिक शोषण के साथ–साथ बौद्धिक शोषण के प्रति रोष–क्षोभ छिपाये नहीं छिपता। 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास के अन्त में उषा को समाज के सम्मुख झुकते दिखाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि जब तक समाज में दृष्टिकोण नहीं परिवर्तित हो जाते तब तक मुट्ठीभर प्रगतिशील लोग दबने, घुटने और सिसकने को विवश है। यशपाल जी इस बात पर कटिबद्ध है कि हम वर्तमान व्यवस्था को उसी परम्परा को मान्यता देगे जो मानव के विकास मे उसके फलने फूलने में सहयोगी हो। इस प्रकार समाज को महत्त्व प्रदान करते हुए जैसा कि उनकी निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है कि– "व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात करते समय यह बात प्रायः भुला दी जाती है कि हमारी या आपकी व्यक्तिगत स्वंतत्रता दूसरे के भावों और हित पर तो आघात

नहीं कर रही हमारा अस्तित्व समाज के बिना सम्भव नहीं तो हमारी व्यक्तिगत स्वंतत्रा भी दूसरो के हित एवं संतोष से अवश्य सीमित होगी।"[१]

यशपाल का अपना विशिष्ट दर्शन होने के बावजूद भी पाठकों ने बडे पैमाने पर स्वीकार किया है यह लेखक की सफलता ही है। एक सर्वेक्षण मे यह प्रश्न पूछने पर की "आधुनिक जीवित कलाकारों मे चोटी के पाच कलाकार कौन है ? अधिकाश पाठको ने यशपाल को चोटी मे चुना।"[२] लेखकों ने पाठको का एक ऐसा वर्ग बनाया था जो समाज की ओर विशिष्ट वैज्ञानिक दृष्टि से देखता था। यशपाल ने पाठकों को अपने उपन्यासों के जरिये ऐसी दृष्टि दी। जिससे पाठक परम्परावादी नैतिक बातों में आधुनिकता की प्रस्थापना करने लगे। नारी की समानता मानने लगे। यौन सम्बन्धो का जो भय समाज पर छाया था यशपाल ने उससे मुक्ति दिलायी पाठक सामाजिक समता के लिए लालायित हो उठा। व्यक्तिवादी संकीर्णता को छोड पाठकों में सामाजिक प्रतिबद्धता की भावना पैदा हुयी।

यशपाल का समूचा उपन्यास साहित्य उनके शिल्पगत उपलब्धियो को लेकर हिन्दी साहित्य में प्रगट हुआ है। शिल्प विधि के स्वरूप यशपाल के उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव तथा यशपाल की देन पर विचारोपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि यशपाल की उपन्यास कला निरन्तर विकसित होती

---

१. सिंहावलोकन भाग एक–यशपाल, पृ. सं. ७७

२. यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण–डॉ. मधु जैन पृ. ४२८

गयी है। यशपाल के दर्शन के साथ शिल्प भी पाश्चात्य भी प्रभावित रहा है। यशपाल पाश्चात्य साहित्य के अध्येता थे परवर्ति कृतियों मे शिल्प और शैली का परिवर्तन इसी अध्ययन का फल है, पाठकों की रुचि परिष्करण में यशपाल कला का योगदान उनके आधुनिक चिन्तन के प्रति आस्था से ही सम्भव हो सका है। यशपाल गम्भीर चिन्तक के साथ ही साथ उपन्यास कला के गहरे अध्येता भी थे। यशपाल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रभावित साहित्य क्षेत्रो में अनेक पुरस्कारों से अलंकरित किया गया है। रीवॉ सरकार ने देव पुरस्कार (१९५५ई०), सोवियत लैन्ड सूचना विभाग ने सोवियत लैन्ड नेहरू पुरस्कार १४ नवम्बर सन् १९६९ ई० को प्रदान किया तथा भारत सरकार ने पद्मभूषण उपाद्धि २१ अप्रैल १९७० ई० को एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने मंगला प्रसाद पारितोषिक (१९७१ ई०) उपाद्धि प्रदान कर यशपाल को सम्मानित किया।

छठा अध्याय

उपसंहार

स्वतत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत दासता की बेडियों में जकडा था, नारी की स्थिति पुरुष से भी दयनीय एवं शोचनीय थी। समाज भूल चुका था कि कभी दुर्गा, लक्ष्मी, अदिति, ऊषा, इला, श्रद्धा, जैसी देवियों मार्गी जैसी ब्रह्मवादिनी तथा आपाला, लोपामुदा, मैत्रेयी भारती जैसी सूक्तों की रचयिता विदुषी स्त्रियॉ भी इसी देश मे जननी थी स्त्रियो की वीरता, साहसिकता, कर्त्तव्य परायणता एवं विद्धता सराहनीय थी।

भारतीय मनीषियों का यत्र नार्यस्ते पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता का उद्घोषक विस्मृतप्राय हो चुका था। इनका स्थान मनु के निम्नांकित श्लोक की भावना ने लिया था।

"बाल्ये पितुवर्श तिष्ठे त्पाणि ग्राहस्य यौवने।
पुत्राणाम् भर्तरिप्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्र ताम्
(मनुस्मृति टीकाकर–हरगोविन्द शास्त्री ३/५६, पृष्ठ ११३)

अर्थात्

स्त्री बचपन मे पिता के, जवानी में पति के और पति के मर जाने पर बुढापे के पुत्र के वश में रहे (उनके आज्ञा और सम्पत्ति के अनुसार कार्य करें, स्वतंत्र कभी न रहें।

हिन्दी उपन्यास साहित्य प्रारम्भ से ही नारी के प्रति अनुदार दृष्टिकोण लेकर चला। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासकारों ने जहॉ नारी के प्रतिष्ठित रूप की ओर दृष्टि डालने की चेष्टा भी की है, वहॉ हिन्दू धर्म ग्रन्थो की निन्दात्मक उक्तियॉ उनके सामने आकर खडी हो जाती है।

आधुनिक उपन्यास साहित्य में (प्रेमचन्दोत्तर कालीन) उपन्यासकारो ने नारी—मुक्ति और नारी स्वतत्रता की बात लेखन द्वारा किया है। अन्ततः नारी मुक्ति की अवधारणा मूलत पुरुषवादी सोच पर ही आधारित है।

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है और समाज साहित्य का पुरोधा उससे बडी—बडी अपेक्षाएं की जाती है, आज कल की भागदौड की जिन्दगी मे, बेतहासा भागता हॉफता रचनाकार किसी पीडा, टीस, कचोट एव संत्रास की अनुभूतियो से उद्वेलित हो उठता है कि उसकी ऑंखों से ऑसू, झरने लगते हैं तो कभी वह कलम उठाने के लिए बाध्य हो उठता है और साहित्यकार समाज और जीवन से जुडी रचनाओं को कालजयी रचना बना देता है। वास्तव मे साहित्य की सार्थकता सामाजिक कल्याण मे है। साहित्य और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध मे लेखक अपने साहित्य में ऐसे समाज का वर्णन करता है जैसा वह चाहता है या फिर उस समाज के रीति रिवाज, मूल्य और मान्यताओं का वर्णन करता है, जिसमें वह रहता है। यह पारस्परिक सम्बन्ध निर्विवाद है समाज के रंग ही साहित्य मे वितीर्ण होते हैं अत· समाज के बदलते हुए स्वरूप का प्रतिफलन साहित्य में भी हो रहा है सामाजिक विषमताएँ, असंगतियॉ, विकृतियॉ,

नारी स्वतत्रता, नारी मुक्ति एव नारी का भारतीय समाज के उच्च, मध्य और निम्न की समस्याओं को साहित्यकारो (उपन्यासकारों) ने निकट से देखा और समझा है।

नारी और समाज का भी अन्योन्याक्रित सम्बन्ध रहा है नारी समाज की केन्द्रबिन्दु है, पुरुष और नारी इसके दो ध्रुव है। समाज को नारी से प्रेम, प्रेरणा, सृष्टि और शक्ति मिलती है तो समाज से नारी को प्रतिष्ठा भी और अवमानना भी नारी के सामाजिक मूल्यो की परख समाज और साहित्य के पल–पल परिवर्तित परिवेशो से ही हो सकती है। नारी देवी है, श्रद्धा की पात्री है। नारी के जीवन मूल्यो का निरुपण उपन्यासकारों देश, काल और वातावरण के अनुरूप रखते हैं।

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों मे भी नारी के व्यक्तित्व का उत्तोरत्तर विकास होता दिखलायी देता है इनकी रचनाओं उपन्यासों में नारी के दर्शन होते जो न देवी है, न राक्षसी है बल्कि मानवीय है, मानवीय मन की दुर्बलताओं से उसका हृदय भरा हुआ है। प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासो की नारी अपेक्षाकृत समझदार है। और उसे अपने अधिकार और कर्त्तव्यों का ज्ञान है तथा नारी सामाजिक जीवन के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से अपना सम्बन्ध जोडा है।

प्रेमचन्द जैसे जागरूक कलाकार की सहानुभुति पाकर भारतीय नारी का जीवन–स्पंदित हो उठा, किन्तु प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण नारी का रूप वस्तुत आदर्शवादी ही अधिक रहा।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यासो के क्षेत्र में अनेक नई–नई प्रवृत्तियों ने जन्म लिया। प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने मार्क्सवादी कसौटी पर नारी के शरीर की नाप–जोख को ही विशेषतया अपना उद्देश्य बनाया। समाज भी अनेक समस्याओं की विषमताओ ने आज के उपन्यासकार के मार्ग को जैसे चारो और से अवरूद्ध कर लिया है। आज का हिन्दी उपन्यासकार नारी रूपी समस्या को जितना ही सुलझाने का प्रयास करता है। यह समस्या उतनी ही उलझती जाती है।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी की प्रगतिशील परम्परा के सबसे बडे कथाकार और उपन्यासकार यशपाल है। जिन्होने सामाजिक विषमताओं, असंगतियो और विकृतियों का पर्दाफाश किया है और उनके उपन्यासों में जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश दिखलायी देता है। कुछ समस्याओं पर उन्होने गम्भरता के साथ विचार किया है, तो कुछ समस्याओं की ओर संकेत किया है। भारतीय समाज के अभिजात्य एवं निम्नवर्गीय समस्याओं एवं विषमताओं को यशपाल ने निकट से देखा और समझा है युगीन समाज की सभी समसयाओ जैसे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पर भी उन्होंने अपने उपन्यासों में दृष्टिगोचर किया गया।

युगीन समस्याओं के सन्दर्भ में उन्होंने पूँजीपतियों और मजदूरों के संघर्ष को प्रमुख रूप से चित्रित किया है। मार्क्स के अनुयायी होने के कारण मार्क्सवादी दर्शन की अभिव्यक्ति अनेक उपन्यासों में स्थान–स्थान पर देखी जा सकती है। मार्क्सवादी विचार धारा का आधार मजदूर और मिल–मालिकों

का संघर्ष है, यशपाल अपने उपन्यासो में वर्ग–संघर्ष का भी चित्रांकन किया है, दादा कामरेड, पार्टी कामरेड, देशद्रोही, झूठासच आदि ऐसे उपन्यास है जिसमे मिल–मालिको और मजदूरो के संघर्ष तथा नारी स्वतत्रता का चित्रण प्रमुख रूप से हुआ है।

यशपाल की दृष्टि सदैव सामाजिक कल्याण की ओर रही है उनकी दृष्टि मे कला की उपयोगिता सामाजिक जीवन की पूर्णतया में है। यशपाल कृत दादा कामरेड (१६४१ ई०) की भूमिका मे उन्होने कला के सम्बन्ध में लिखा है ... "कला को कला के निर्लिप्त क्षेत्र में ही सीमित न रख कर मैं उसे भाव या विचारों का वाहक बनाने की चेष्टा करता हूॅ क्योंकि जीवन में मेरी साध केवल व्यक्तिगत जीवन यापन ही नहीं बल्कि सामाजिक जीवन की पूर्णतया है। इसलिए कला से सम्बन्ध जोडकर भी मैं कला को केवल व्यक्तिगत संतोष के लिए नहीं समझ सकता। कला का उद्‌देश्य है, जीवन में पूर्णतया का यत्न, बजाय इसके कि कला का यत्न बहक कर हवा मे पैतरे बदल कर शान्त हो जाए, क्या यह अधिक अच्छा नहीं कि वह समाज के लिए विकास और नवीन कला के लिए आधार प्रस्तुत करें।"[1]

यशपाल का यह कथन उनके उपन्यासों में पूर्णरूप से दिखलायी देता है। उनके उपन्यासों की नींव सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं पर खड़ी दिखलायी पडती है। भारतीय समाज में सामाजिक रूढियों और मान्यताओं के नाम पर नारियो का जो शोषण होता रहा है। यशपाल ने अपने उपन्यासों मे ऐसी समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करके एक ओर जहॉ उस समस्या से परिचित कराया है वही दूसरी ओर उस समस्या से पीडित नारी को मुक्ति

---

१. दादा कामरेड, यशपाल। पृ० स० ४

दिलाने का भी प्रयास किया है। यशपाल नारी को समानाधिकार देने के समर्थक है उनके शब्दो में "आज हमारे समाज का आधा भाग यानि नारी समाज की कठिनाई और संघर्ष मे अपने आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक दायित्यों को समझे, वे केवल कंधो पर बोझ न बनी रहे।"[१]

इसी तरह देश–द्रोही उपन्यास की राजदुलारी के माध्यम से लेखक ने विधवा समस्या को नवीन दृष्टि से प्रस्तुत किया है। डॉ॰ खन्ना की मृत्यु के सूचना के पश्चात् राजदुलारी बद्री बाबू से शादी कर लेती है। अचानक खन्ना जब लौटकर आता है तो अपनी पत्नी का पुनर्विवाह सुनकर उसे धक्का अवश्य लगता है। किन्तु वह उदार मानवीयता के कारण राजदुलारी को दोषी नही मानता, ना ही उसके पास जाता है। राजदुलारी भी अब बद्रीबाबू के प्रति ही निष्ठावान है, इसलिए बिमारी की स्थिति मे भी खन्ना को अपने घर मे एक रात के लिए भी शरण नहीं देती। खन्ना के प्रति राजदुलारी का समर्पण एक दिन वास्तविक था लेकिन आज वही समर्पण और प्रेम बद्री बाबू के प्रति है राजदुलारी के चरित्र के माध्यम से इस सत्य की स्थापना की है कि विधवा स्त्री को भी सम्मान से जीवित रहने का अधिकार हैं वास्तव में व्यक्ति समाज और परिस्थितियॉ परिवर्तनशील है। सामाजिक मूल्य भी बदलते रहते हैं। इसलिए विधवाओं के प्रति समाज का दृष्टिकोण भी बदलना चाहिए। यदि कोई विधवा स्त्री परिस्थितियों से समझौता करके नई जिन्दगी की शुरूआत करती है तो समाज को उसका स्वागत करना चाहिए। उसके समबन्ध को अनैतिक नहीं मानना चाहिए। नारी के विधवा अधिकार के लिए १६वीं शदी में भारतीय संविधान में प्रदत्त अधिनियम सन् (१८५६ ई॰) में विधवा पुनर्विवाह

---

१. दादा कामरेड, यशपाल। पृ॰ स॰ १०१

अधिनियम लागू किया गया। जिसमें विधवाओं के लिए अधिकार, क्षेत्र दिया गया जो यशपाल के 'देशद्रोही' में राजदुलारी एवं बारह घंटे की विनी के माध्यम से विधवा समस्या को प्रस्तुत करके नवीन दृष्टिकोण या नारी जागरण की ओर अनुरेखित किया है।

यशपाल पति पत्नी के बीच से शासक–शासित और मालिक–गुलाम के सम्बन्ध को मिला देना चाहते है और यह तभी सम्भव है जब नारियॉ भी पुरुषो की भाँति अपने सार्वजनिक व्यक्तित्व का निर्माण करे। यशपाल की दृष्टि मे आर्थिक स्वतंत्रता ही नारी को दासता से मुक्ति दिला सकती है। इसलिए उनके सभी नारी पात्र सामाजिक एवं सास्कृतिक मान्यताओं का विरोध करते हैं। वे चाहे 'दादा कामरेड' की शैल, 'मनुष्य के रूप' की मनोरमा, 'देशद्रोही' की राजदुलारी, 'झूठा–सच' की तारा एवं कनक हो ये सभी नारी पात्र प्राचीन मान्यताओं को लांघती हुई स्वयं आत्मनिर्भर बनकर समाज में अपना महत्व स्थापित करती है। इसीलिए उनके उपन्यासों में ये सभी नारी पात्र जीवन मे दोहरा संघर्ष करते हैं। एक और सभी नारियॉ सामाजिक परम्पराओं रूढ़ियों और मान्यताओ के प्रति विद्रोह करती है, तो दूसरी ओर पूॅजीवादी शोषक व्यवस्था को समाप्त करने के लिए राजनीतिक क्षेत्र में भी अहम् भूमिका निभाती है।

'दादा कामरेड' उपन्यास की नायिका शैलबाला स्वतंत्र प्रकृति की नारी है उसका दृष्टिकोण सामान्य नारियो से भिन्न है, वह शादी का विरोध करती है। शैल का नारी स्वातंत्र्य सामाजिक विचारों की अवहेलना के साथ ही सदाचार और व्यवहार की भी उपेक्षा करता है। प्रत्येक देश की अपनी संस्कृति और

गरिमा होती है। शैल का आचरण, व्यवहार और मानसिकता भारतीय संस्कृति और सभ्यता से भिन्न है। शैल का स्वच्छन्द आचरण देखकर ऐसा। लगता है मानो वह पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में जी रही है।

यशपाल का समाज के प्रति अपना अलग दृष्टिकोण है, उन्होंने समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया है, वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहते हैं जिसमें किसी व्यक्ति या वर्ग का शोषण न होता हो। वह सभी सामाजिक रूढियों और सामाजिक संस्थाओ को समाप्त करना चाहते है। क्योंकि ये संस्थाएं और रूढिया मनुष्य को सहजरूप से नही जीने देती सामाजिक शोषण को समाप्त करने के लिए यशपाल विवाह सस्था को ही समाप्त कर देना चाहते हैं। दादा कामरेड (१६४१) से आरम्भ करके मेरी–तेरी उसकी बात १६७३ तक यशपाल ने ११ उपन्यास लिखा है। जिसमे सबसे बडा और महत्वाकांक्षी उपन्यास झूठा–सच है। यशपाल ने झूठा–सच मे अपने निकट के अतीत और वर्तमान को एक प्रमाणिक दस्तावेज कें रूप में प्रस्तुत किया है जो अभी पूर्णतया इतिहास बना नहीं है किन्तु इतिहास बनने की प्रक्रिया मे है। इस उपन्यास मे उस मानव त्रासदी को प्रमाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है जिसमे विभाजन की राजनीति को लेकर यह उपमहाद्वीप गुजरा है। इस त्रासदी को सबसे अधिक एक तो उस गरीब आदमी जयदेव पुरी ने झेला है जिसकी पहचान केवल सम्प्रदाय या धर्म के नाम पर की गयी है तथा दूसरी ओर उस नारी तारा ने झेला है जिसके सम्प्रदाय या धर्म में ही नहीं अपितु उसके स्त्रित्व पर भी आक्रमण किया गया है। तारा, बंटी, उर्मिला, शीलो, कनक आदि तमाम स्त्रियॉ इस त्रासदी को झेलती दिखायी देती है।

लेकिन सबसे सशक्त एवं प्रभावशाली नारी पात्र के रूप मे तारा है उसकी तुलना में कोई पुरुष पात्र तो ठहर ही नहीं सकता है कोई अन्य स्त्री पात्र भी ऐसी नही जो उसके टक्कर में सामने सुना सके। तारा व कनक को माध्यम बना कर यशपाल ने आधुनिक धरातल में उन नारियों का प्रतिनिधित्व कर स्थापित करना चाहा है जो आज के सन्दर्भ में प्रत्येक नारी अपने ऊपर किसी का भी दबाव स्वीकार नहीं करती। तारा सोमनाथ से विवाह नहीं करना चाहती थी, क्योकि वह उसके समकक्ष पढा–लिखा नहीं था यही से तारा के जीवन में उतार–चढ़ाव शुरू होने लगता है, अन्त में तारा आत्मनिर्भर बन कर स्वयं अपने जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है जो आज की युवतियॉ मन–पसन्द युवक न मिलने के कारण कर रही है इसी तरह करक जो आरम्भ में पुरी के प्रेम मे सारी सामाजिक बन्धन तोडकर विवाह तो करती है लेकिन आपसी ताल–मेल न बैठने के कारण उससे सम्बनध–विच्छेद करके पुनः गिल से विवाह करती है और गिल भी विवाहित व एक पुत्री की मॉ से विवाह करने में कोई आपत्ति नही जताता। इस तरह कनक विवाह को बन्धन समझकर उसको बोझ के समान ढोती नहीं बल्कि उसको तोड कर अनय से विवाह करके अपने जीवन को फिर से तलाशती है। आज की नारियॉ भी विवाह तो कर रही है लेकिन आपसी ताल–मेल या अन्य कारणों से पति से विचार–विमर्श न बैठने के कारण उनसे तलाक भी ले रही है इस तरह झूठा–सच उपन्यास में तारा और कनक के चरित्र में माध्यम से उस नवीन विचारधारा का जो नया स्वरूप यशपाल ने प्रस्तुत किया वो आज की प्रासंगिकता में बिल्कुल खरा उतरता है और मेरा भी स्वयं यह विचार है कि विवाह एक बन्धन नहीं बल्कि साथ–साथ

चलने का नाम है और जब साथी उचित न मिले तो जीवन रूपी पहिया लडखडा गिर ही जाती है, इस लडखडाने के पहले ही यदि इसे बचाया जा सकता है तो बचा लिया जाये वरना जीवन पर नारी का जीवन घुटन, सिसकन और बोझ के रूप में दवा रहता है जिससे वह व्यं अपने दायित्व के प्रति भी अन्याय करती है। उपन्यास में तारा और कनक के रूप मे यशपाल ने इन्हीं विचारों की पुष्टि की है।

झूठा–सच में बाह्य का विस्तार ही है अन्तर का द्वन्द्व नहीं है यह सच है तथा इसमे सूक्ष्मता और गहराई न हो विस्तार और वैविध अवश्य है। झूठा–सच की महाकाव्यात्मकता इसी विस्तार और वैविध्य में निहित है। १९वीं शताब्दी मे नारी जागरण का प्रयास पुरुष द्वारा किया गया था किन्तु बींसवी शताब्दी में नारी ने स्वय स्वतत्रता का आन्दोलन चला कर अपनी जागरूकता का परिचय दिया है। ऑल इण्डिया वीमेन कॉनफरेंश (सन् १९२७ ई॰), इण्डिया होमरूल लीग (सन् १९२८ ई॰), इन्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ युनिवर्सिटी वीमेन्स (१९१७ ई॰), युनिवेस्टी वीमेनन्स एसोशियेशन, कस्तूरबा गाँधी मेमोरियल ट्रेस्ट (१९४४ ई॰), सती प्रथा निरोधक अधिनियम (१९२९ ई॰), बाल विवाह प्रतिबन्ध शारदा एक्ट (१९२८ ई॰), हिन्दु मैरिज एक्ट (१९५५ ई॰), आदि जैसी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ स्थापित की गयी इन्हीं संस्थाओं, आन्दोलनों, अधिनियमों के तहत स्वतन्त्र भारत की आधुनिक नारियों ने अपने चतुर्मुखीय विकास से सिद्ध कर दिया है कि सभी क्षेत्रो जैंसे कार्यालायों, विद्यालयों, प्रशासनिक सेवाओ राजकीय संस्थाओं, निजी संस्थाओं एवं खेलकूद में पुरुष के समान और अन्य कई क्षेत्रों में की जैसे–रक्षा विभागों, चिकित्सा विभागों, वायुसेना

विभागों, आदि मे भी अधिक योग्यता और उत्तरदायित्व से कार्य कर रही है। जो अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय देखों में प्रगति की ओर कदम अग्रसर कर रही है। वस्तुतः यशपाल के उपन्यासों में की नारियां भी आधुनिकता से कलेवर में अपने आपको रंगी दीख पड़ती है। यशपाल की दृष्टि में नारी भावना पर उनका विचार है.. "यशपाल जी के उपन्यासों मे नारी–पात्रों को अत्यन्त विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है उन्होने नारी के विविध रूपों दिखलाने के लिए उनमें सामाजिक परिवेश के भीतर ज्यो का त्यों चित्रित किया है, भारतीय समाज में नारी की दयनीय स्थिति पुरुष द्वारा उसका शोषण और उसके प्रति किये अत्याचारों को अपने उपन्यासों में स्थान देने का मुख्य उद्देश्य उनका इन विकृतियों का अन्त करने की प्रेरणा देती है।" यशपाल की सम्पूर्ण सहानुभूति नारी वर्ग के प्रति है इसीलिए उनके आदर्श नारी पात्र प्रगतिशील चेतना से युक्त है वह चाहे मेरी तेरी उसकी बात की ऊषा हो या दिव्या की दिव्या या दादा कामरेड की शैल सब इसी प्रगतिशील चेतना से अनुप्रेरित है। वह पुरुष के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर चलती है। युग की मॉगों के अनुसार वह अपने को केवल गृहलक्ष्मी ही नहीं वरन् समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग भी समझती है।

यशपाल की मान्यता है कि समाजवादी समाज में नारी की आत्म निर्भरता अत्यन्त आवश्यक है। समाज के पूर्ण विकास के लिए समाज के अर्द्ध भाग स्त्री का सहयोग अनिवार्य है। स्त्री की अधिक स्वतन्त्रता समाजवादी व्यवस्था का अनिवार्य अंग है क्योंकि वह समाजवाद की प्राप्ति और स्थापना में सहायक होगीं। समाजवादी संस्कृति में ही नारी का अपना अस्तित्व है वह आमुख की

ही न होकर स्वयं की भी कुछ होती है। नारी के लिए वह समस्त रूढिबद्ध सस्कारों, नैतिक धारणाओं और विश्वास के बन्धन शिथिल कर लेना चाहते हैं। वे नारी को न केवल आर्थिक रूप से ही वरन् पूर्णरूप से स्वतन्त्र और आत्म निर्भर देखने के पक्षपाती है। वे कहते हैं कि नारी में स्वय इतना साहस व सुबुद्धि होनी चाहिए कि वह उचित अनुचित का निर्णय कर सकें। उसे प्रेम करने का भी अधिकार और स्वतंत्रता भी होनी चाहिए।

यशपाल नारी को भोग और उपभोग की वस्तु नहीं बनाना चाहते। उसे समानाधिकार और समता दिखाकर समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग बनाना चाहते हैं। स्वतंत्रता और समानाधिकार के इस युग में यशपाल नारी के आदर्श सतीरूप की कल्पना भी व्यर्थ समझते है। क्योंकि क्योंकि सती प्रथा को वे घोर अत्याचार एवं भीषण अन्याय का प्रतीक मानते हैं। तीव्रतम प्रेम के लिए वे पुर्नविवाह का उन्मुक्त हृदय से समर्थन करते हैं। इस प्रकार यशपाल आधुनिक समाज व परिवेश के अनुकूल नारी को पूर्णरूप से स्वतंत्र व आत्मनिर्भर देखना चाहते है। नारी भी मुनष्य है, उसका भी व्यक्तित्व है, उसकी भी आकांक्षाएं है। उसे पूर्वरूप से पारिवारिक व सामाजिक बंधनों में बांधकर नहीं रखा जा सकता। इन सबसे आवश्यक वे नारी की आर्थिक, आत्मनिर्भरता समझते हैं जो उसे पुरुष समाज के सम्मुख पंगु बनाने की अपेक्षा आत्मविश्वास की भाषा और आत्मनिर्णय के अधिकार से पोषित करती है। यह है यशपाल के आदर्शनारी की भावना।

यशपाल के जीवन द्वन्द्व मूलत· मार्क्सवादी विचारधारा से अनुप्रेणित है मार्क्सवाद का तात्पर्य समाज में समता लाने की विधि अथवा वैज्ञानिक

विचारधारा है। जिसके अन्तर्गत वर्ग सघर्ष, भौतिकवाद, द्वन्द्वात्मक भौतिक, साम्यवाद और वर्गविहीन समाज की स्थापना करता है। समाजवादी और साम्यवादी विशेषता सामाजिक व्यवस्था का अनुमोदन करते है वह चाहते हैं प्रत्येक को अपने विकास उन्नति एव जीवन यापन की उपायो की प्राप्ति के समान अवसर उपलब्ध हो साथ ही वह प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिश्रम का फल पाने का भी अधिकार प्राप्त हो। "मार्क्सवाद ने पुरुष के विलास, लालसा की तृप्ति से भी बढकर स्त्री को समाज में स्थान दिया है। वह मानता है कि स्त्री समाज की उत्पादक या पैदावार करने वाला अग बन जायेगी.. ।[१]

मार्क्सवाद की धारणा है कि स्त्रिया भी पुरुष की तरह मनुष्य है उनके कन्धे पर भी समाज का उत्तरदायित्व उतना ही है जितना पुरुषों के कन्धों पर। इस तरह यशपाल जी ने मार्क्स के साम्यवादी व समाजवादी दर्शन को ही मूल रूप से ग्रहण किया है।

अतएव यशपाल की नारी, समाज में अपना अस्तित्व चाहती है, वह एक अलग इकाई और अधिकारी के रूप में अपना हिस्सा चाहती है पुरूष की क्रीतदासी या परिवार की सेविका के रूप में उसे अपना अस्तित्व स्वीकार नहीं है, वह समय के साथ चलना चाहती है और समाज को नया रूप देना चाहती है। यशपाल की नारी पुरुष की आश्रिता नही बल्कि उसकी सहयोगिनी है। यशपाल जी की नारी विद्रोहिणी है वह आजादी चाहती है, समाज में समता का व्यवहार चाहती है और चाहती है बराबरी के स्तर पर पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर सघर्ष करना।

---

१. मार्क्सवाद, यशपाल। पृ. सं० ८४

स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को लेकर मार्क्स और फ्रायड दोनों से प्रभावित यशपाल की जो दृष्टि दादा कामरेड से व्यक्त हुई वह अन्य उपन्यासों तक एक जैसी बनी रही। यशपाल स्त्री–पुरुष के पारस्परिक आकर्षण को धार्मिक–नैतिक मूल्यों से ऊपर मानते हैं। दादा कामरेड की शैल यदि अन्य पुरुष की ओर आकर्षित होती है तो वह राजनैतिक कारण है वह पार्टी के कार्यो में भाग लेती है और वही से उसकी पहचान, खन्ना, रार्बट और हरीश से होती है अन्त मे वह हरीश के विचारों से इतना प्रभावित होती है कि उसकी उचित अनुचित सभी बातो को स्वीकार करती है इधर हरीश भी जो अब तक स्त्री को मार्ग की बाधा समझता है शैल के सम्पर्क मे आने के उपरान्त उसके विचारों मे भी परिवर्तन आता है और वह प्रबल आकर्षण में बंध जाता है। झूठा–सच में तारा असत को ओर आकर्षित होती है तो धर्म के बन्धनों से ऊपर उठकर, जयदेव पुरी कनक के या जयदेव पुरी ओर उर्मिला के बीच जो आकर्षण जन्म लेता है वह आर्थिक विषमता की उपेक्षा करके। यदि शीलो रतन की बाहो में आ जाती है और बाद में दिल्ली में अपने पति और ससुराल वालों को छोडकर रतन की पत्नी बनकर रहने लगती हैं तो सामाजिक–नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करके। बारह घटे की विधवा विनी यदि विधुर फेंटम की ओर आकर्षित होती है तो ये स्त्री–पुरुष के मध्य का आकर्षण ही है जो दोनों को एक–दूसरे के समीप लाता है। इस तरह यशपाल के नर–नारी के सम्बन्ध में मूलतः सृष्टि से जुड़ा हुआ माना है। मानवता अमर रहे इसलिए ये सम्बन्ध परमात्मा ने बनाये। यह तथ्य सम्पूर्ण सृष्टि में प्रकाश की भाँति उजागर है।

यशपाल ने अपने उपन्यासों मे मूलतः इन्हीं विचारों का समर्थन किया है

जिसकी विस्तृत व्याख्या उन्होंने क्यों फंसे ? उपन्यास में की है। मोती भास्कर, हेना आदि के माध्यम से नर–नारी के परस्पर आकर्षण की बात कह कर उन्होंने सिद्ध करना चाहा कि स्त्री–पुरुष का सम्बन्ध हमेशा से चला आ रहा है। स्त्री–पुरुष का अनुगामी न होकर सहगामी है समाज की उन्नति एव वृद्धि के लिए स्त्रियों की मानसिक और शारीरिक विकास तथा समाज मे स्त्रियो के समान अधिकार के लिए उन्हें भी पैदावार के कार्य में भाग लेकर उसका फल पाने का अवसर होना चाहिए।

पिछली शताब्दी के प्रौद्योगिक एव आर्थिक परिवर्तनो के कारण न केवल सुस्थापित कार्य प्रणाली ही बदली है बल्कि सोचने तथा कार्य करने की प्रणाली में भी बदलाव आया है परिणामस्वरूप स्त्री के प्रति दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है। उसकी 'रचना' की अवधारणा को बल मिला नारीवाद रचना दृष्टि आधुनिक युग की कुछ ऐसी ही स्थितियों की उपज है।

देश, भाषा, संस्कृति, सभ्यता निम्न भिन्न हो सकते हैं परन्तु जो भिन्न नहीं हैं वह है स्त्री और स्त्री का भाग्य। चाहे वह हिन्दु हो या मुस्लिम, भारतीय हो या बांगलादेशी सिर्फ वातावरा व स्थान बदल जाने मात्र से स्त्री का भाग्य नहीं बदलता। आधुनिक महिला लेखिका तसलीमा नसरीन ने बचपन से लेकर वर्तमान तक की निर्मम, नग्न घटनाओ को बेलाग रूप से अपने साहित्य में प्रस्तुत कर उसे पुरुष प्रधान समाज तथा विकृत सभ्यता के गाल पर बड़े व्यंगात्मक अन्दाज में थप्पड मारा है स्त्रियों को धर्म शास्त्रों सामाजिक, रूढ़ियों, पुरुषों की निरकुशता और चीता को ध्वस्त कर अपनी शक्ति खुद पहचानी चाहिए।

नारी यह भली–भॉति जानती है कि चहारदीवारी के बाहर निकलते ही अपने नारीत्व को कुछ न कुछ कीमत चुकानी पडती ही है। चाहे बेडिया इस्लाम ने डाली हो या हिन्दु धर्म शास्त्रो ने बेडिया तो बेडिया ही होती है। चाहे वह कहीं न कैसी ही क्यों न हो। कहते है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है और शायद इसीलिए महिला लेखिका मृदुला गर्ग ने इस साहित्यिक आइने में नारी को बदलते स्वरूप का अक्स देखने की कोशिश की है।

नारी के सोच का बदलता जा रहा रूप और बढता जा रहा दायरा निश्चित ही मध्य कालीन सामन्तवादिता के लिए एक चेतावनी है एक प्रहार है। युगों से पीडित, प्रताडित नारी द्वारा अपने सम्मान और न्यायसगत समानता के लिए आरम्भ किया यह अभियान या चेतना एक युद्धनाद भी है। नारी जागरण में नवजागरण और आधुनिकता की शक्तियॉ दिप्तिमान है। नारी अदम्य चेतना शक्ति है अत· उसे हारना नही है, सामर्थ्यवान बनना है।

निष्कर्षत· हम यह कह सकते हैं कि आज की आधुनिक नारी चहारदीवारी के भीतर अपने अस्तित्व को खोना चाहती बल्कि अपनी स्थिति को दृष्टि पथ में रख कर दमदार तरीके से युग को चुनौती देने को तैयार है।

इस प्रकार यशपाल ने अपने उपन्यास साहित्य में भी नारी उन्नयन की प्रतिष्ठा को अपने साहित्य में नारी वाद की प्रगतिशीलता, परिवर्तनशीलता एव गतिशीलता का समन्वय निरुपित करते हुए उसे आधुनिकता के दौर में लाकर खड़ा किए हैं।

यशपाल ने अपने उपन्यासों में शोषितों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण,

सहानुभूति, व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं उदारता आदि मूल्यों को चित्रित किया है। ये सभी मूल्य समाज के कल्याण और उसके विकास की भावना से सम्बन्धित है। परम्परागत रूढियों एवं शोषण का विरोध करते हुए क्रान्ति का आह्वान और स्वस्थ्य मूल्यों का विकास करना ही उनका उद्देश्य रहा है। 'अमिता' उपन्यास की बालिका अमिता द्वारा 'किसी से न छीनना' 'किसी को नहीं डराना', एवं 'किसी को नहीं मारना' अपनाया गया मंत्र समाज सेवा एवं कल्याण की भावना से सम्बद्ध है। अमिता उपन्यास में यशपाल ने युद्ध का विरोध किया है, अमिता बडी निर्भीकता से अहिंसा की प्रकृति का समर्थन करती है। जिसके फलस्वरूप अशोक प्रतिज्ञा करता है वह किसी से नही छीनेगा नहीं, किसी को डरायेगा नही, किसी को मारेगा नही, अमिता द्वारा इस प्रकार युद्ध का विरोध करना अहिंसा तथा विश्वप्रेम का सन्देश देना मानवीय मूल्यो को प्रकट करता है।

पौराणिक कथानको को अपनाने वाले लेखक अक्सर अपने समय की सच्चाइयों से भागते हुए प्रतीत होते हैं या फिर ऐसे कथानको का प्रयोग वे अपनी संकीर्ण दृष्टि को उचित सिद्ध करने के लिए करते हैं। यशपाल ने पौराणिक कथानकों और पात्रों को, इसके विपरीत, प्रगतिशील दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए अपनाया।

'अप्सरा का श्राप' नामक उपन्यास की भूमिका मे वह कहते हैं . "प्रश्न तो यह है कि ऐतिहासिक या पौराणिक कथानकों को लेखक पौराणिक मान्यताओं के समर्थन के लिए लेता है या उनके माध्यम से वर्तमान को प्रदर्शित करने

तथा उस पर व्यंग्य व विद्रूप करने के लिए ? मैंने शकुन्तला की कहानी इसलिए नहीं लिखी कि मुझे पौराणिक मान्यताओ का समर्थन करना था, बल्कि इसलिए कि उसके माध्यम से मैं आधुनिक नारी जीवन के प्रति एक सही दृष्टिकोण पाठकों के सामने ला सकूँ। इसलिए उसमें अपने युग की भावना व दृष्टि के अनुसार शकुन्तला के अनुभवों की कल्पना की गई और उसे बिल्कुल आधुनिक जीवन–सन्दर्भ में देखने का प्रयास किया गया है।"[1]

जड़ता का विरोध, तर्क, आधुनिक दृष्टि आदि यशपाल के लेखन की विशेषताएँ है। आज अक्सर हम स्त्री विमर्श की चर्चा करते है। लेकिन स्त्री की अस्मिता, उसके सघर्ष, उसको स्वातंत्र्य, उसके प्रति होने वाले अन्याय के विरोध में जितना यशपाल ने लिखा है शायद ही किसी ने लिखा हो।

नये संसार के अग्रदूत यशपाल उत्पीडित संघर्षरत विशाल जन समुदाय की आवाज है। यशपाल के व्यक्तित्व और कृतित्व के अन्तर्गत् जो बर्हिमुखी प्रकृत्ति और विचारधारा को प्रतिबद्ध किया था वह भी समुह या समाज को ही महत्त्व देती है व्यक्ति को नहीं। द्वन्द्व बाहर होता है, सामुहिक होता है और उसका चित्रण यशपाल ने इतना अधिक और इतना प्रभावशाली किया है जितना हिन्दी के शायद ही किसी उपन्यासकार ने किया हो।

यशपाल का समाज के प्रति अपना अलग मत है। इन्होंने समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया है। वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहते हैं जिसमें किसी व्यक्ति या वर्ग का शोषण न होता हो व सभी सामाजिक रूढियों और सामाजिक संस्थाओं को समाप्त करना चाहते हैं क्योंकि ये

---

१. अप्सरा का श्राप, आमुख।

संस्थाएं और रूढियां मनुष्य को सहज रूप से जीने नही देती यशपाल की दृष्टि सदैव सामाजिक कल्याण की ओर रही है उनकी दृष्टि में कला की उपयोगिता सामाजिक जीवन की पूर्णताया मे है।

यशपाल हिन्दी उपन्यास के सजग प्रहरी एव उद्भट विद्वान, मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति अविचलनिष्ठ, समाजिक एव राजनैतिककर्ता के रूप मे विद्यमान है। जो अन्धेरे मे आलोक देने के लिए व्यक्तित्व एव कृतित्व के कथाकार का आत्मबोध कराता है। आज की प्रासगिकता का बोध नारी जागृति के जीवन विकास क्रम मे नारी की सर्वागीण प्रगति व आधुनिकता के स्वरूप में यशपाल के उपन्यासो 'दादा कामरेड' से लेकर मेरी तेरी उसकी बात' आधुनिक दृष्टि का पूर्णतया अनुपालन किया गया है।

परिशिष्ट :

पुस्तक सूची

पुस्तक-सूची

क. मूल-उपन्यास

१. दादा कॉमरेड (१६४१ ई०) यशपाल, विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ, द्वितीय सस्करण १६४४ ई०।

२ देशद्रोही (१६४३ ई०) यशपाल, विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ, सातवॉ सस्करण, १६६७ ई०

३. दिव्या (१६४५ ई०) यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, १५–ए, महात्मा गॉधी मार्ग इलाहाबाद– १

४. पार्टी कामरेड (१६४६ ई०) यशपाल, विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ, पॉचवॉ सस्करण १६६३ ई०

५. मनुष्य के रूप (१६४६ ई०) यशपाल, विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ, आठवॉ सस्करण, १६७२ ई०

६. अमिता (१६५६ ई०) यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, १५ ए, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद–१ – द्वितीय विद्यार्थी संस्करण, १६७२ ई०

७. झूठा–सच यशपाल क देश और वतन–भाग १ (१६५८ ई०)
ख. देश का भविष्य–भाग २ (१६६० ई०)

यशपाल, दोनों भाग एकत्रित– चतुर्थ संस्करण, १९७६ ई॰
लोकभारती प्रकाशन, १५ ए, महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद

८. बारह घंटे (१९६३ ई॰) यशपाल–तृतीय संस्करण–१९७३ ई॰ लोकभारती प्रकाशन, १५ ए, महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद – १

९. अप्सरा का श्राप (१९६५ ई॰) यशपाल–तीसरा सस्करण, १९७० ई॰ विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ,

१० क्यों फॅसे! (१९६८ ई॰) यशपाल–प्रथम संस्करण –१९६०, विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ,

११ मेरी तेरी उसकी बात (१९७३ ई॰) यशपाल–द्वितीय संस्करण १९७८ ई॰ लोकभारती प्रकाशन, १५, ए महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद

यशपाल के निबन्ध संग्रह

१. चक्कर क्लब, छठा संस्करण, १९६६ ई॰, विप्लव कार्यालय, २१, शिवाजी मार्ग, लखनऊ,

२. मार्क्सवाद (१९४० ई॰), विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ,

३. न्याय का संघर्ष (१९४० ई॰) छठा संस्करण, १९६२ ई॰, विप्लव कार्यालय, २१, शिवाजी मार्ग, लखनऊ,

४ गाँधीवाद की शवयात्रा, सातवॉ संस्करण, १९७२ ई। यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, १५ ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–१

५. बात–बात में बात (१६५० ई०), तीसरा संस्करण, १६५६ ई०, विप्लव कार्यालय, २१, शिवाजी मार्ग, लखनऊ,

६. राम राज्य की कथा (१६५० ई०) चतुर्थ संस्करण, १६७० ई० विप्लव कार्यालय, २१, शिवाजी मार्ग, लखनऊ,

७. देखा सोचा समझा (१६५१ ई०) चतुर्थ सस्करण १६७२, विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ,

८ जग का मुजरा (१६६२ ई०), द्वितीय संस्करण–१६७१, विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ,

यशपाल की आत्मकथा

१. सिहावलोकन (भाग एक) १६५१ ई०, पॉचवॉ सस्करण, १६७२ ई०, लोकभारती प्रकाशन, १५ ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद

२ सिंहावलोकन (भाग दो) १६५२ ई०, तीसरा सस्करण, १६६६ ई०, विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ,

३. सिंहावलोकन (भाग तीन) १६५५ ई०, तीसरा सस्करण, १६७० ई०, विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ,

नाटक : नशे–नशे की बात, यशपाल

(ख) सहायक पुस्तकें

१. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, देवराज साहित्य भवन प्रा लि इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १६५६ ई०

२. आधुनिक हिन्दी उपन्यास, नरेन्द्र मोहन, दि मैक मिलन कम्पनी आबू इण्डिया लि., प्रथम सं १६७५ ई०

३. आधुनिक भारत मे सामाजिक परिवर्तन, एम० एन० श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सस्करण १६६७ ई०।

४ आधुनिक हिन्दी साहित्य, सास्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ. भोलानाथ, प्रगति प्रकाशन, बैतूल बिल्डिंग, आगरा, सस्करण, १६६६ ई०।

५. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास, डॉ. बेचन, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली, प्रथम स० १६६५ ई०।

६. आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास, इन्द्रनाथ मदान, राज कमल प्रकाशन दिल्ली सं० १६८१ ई०।

७. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, डॉ० बच्चन सिह, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, १६८३ ई०।

८. आधुनिकता के सन्दर्भ मे आज का हिन्दी उपन्यास, अतुल बीर अरोडा, चण्डीगढ, पब्लिकेशन ब्यूरो, १६७४ ई०।

६. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, इन्द्रनाथ मदान, राज कमल प्रकाशन दिल्ली, १६७३ ई०।

१०. आधुनिक हिन्दी साहित्य, प्रकाश चन्द गुप्त, चम्पालाल रॉका, बीकानेर, १६५२ ई०।

११. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास, विष्णु किशोर झा 'बेचन', सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, १६६५ ई०।

१२. आज का भारत, रजनी पामदत्त, अनु० आनन्द स्वरूप गर्ग, दि मैक मिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लि०, नई दिल्ली।

१३ आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना, डॉ० शैल कुमारी, प्रथम सस्करण प्रयाग

१४. औरत के हक में – तसलीमा नसरीन, वाणी प्रकाशन, २१–ए, दरियागंज, नई दिल्ली – ११०००२, प्रथम सस्करण – १६६४ ई०

१५. उपन्यास का शिल्प, गोपालराय, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना, १६७३ ई०।

१६. उपन्यास और लोक जीवन, फॉक्स, रेल्फ, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १६५७ ई०।

१७. उपन्यास लेखन शिल्प–व्युरेक, ए० एस० भोपाल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १६७३ ई०।

१८. उपन्यासकार चतुरसेन की नारी पात्र, सूत देवहंस, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, १६७४ ई०।

१६. ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, गोपीनाथ तिवारी, साहित्य रत्न भण्डार आगरा, १६५८ ई०।

२०. ऐतिहासिक उपन्यास प्रकृति एव स्वरूप, गोविन्द जी, साहित्यवाणी इलाहाबाद, १९७० ई०।

२१ ऐतिहासिक उपन्यासो में कल्पना और सत्य, चिन्तामणि बी० ए० चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९५९ ई०।

२२. कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा, लेनिन प्रगति प्रकाशन मास्को, स. १९८९ ई०।

२३. नारी का मूल्य (शरद साहित्य), शरद चन्द्र चट्टोपाध्याय, चौथा संस्करण, १९५१ ई०। बम्बई।

२४ प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास, प्रकाश चन्द्र शर्मा, साहित्य सदन देहरादून, १९६७ ई०।

२५ भारत, वर्तमान और भावी, रजनी पामदत्त, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९५६ ई०।

२६ भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन और हिन्दी साहित्य, कीर्ति लता, हिन्दुस्तानी एकेडमी, १९६७ ई०।

२७. भारतीय स्वातत्र्य संग्राम और हिन्दी उपन्यास, हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी, १९६९ ई०।

२८. मार्क्सवाद, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, पांचवां संस्करण, १९६९ ई०।

२९. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७२ई०।

३०. मार्क्सवादी साहित्य चिंतन इतिहास, शिव कुमार मिश्र, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, १९७३ ई०।

---

३१. मार्क्स–एंगेल्स कृत कम्यूनिस्ट घोषणापत्र, एक विवेचन, व॰ सजोनोव, प्रगति प्रकाशन मास्को, अनुवादक–नरेश बेदी, १९८४ ई॰।

३२. मार्क्सवादी लेनिन वादी सिद्धान्त के मूलतत्व, बोल्कोव, बोर्दालाजोव, पिरोगोव, प्रगति प्रकाशन मास्को, सं॰ १९८५ ई॰।

३३. यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, डॉ॰ मधु जैन, कानपुर, अभिलाषा प्रकाशन, स. १९७७ ई॰।

३४ यशपाल के उपन्यासो मे सामाजिक चेतना, डॉ॰ ह॰ श्री॰ साने, सरस्वती प्रकाशन, १२८/१०६ जी, किदवई नगर, कानपुर–११, प्रथम संस्करण, १९८८ई॰।

३५. यशपाल का औपन्यासिक शिल्प, प्रवीण नायक, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, १९६३ ई॰।

३६ यशपाल और उनकी दिव्या, राजपाल शर्मा, कला मंदिर, दिल्ली, १९७२ ई॰।

३७ यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व, सरोज गुप्त, अनुराग प्रकाशन, अजमेर, १९७० ई॰।

३८ यशपाल के उपन्यासो का मूल्यांकन, सुदर्शन मल्होत्रा, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १९७३ ई॰।

३९. वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में नैतिकता, कमलेश माथुर, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, १९७२ ई॰।

४०. व्यक्ति, चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पुरुषोत्तम दुबे, अनुपमा प्रकाशन, बम्बई १९७३ ई॰।

४१ साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासो में नारी के विविध रूप, डॉ॰ विमल शर्मा, संगम प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १६८२ ई॰।

४२ समाजवादी समाज में व्यक्ति, डॉ॰ स्मिर्नोव, प्रगति प्रकाशन मास्को (सोवियत सघ), १६८६ ई॰।

४३ साहित्य की शैली, गणपति चन्द्र गुप्त, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ, १६६३ ई॰।

४४ साहित्य की विधाएं, रालखन शुक्ल, अमित प्रकाशन, गाजियाबाद, १६७२ ई॰।

४५ साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, डॉ॰ मैनेजर पाण्डेय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ, प्र. सं. १६८६ ई॰।

४६ साम्यवादी विश्व का विघटन और समाजवाद का भविष्य, मस्तराम कपूर, साराश प्रकाशन प्रा॰ लि॰, १४२–ई, पॉकिट–४, मयूर विहार, फेज–१, दिल्ली–११००६१

४७ स्त्री की स्थिति, चन्द्रावती लखन पाल, प्रथम संस्करण

४८ स्त्री स्वातंत्र्य और कम्यूनिस्ट नैतिकता पर लेनिन के विचार (हिन्दी अनुवाद)

४६ स्त्री–पुरुष कुछ पुनर्विचार, राजकिशोर, संस्करण–२०००, वाणी प्रकाशन २१–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–११०००२

५० हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ॰ त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचार, पुस्तकालय, पो॰ बा॰ नं॰ ७०, ज्ञानवापी प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय संस्करण २०१८ विक्रमी।

५१ हिन्दी उपन्यास का भावना, डॉ. प्रताप नारायण टण्डन, प्रकाशन लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, प्रथम संस्करण १६५६ ई॰।

५२ हिन्दी उपन्यासो में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, डॉ॰ विमल सहस्त्र बुद्धे, पुस्तक संस्थान १०६/५०ए, नेहरू नगर, कानपुर, सस्करण १६७४ ई॰।

५३ हिन्दी उपन्यास सामाजिक सन्दर्भ, डॉ, बालकृष्ण गुप्त, अभिलाषा प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, १६६२ ई॰।

५४ हिन्दी उपन्यास उत्तरशती की उपलब्धियॉ, डॉ॰ विवेकी राय, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १६८३ ई॰।

५५ हिन्दी उपन्यास, उन्नीस सौ पचास के बाद, स॰ निर्मला जैन, नित्यानद तिवारी, नेशनल पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १६८७ ई॰।

५६ हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक चित्रण, महेन्द्र कुमार जैन, जैन ब्रदर्स, नई दिल्ली सं॰ १६७४ ई॰।

५७ हिन्दी उपन्यासों मे सामाजिक विघटन, डॉ॰ धर्मेन्द्र नाथ श्रीवास्तव, उमेश प्रकाशन, १०० लूकरगंज इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १६६५ ई॰।

५८ हिन्दी साहित्य कोश भाग एक, सं. डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, प्रकाशक, ज्ञान मण्डल लि॰ वाराणसी, तृतीय संस्करण, आश्विन संवत् २०४३ (१६८५ ई॰)

५६ हिन्दी साहित्य कोश भाग दो, सं डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, प्रकाशक ज्ञान मण्डल लि॰ वाराणसी द्वितीय सस्करण, आश्विन संवत् २०४३ (१६८६ ई॰)

६० हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियॉ, डॉ॰ शिव कुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, २६१५, नई सड़क, दिल्ली, ११०००६ पन्द्रहवॉ संस्करण, १६६६ ई॰।

६१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, एच० पी० सिन्हा, एव डॉ० जे० पी० श्रीवास्तव, प्रकाशन किताब महल, इलाहाबाद, १९६४ ई०।

६२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, स० डॉ० नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिग हाउस २३, दरियागज, नई दिल्ली–११०००२, द्वितीय सस्करण, १९८६ ई०।

६३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, लोक भारती प्रकाशन, १५–ए, महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद

६४ हिन्दी उपन्यास पहचान और परख, इन्द्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन दिल्ली, १९७३ ई०।

६५ हिन्दी कथा साहित्य के विकास मे महिलाओं का योगदान, उर्मिला गुप्ता, राधा कृष्ण प्रकाशन, १९६६ ई०।

६६ हिन्दी उपन्यासो का शिल्पगत विकास, उषा सक्सेना, शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७२ ई०।

६७ हिन्दी उपन्यासों में नायक, कुसुम वार्ष्णेय, शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७२ ई०।

६८ हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास, कृष्णा नाग, लोक चेतना प्रकाशन, १९७२ ई०।

६९ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, गणेशन, राजपाल दिल्ली, १९६२ ई०।

७० हिन्दी उपन्यास कोश खण्ड–१, गोपालराय, ग्रंथ निकेतन, पटना, १९६८ ई०।

७१ हिन्दी लघु उपन्यास, घनश्याम मधुप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली १९७१ ई०।

७२ हिन्दी कथा साहित्य पर सोवियत क्रान्ति का प्रभाव, पुरुषोत्तम वाजपेयी, पुस्तक संस्थान, कानपुर, १९७६ ई०।

७३ हिन्दी उपन्यास मे कथा शिल्प का विकास, प्रतापनारायण टण्डन, हिन्दी साहित्य भण्डार लखनऊ, १९५९ ई०।

७४ हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य, प्रेम भटनागर, अर्चना प्रकाशन, जयपुर।

७५ हिन्दी उपन्यास मे नारी चित्रण, बिन्दु अग्रवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६८ ई०।

७६ हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो का अनुशीलन, ब्रजभूषण सिंह आदर्श, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७० ई०।

७७ हिन्दी उपन्यास मे चरित्र चित्रण का विकास, रणवीर रांग्रा, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, १९६५ ई०।

७८ हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, रमेश तिवारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७२ ई०।

७९ हिन्दी उपन्यास कला, राम लखन शुक्ल, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली १९७२ ई०।

८० हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में नारी चित्रण, राम विनोद सिंह, शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७३ ई०।

---

८१ हिन्दी उपन्यासो में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, विमल, सहस्त्र बुद्धे पुस्तक संस्थान, कानपुर, १६७४ ई०।

८२ हिन्दी उपन्यास साहित्य, ब्रजरत्न दास, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, सं० २०13 वि

८३ हिन्दी उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद, सर्वजीत राय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १६६६ ई०।

८४ हिन्दी के प्रगतिवादी उपन्यास, एक अध्ययन, सुशील कान्त सिन्हा, चित्र लेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, १६६५ ई०।

८५ हिन्दी उपन्यास, सुषमा प्रियदर्शिनी, राधा कृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, १६७३ ई०।

८६. हिन्दी उपन्यास युग चेतना और पाठकीय सम्वेदना, डॉ० मुकुन्द द्विवेदी, प्रथम सस्करण, १६७० ई०।, लोक भारती प्रकाशन, १५–ए, महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद–१

ग. पत्र–पत्रिकाएँ

१ हस, सम्पादक, राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., २/३६, अन्सारी रोड, मासिक पत्रिका, दरियागज, नई दिल्ली, अर्द्धशती विशेषाक खण्ड–१ १६६७ई०।

२. आलोचना, हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका, सहस्त्राब्दी अंक, एक, २००० प्रधान सम्पादक नामवर सिंह) राज कमल प्रकाशन, प्रा० लि० नई दिल्ली–१

३. राष्ट्रभाषा संदेश, पाक्षिक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद।

४. स्त्री दर्पण

५. नयी धारा – सं॰ उदयराज सिह

६. सचेतना – सं॰ डॉ॰ महीप सिंह

७. वागर्थ – अक ७५, सितम्बर २००१ भारतीय भाषा परिषद् प्रकाशन, कलकत्ता (मासिक पत्रिका) सम्पादक प्रभाकर श्रोत्रिय।

८. सम्मेलन पत्रिका, शोध त्रैमासिक, भाग ८४, सख्या ४, सम्पादक–विभूति मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १२ सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद।

६ इन्द्रप्रस्थ भारती, सम्पादक, डॉ॰ राम शरण गौड (त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका) हिन्दी अकादमी, दिल्ली।

१० सन्धान, सम्पादक, लाल बहादुर वर्मा, सुभाष गाताडे।

अंग्रेजी पुस्तकें

१. साइकोलोजी आफ वोमन, हेलेन डयूश, प्रथम सं॰ १६४६ ई॰।

२. पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिइला, मिडरत्जस्टिस, सन् १६१३ ई॰ कलकत्ता।

३. इण्डियन वोमन हुडटुडे, मार्गरिट ई॰ काजिन्स, प्रथम संस्करण।

४ वोमेन अगेस्ट मिथ, बेरी मिलार्ड, प्रथम सं. १६४६ ई॰, न्यूयार्क।

५. द ओरिजिनल ऑफ द फेमिली, फ्रेडिरिक एन्गिल्स, प्रथम सं. १६४८ ई॰

६. द स्टेटस ऑफ वीमेन इन इण्डिया, दयाराम जिदुमल, प्रथम संस्करण १८८६ ई॰।

७. द शार्ट हिस्ट्री ऑफ वीमेन, जे. एल डेविस, सन् १९२० ई॰ लन्दन।

८. वोमन ए विन्डीकेशन, प्रथम सं॰ १९२३ ई॰।

९ पोजिशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिवलीजेशन, डॉ॰ ए॰ एस॰ अल्टेकर प्रथम संस्करण, १९३०, बनारस।

१०. स्टेट्स ऑफ वीमेन इन एन्शियेन्ट इण्डिया, डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान, प्रथम सं॰।

११. वीमेन्स शेयर इन सोशल कल्चर, अन्ना गार्लिन स्पैन्सर, द्वितीय सस्करण।

१२ द नेचर एण्ड टाइम्स आव सोशियो–लाजिकल थियरी मार्टिण्डल।

१३. कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो, मार्क्स एण्ड एंगेल्स

१४. वोमन इज माडर्न इण्डिया, सेकण्ड एडिसन का कारा एण्ड को. पब्लिश प्राइवेट लि, कल्वादेवी रोड, बाम्बे, १९७७ ई॰।